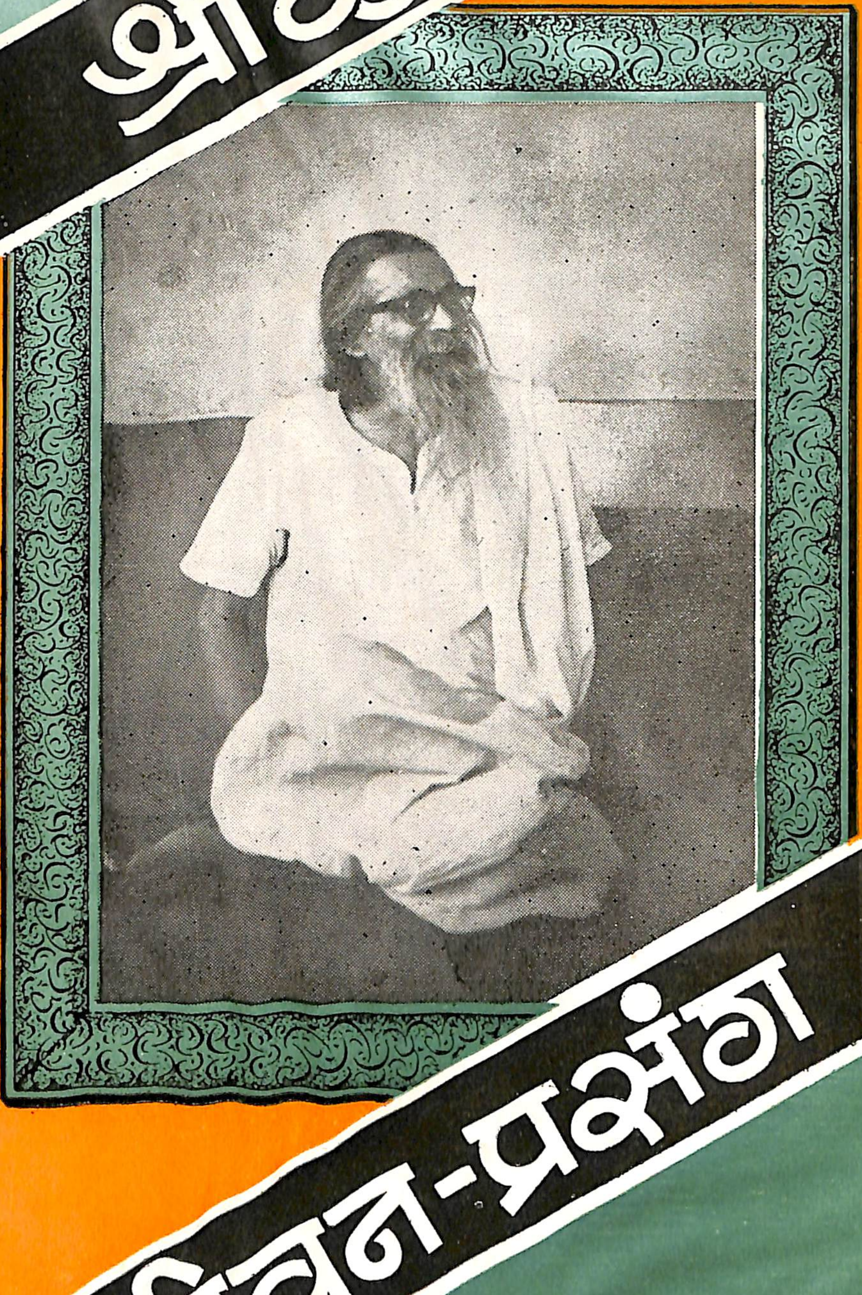
श्री गुरुजी



जीवन-प्रसंग

श्री गुरुजी जीवन-प्रसंग

संकलन-कर्त्ता

राधेश्याम बंका

श्री गुरुजी जीवन-प्रसंग

संकलन-कर्त्ता

राधेश्याम बंका

प्रकाशक :
लोकहित प्रकाशन
राजेन्द्र नगर (पूर्व)
लखनऊ-२२६००४

मूल्य :
रु० ४०.००

प्रथमावृत्ति
फाल्गुन, संवत् २०४०

मुद्रक :
कौशल प्रेस
लखनऊ

वन्दे मातरम्

वन्दे मातरम्

सुजलां, सुफलां, मलयज शीतलां
शस्य श्यामलां, मातरम् ।।वन्दे०।।

शुभ्र--ज्योत्स्ना--पुलकित--यामिनीं
फुल्ल--कुसुमित--द्रुमदल--शोभिनीम्
सुहासिनीं, सुमधुर भाषिणीम्
सुखदां, वरदां मातरम् ।।वन्दे०।।

त्रिशतिकोटि कंठ कल-कल-निनाद-कराले
द्वि-त्रिशकोटि भुजै धृत खर कर वाले
के बोले माँ तुमि अबले ?
बहुबल धारिणीं, नमामि तारिणीं,
रिपुदल वारिणीं मातरम् ।।वन्दे०।।

तुमि विद्या तुमि धर्म, तुमि हृदि तुमि मर्म
त्वंहि प्राणाः शरीरे ।
बाहुते तुमि मा शक्ति हृदये तुमि मा भक्ति
तोमारई प्रतिमा गड़ी, मन्दिरे-मन्दिरे ।।
त्वं हि दुर्गा दशप्रहरण धारिणी
कमलां, कमल-दल विहारिणी
वाणी विद्या दायिनी नमामि त्वाम्
नमामि कमलां, अमलां, अतुलां,
सुजलां, सुफलां, मातरम् ।।वन्दे०।।

श्यामलां, सरलां, सुस्मितां भूषितां,
धारिणीं, भरणीं मातरम् ।।वन्दे०।।

श्रद्धा सुमन

चिन्मय अनन्त तेजोनिधि का
एक दिव्य अंश
इस पवित्र देव भूमि पर
अल्पकाल के लिये
अवतीर्ण हुआ।
घनान्धःकार को,
पराभूत करते हुए
विजयिष्णु भाव जगाकर
मानवता के
इस पूर्णावतार ने
लक्षावधि आत्मविस्मृत अन्तःकरणों में
देवकार्य के लिये
जीवन
समर्पित करने की
ध्येय ज्योति
प्रज्वलित की
और
कमलदल के समान
अलिप्त भाव से,
श्री शालिवाहन शकाब्द
१८९५ की जेष्ठ सुदि पंचमी छठे प्रहर,
का प्रथम चरण
मंगलवार ५ जून १९७३ की रात्रि को
नौ बजकर पांच मिनिट पर
यह कृतार्थ अंशतेज
चिन्मय अनन्त तेजो निधि में ही
विलीन हुआ।

हिन्दुराष्ट्र के ज्योतित जाग्रत भविष्य के
तत्त्वज्ञ रचनाकार मनीषी उन्नायक
परमपूजनीय सरसंघचालक।
आसेतु हिमाचल भारत के
श्रद्धा सुमन स्वीकार करो.

शत-शत वन्दन!

शत-शत वन्दन! शत-शत प्रणाम!!

तीर्थों की पवित्रता जिसके आचरण में-
पर्वों और व्रतों की महनीयता अन्त:करण में-
सादगी, संस्कृति और सभ्यता जिसके अलंकरण में-
क्रान्ति और प्रगतिशीलता जिसके युग-चरण में-
मैंने मनुष्य की आकृति में, उस देवता को-
देखा है, सुना है, पढ़ा है, गुना है!
मठ-रहित सन्यासी,
जन-जन के कल्याण के लिये निरन्तर प्रवासी
जमदग्नि, वशिष्ठ, पराशर की शेष यादगार
दीप्त मुखमण्डल पर धार्मिक तेज निरहंकार
दुर्बल शरीर और देश-जाति-धर्म की रक्षा का दु:सह भार
आँखों की किरणों में असीम स्नेह और प्यार
आँधियों में भी जिसका दीप जगमगाता रहा
पत्थरों को तोड़ जो निर्झर की तरह गाता रहा
किसी तरु के नीचे विश्राम, हराम!
जिसकी जिन्दगी चलती रही अविराम
उस परम तपस्वी गुरुजी के चरणों में
शत-शत वन्दन! शत-शत प्रणाम!!

—श्रीश्याम नारायण पाण्डेय

संकलन की प्रेरणा

सन् १९७५ ई०में केन्द्रीय सरकार ने सारे देश में आपात-काल की घोषणा कर दी थी और राष्ट्रीय-स्वयंसेवक-संघ पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया था। संघ के अनेक प्रमुख कार्य-कर्ता जेल की सींकचों के भीतर बन्द थे। जेल में अचानक एक कार्यकर्ता की तबीयत ज्यादा बिगड़ गयी। जेल की व्यवस्था बहुत अच्छी नहीं थी, इसलिये उस कार्यकर्ता के स्वास्थ्य में कोई सुधार नहीं हुआ। दिन-प्रति-दिन उसकी हालत और भी बिगड़ती चली गयी। परिवार के लोगों को पता चला तो वे लोग उसे देखने के लिये आये। देख करके वे कर भी क्या सकते थे? जेल की व्यवस्था में हस्तक्षेप कर सकना उनके अधिकार की सीमा के बाहर था। परिवार के लोगों का ऐसा विचार था कि यदि वह कार्यकर्ता जेल के बाहर होता तो उसकी सुन्दर देख-भाल और उत्तम चिकित्सा भी हो सकती थी। इसी बात को ध्यान में रख-कर उस कार्यकर्ता की पत्नी को उसके पास भेज दिया गया। पति की हालत ज्यादा गम्भीर थी, अतः जेल के अधिकारियों ने चार-पाँच घण्टे तक उन्हें मिलने का अवसर दिया।

उस बीमार कार्यकर्ता की स्थिति की गम्भीरता को देख-कर सभी को यही लगता था कि किसी भी क्षण कुछ भी हो सकता है। जेल के अधिकारी उस अशुभ क्षण के आने के पूर्व ही उस कार्यकर्ता को रिहा कर देने के पक्ष में थे। पत्नी भी चाहती

थी कि यदि वे मान जायें तो उनसे 'क्षमा-याचना' लिखवा करके जेल के अधिकारियों को दे दी जाये और पति को घर पर वापस ले आया जाये, जिससे उनकी सँभाल और चिकित्सा भली प्रकार से हो सके।

जेल में श्री अप्पाजी जोशी भी थे। श्री अप्पाजी को पता चला कि कार्यकर्ता की पत्नी अपने पति से लिखित क्षमा-याचना दिलवा करके अपने घर पर ले जाना चाह रही है। इसे सुनकर श्री अप्पाजी एकदम परेशान हो उठे। श्री अप्पाजी बार-बार यही सोच रहे थे—वह इतना अच्छा कार्यकर्ता, उसका जीवन ऐसा आदर्शवादी, उसकी देश-सेवा इतनी गौरवपूर्ण और अब उसके जीवन की अन्तिम घड़ियों में ऐसा कलंक? यह क्या होने जा रहा है? जहाँ तक जीवन और मृत्यु का प्रश्न है, वह तो जो होना है, वह होगा ही, पर जीवन के अन्तिम क्षणों में कर्तव्य-च्युतिका कलंक माथे पर लगे, यह तो बिल्कुल ठीक नहीं। क्या किया जाये? उसकी पत्नी को कैसे समझाया जाये?

बहुत देर तक सोचने के बाद श्री अप्पाजी ने उस कार्यकर्ता की पत्नी को अपने पास बुलाया और उससे कहा—बेटी! तेरे पति की जो हालत है, पति के प्रति जो तेरी भावना है, उसकी गम्भीर बीमारी को देख करके तेरी जो मनस्थिति है, यह सब मैं समझ रहा हूं। तेरी विकलता मुझसे छिपी नहीं है। पर मेरी एक बात पर तू कुछ विचार कर। जिन्दगी भर तेरे पति ने जो कार्य किया है और जिस तत्व के लिये वह जिन्दगी भर स्वाभिमान से जिया है, अब अन्तिम समय में तू उसे उस गौरव से गिराने की कोशिश मत कर। मृत्यु तो किसी के बस की बात है नहीं, लेकिन जिस दैवी कार्य के लिये हम लोग खड़े हैं, उस दैवी कार्य में किसी प्रकार का कलंक लगे, ऐसा कार्य तू मत कर। पत्नी का कर्तव्य है कि वह पति को उसकी सच्ची राह पर स्वाभिमान के साथ खड़े रहने के लिये प्रेरित करे। मुझे अच्छी तरह मालूम है कि तेरे पति की हालत खराब है। इस प्रकार की विकट परिस्थिति में मन का सन्तुलन बना नहीं रह पाता, पर तू उस सन्तुलन को कायम रखने की कोशिश कर। तू मेरी बेटी की तरह है। मेरी अपनी बेटी के सामने भी यदि ऐसा ही प्रसंग उपस्थित होता तो उसे भी मैं यही कहता। मान, बेटी! तू मेरी बात मान ले।

श्री अप्पाजी की बात सुन करके कार्यकर्ता की पत्नी बड़ी उलझन में पड़ गयी। बहुत परेशान सी होकर वह कहने लगी—मैं आपकी बात समझ नहीं

रही हूं, ऐसी बात नहीं है, पर मैं क्या करूँ? यह तो मेरे सुहाग का प्रश्न है और स्त्री के लिये सुहाग से बढ़ करके और कोई चीज होती नहीं।

उस कार्यकर्ता की पत्नी ने जो कहा था, वह ठीक ही कहा था। नारी का धन उसका मंगल सुहाग ही है। उसकी बात सुन करके श्री अप्पाजी सोच नहीं पा रहे थे कि क्या करें और कैसे इसे समझायें? फिर कुछ सोचकर श्री अप्पाजी बोले—क्या तू गारंटी लेती है कि जेल के बाहर ले जाने के बाद तू अपने पति को मरने नहीं देगी और वह जीवित ही रहेगा?

इस पर उसने कहा—तो क्या आप गारन्टी लेते हैं कि जेल में रहने से आप उसको मरने नहीं देंगे?

फिर न जाने कहाँ से और न जाने कितना अदम्य आत्मिक बल श्री अप्पाजी में उत्पन्न हुआ और वे बोले—हाँ मैं गारन्टी लेता हूं। यदि हमारा संघ-कार्य ईश्वरीय कार्य है और हम लोग निष्ठापूर्वक इस कार्य के लिये खड़े हैं तो तू सुन। जब तक तेरा पति जेल में है, तब तक वह नहीं मरेगा। हम लोग उसको मरने नहीं देंगे। यदि ऐसा समय आ ही गया तो पहले अप्पा जोशी का शव जेल के बाहर निकलेगा, उसके बाद तेरे पति का। अब तो तू मानेगी?

वह अब नत-मस्तक थी। कार्यकर्ता की पत्नी ने श्री अप्पाजी की बात मान ली। वह अपने घर लौट गयी। श्री अप्पाजी ने आश्वासन तो दे दिया, पर आयु कहाँ से दे देते? पर हृदय में एक अद्भुत प्रकार का विश्वास था कि यदि हमारा संघ-कार्य ईश्वरीय कार्य है और हम लोग निष्ठापूर्वक कर रहे हैं तो भगवान हमारी मदद जरूर करेंगे। इस विश्वास का आधार था श्री अप्पाजी के हृदय की अगाध आस्तिकता और उनके जीवन भर की अतुल तपस्या।

सभी बन्दी स्वयंसेवकों को सन्देश दिया गया कि वे अपने इस रुग्ण स्वयंसेवक बन्धु के लिये भगवान से प्रार्थना करें, जिससे उसे स्वास्थ्य की तथा आयु की प्राप्ति हो। सबने आराधना और प्रार्थना प्रारम्भ कर दी। महा-मृत्युञ्जय जप तथा अन्य प्रकार के अनुष्ठान भी किये गये। श्री अप्पाजी तो दिन रात बस, यही प्रार्थना करते—प्रभु! मेरी बेटी का सुहाग आबाद रख।

भगवान की कृपा से उस कार्यकर्ता की हालत में सुधार हुआ। जेल में जब तक रहा, सुधार ही होता रहा।

कुछ दिन बाद देश और समाज का चित्र बदला और राष्ट्रीय स्वयं-सेवक संघ पर से शासकीय प्रतिबन्ध हटा दिया गया। सब स्वयंसेवक बन्धु

मुक्त कर दिये गये। सर्वत्र आनन्द छा गया। वह कार्यकर्ता भी प्रसन्नता पूर्वक अपने घर पर आ गया। घर पर एक मास तक अपने परिवार के बीच रहा। लगभग एक-डेढ़ मास के बाद उस कार्यकर्ता का देहान्त हो गया। तब श्री अप्पाजी उसके घर वालों से मिलने के लिये गये और उसकी पत्नी को सान्त्वना देने लगे। उसकी पत्नी ने अप्पाजी से कहा—आपने तो अपना आश्वासन पूरा किया, पर मैं अभागिन अपने सौभाग्य की सँभाल नहीं कर सकी।

श्री अप्पाजी बहुत देर तक उसकी पत्नी की भावनाओं को सहलाते रहे।

यह एक प्रसंग है संघ के कार्यकर्ताओं की आस्था का किंचित् आभास करा देने के लिये। 'संघ कार्य ईश्वरीय कार्य है,' ऐसी आस्था संघ के कार्यकर्ताओं और स्वयंसेवकों में संक्रमित हुई है परम पूज्य श्री गुरुजी (श्री माधवराव सदाशिव गोलवलकर) के परम आस्तिक एवं आध्यात्मिक व्यक्तित्व से। सब कार्यकर्ता श्री गुरुजी की भावनाओं से भावित थे। सभी श्री गुरुजी की भाव-रश्मियों से प्रकाशित थे। विन्दु सिन्धु का अंश है और जब विन्दु ही इतना गरिमामय है, तब वह सिन्धु कितना महान कितना विशाल होगा! आस्था के सिन्धु श्री गुरुजी की गहराई का आकलन तो अनुमान से परे की बात है। श्री गुरुजी की मान्यता के अनुसार प्रभु-भक्ति, देश सेवा और संघ-कार्य में सर्वथा अभेद है, एक ही कार्य की ये तीन संज्ञाएँ हैं। उनका विश्वास था कि संघ-कार्य के द्वारा देश की सेवा करते हुए हमारे द्वारा प्रभु की आराधना अर्चना हो रही है। इस आस्था के साकार स्वरूप थे श्री गुरुजी। यही कारण था कि समाज के बीच में रहते हुए भी उनका जीवन ऋषि सुलभ गरिमा से परिमण्डित था। ऋषियों के जीवन की निष्ठा और तत्परता, त्याग और तपस्या उनके जीवन में मूर्तिमान थी।

सबसे अधिक उल्लेखनीय बात है उनके जीवन में चरम अन्तर्मुखता तथा अत्यधिक बहिर्मुखता का अद्‌भुत संगम। बहिर्मुखता ऐसी कि संघ के एक-एक स्वयंसेवक की सतत स्मृति बनी रहती थी, देश की एक-एक घट-नाओं पर दृष्टि गड़ी रहती थी, समाज की एक-एक समस्याओं पर विचार होता रहता था और वे प्रगति के एक-एक सोपान का निर्देश देते रहते थे। हिन्दू समाज की वर्तमान दशा से उनका हृदय बड़ा विकल रहा करता था। समाज का नेतृत्व जिनके हाथ में था, वे लोग थे तो अपने ही बन्धु, फिर भी वे विदेशी मान्यताओं से ऐसे सम्मोहित थे मानो अपने महर्षियों-राजर्षियों की वंशानुवंश परम्परा से प्राप्त अपनी कोई गौरवास्पद राजकार्य-प्रणाली,

समाज-रचना, अर्थ-व्यवस्था, ऐतिहासिक गरिमा, शौर्य-गाथा, सांस्कृतिक निधि, राष्ट्र-भावना थी ही नहीं। राष्ट्रीयता की सही धारणा से विरहित होने के कारण वह नेतृत्व समाज को सही दिशा-बोध करा सकने में असमर्थ था। उनकी भ्रान्त धारणाओं का ही कुपरिणाम था—पद-पद पर तुष्टीकरण, देश का विभाजन, समाज का विघटन और पश्चिम का अनुकरण। हिन्दू समाज की इस पतनोन्मुखी स्थिति से श्री गुरुजी अत्यधिक व्यथित रहा करते थे। वे सदा सोचते रहते थे कि वह सुदिन कब होगा, जब इस पवित्र भारत-भूमि का पुत्र हिन्दू समाज अपने पुरातन वैभव को पुनः प्राप्त करेगा। विभाजित और विखण्डित भारत-भूमि, विघटित और विनिद्रित हिन्दू समाज, विभ्रमित और विमोहित राष्ट्र नेतृत्व, विगलित और विघातक राष्ट्र नीतियाँ, इन सबको देख-देख करके उनके मन में होने वाली तड़पन की सीमा नहीं थी।

और सीमा नहीं थी उनकी उस प्रयत्नशीलता की भी, जो थी हिन्दू देश और हिन्दू समाज के उत्कर्ष के लिये। देश के एक छोर से दूसरे छोर तक अविराम परिभ्रमण, संघ-शाखाओं के प्रसार द्वारा जन-जन से सम्पर्क-संस्थापन, बैठकों में स्वयंसेवकों से परिचय और उनका सुसंस्करण, शिक्षा-शिविरों में कार्यकर्ताओं का प्रशिक्षण, सामाजिक क्षेत्र में कार्य-रत प्रचारकों को प्रोत्साहन, सार्वजनिक कार्यक्रमों में लोगों को उद्बोधन, स्थान-स्थान पर समाज के प्रबुद्ध-प्रतिष्ठित व्यक्तियों से सम्मिलन-संभाषण, दिग्भ्रमित बन्धुओं को दिशा निर्देशन, संघ कार्य से अलग राष्ट्र-हितैषिणी प्रवृत्तियों और संस्थाओं का संपोषण, हिन्दू धर्म की विभिन्न उपासना पद्धतियों में परिव्याप्त एकात्मता का संतों एवं पंथों के मध्य जागरण, राष्ट्रीय साहित्य का प्रकाशन, हिन्दू-अहिन्दू सभी के मंगल का सदैव सम्पादन, इस प्रकार की अनवरत प्रयत्नशीलता का परिणाम यह था कि संघ-कार्य का अकल्पनीय विस्तार सर्वत्र हो सका और समाज के लोग 'राष्ट्रीय विवेक' से सम्पन्न हो सके। इसी सीमातीत प्रयत्नशीलता और सीमातीत तड़पन के फलस्वरूप श्री गुरुजी के जीवन में बहिर्मुखता भी सीमातीत थी और ऐसी सीमातीत थी कि उनके लिये आहार और विश्राम नगण्य हो गये थे, वस्तुतः उनके जीवन में भोजन और शयन नाम मात्र के रूप में रह गये थे।

ऐसी अत्यधिक बहिर्मुखता के बाद भी श्री गुरुजी प्रातःकाल जब संध्या-वन्दन करने के लिये अपने आसन पर बैठते थे तो उनको समाधिस्थ हो जाने में कठिनाई से दो-अढाई मिनट लगते थे। यह आश्चर्य का विषय है

और यह तथ्य सहज बुद्धिगम्य नहीं हो पाता कि जिस व्यक्ति के जीवन में तड़पन की अनुभूति और कार्य की बहुलता इतनी अधिक हो, वह कसे इन सारी व्यथाओं और व्यस्तताओं से तुरन्त अतीत होकर कतिपय क्षणों में ही समाधिस्थ हो सकता है ! नाना प्रश्नों का चिन्तन करने वाले और नाना दिशाओं में विचरण करने वाले मन को सर्वत्र से समेट करके तथा इन सब विषयों से तुरन्त अलग करके अपने ध्येय-विन्दु पर एकाग्र कर लेना साधारण बात नही है। जगत की स्मृति का न रहना यहाँ तक कि स्वयं की भी स्मृति का न होना, इन सबसे अतीत होकर ध्यान करते समय मन का ध्येय में समाहित हो जाना अध्यात्म-राज्य की अत्यन्त असाधारण उपलब्धि है। एकान्त के क्षणों में श्री गुरुजी की यह चरमान्तर्मुखता सचमुच अद्‌भुत स्थिति है और यह स्थिति सहज ही समझ में नहीं आ पाती।

वास्तविकता यह है कि कमरे के एकान्त में आसन पर अवस्थित होकर ध्यान-धारणा करते समय जिन आद्या शक्ति जगदम्बा के श्रीचरणों का स्मरण चिन्तन होता है, आसन पर से उठने के बाद कमरे के बाहर कार्य-क्षेत्र में उतर कर भारत माँ की सेवा के रूप में उन्हीं आद्या शक्ति जगदम्बा के श्रीचरणों की आराधना अर्चना होती है। भारत माता के रूप में वह आद्या शक्ति जगदम्बा ही हमारी सेवा स्वीकार कर रही है। भारत-भूमि के और भारत माता के पुत्र हिन्दू समाज के हित का अहर्निश क्रियान्वयन ही मातृ-चरणों की उपासना थी। श्री गुरुजी के विचारों का प्रवाह था मातृ-चरणों का अनवरत चिन्तन, जन-जन से सम्भाषण करते समय उनके अधरों से निःसृत होने वाले शब्द थे भगवती जगदम्बा की स्तुति और मातृ-भूमि की सेवा के द्वारा उन्होंने की निरन्तर भगवती जगदम्बा की अर्चना। उनका एक-एक विचार, एक-एक शब्द और एक-एक कार्य मातृ-अर्चना का अंग था, उनका तन-मन-वचन-जीवन सब कुछ माँ के चरणों पर अर्पित था। अर्चना में तल्लीनता ऐसी कि शरीर की सँभाल भी नगण्य हो गयी। स्वल्प आहार और अत्यल्प निद्रा के उपरान्त भी अथक-अकथ परिश्रम उनके विदेहत्व का परिचायक है। उनकी सभी चेष्टाएँ सर्वदा प्रेरणा प्रदान करती रहती थीं। बहिर्मुखी जीवन में अत्यधिक क्रियाशीलता होते हुए भी एकान्त के क्षणों में तुरन्त समाधिस्थ हो जाने का रहस्य यही था कि भीतरी जीवन और बाहरी जीवन, ऐकान्तिक जीवन और सामाजिक जीवन, इन दोनों के प्रति उनकी भेद-बुद्धि सर्वथा समाप्त हो गयी थी और उनकी प्रत्येक चेष्टा के द्वारा प्रत्येक क्षण मातृ-अर्चना सम्पन्न होती थी।

अच्छे-अच्छे योगियों के लिये भी यह आध्यात्मिक 'स्वरूप स्थिति' दुर्लभ है। समर्थ स्वामी रामदास, स्वामी विवेकानन्द जैसे सन्तों की परम्परा के परमोज्ज्वल रत्न श्री गुरुजी की इस स्वरूप-स्थिति पर विमुग्ध था मेरा अन्तर और इसी ने आकृष्ट किया मुझे इस संकलन कार्य के लिये। जिनके ऐकान्तिक स्मरण-वन्दन का प्रत्येक क्षण था परम वत्सला जगदम्बा के श्रीचरणों की पावन स्मृति, जिनके अन्तर का प्रत्येक विचार था मातृ-चरणार्पित सुमन-विभूति, जिनकी वाणी का प्रत्येक शब्द था मातृ-वन्दना-रत पुनीत संस्तुति और जिनके कृश शरीर की प्रत्येक चेष्टा थी मातृ-चरणों की सेवा-यज्ञाग्नि में दी जाने वाली दिव्य आहुति, उन्हीं ऋषि-जीवन अध्यात्म-मूर्ति श्री गुरुजी के जीवन के कतिपय प्रसंगों का संकलन इस पुस्तक में हुआ है।

इस श्रेष्ठ कार्य के लिये उत्प्रेरित करके मित्रवर श्री सुधीर जी दिवंगत हो गये। फिर अपने स्नेही बन्धुओं के उत्साह भरे सहयोग से यह संकलन-कार्य पूर्ण हो पाया। इस संकलन के अधिकांश प्रसंग यत्र-तत्र पत्र-पत्रिका-पुस्तिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। पूर्व प्रकाशित होते हुए भी इन प्रसंगों का एक स्थान पर एकत्रीकरण ही इस संकलन की नवीनता है। इस एकत्रीकरण में विविध प्रसंगों के द्वारा श्री गुरुजी के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों को उद्घाटित करने का प्रयास किया गया है। संकलन करते समय ऐसा भी कहीं-कहीं हुआ है कि एक प्रसंग में अन्यत्र प्रकाशित तथ्य भी मिला दिये गये हैं। उदाहरणार्थ, इस संकलन में माननीय श्री रज्जू भैया का 'श्री बद्रीनाथ यात्रा' शीर्षक एक प्रसंग छपा है, इस प्रसंग में पूज्य श्री गुरुजी तथा श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी द्वारा लिखित अंश भी सम्मिश्रित कर दिये गये हैं। यत्र-तत्र से प्रसंगों को संकलित करने के कार्य में तथा संकलित प्रसंगों में यहाँ-वहाँ सम्मिश्रित करने के प्रयास में मेरे द्वारा जो भी प्रमाद हुआ हो, उसके लिये मैं क्षमा की याचना करता हूं।

सर्वान्त में, विभिन्न प्रसंगों के माध्यम से उद्भाषित होने वाली परम पूज्य श्री गुरुजी के जीवन की यह लोकोत्तर गौरव-गाथा हम सभी के अन्तर को देश-धर्म पर आत्मोत्सर्ग करने की भावना से अनुपूरित कर दे, यही मातृ-चरणों में विनम्र प्रार्थना है।

विनीत

गीता वाटिका, गोरखपुर **राधेश्याम बंका**

११-७-८३

अपनी बात

भव्य भवन निर्माण के लिए सुदृढ़ नींव अपरिहार्य है। विशाल राष्ट्र-भवन का निर्माण असंख्य समर्पित व्यक्तियों के बलिदान तथा तिल-तिल कर अपने को गलाने से ही सम्भव है। नाम, मान-सम्मान व सुख-वैभव की कामना से विरत एवं प्रखर राष्ट्र-भक्ति से ओत-प्रोत संगठित कार्यकर्ताओं के अनुशासनपूर्ण परिश्रम से ही राष्ट्र का रथ वैभवपूर्ण गन्तव्य की ओर अग्रेसर होगा।

राष्ट्र में ऐसे बन्धु कैसे प्राप्त हों? सभी देश-प्रेमी विचार-शील व्यक्तियों की चिन्ता का यह विषय है।

परमपूज्य श्री गुरुजी के ३३ वर्ष की अखण्ड अविरल साधना का ही प्रतिफल है— ऐसे देव दुर्लभ ध्येयवादी कार्यकर्ताओं का देशव्यापी समूह।

उनके श्रेष्ठ जीवन के असंख्य बोधप्रद प्रसंगों में से कुछ ही इस संग्रह में संकलित हो सके हैं जो उस सफल साधना का अन्तरंग परिचय प्रदान करते हैं।

आशा है यह छोटा सा संकलन भी सर्वांग-वैभव सम्पन्न राष्ट्र-निर्माण की आकांक्षा में रत बन्धुओं का मार्गदर्शन कर उन्हें अधिक आत्मविश्वास से अग्रेसर होने की प्रेरणा प्रदान करेगा।

अभी भी जहां कुछ प्रसंग संग्रहीत हैं वहां अनेक बिखरे फैले हैं। कृपालु पाठकों के प्रोत्साहन पर भविष्य में इस प्रकार का संकलन और भी सम्भव है।

—प्रकाशक

फाल्गुन कृष्ण ११, संवत २०४०

२७ फरवरी १९८४

अनुक्रमणिका

१५. प्रशंसा-प्रसिद्धि से दूर

१६. महापुरुषों एवं नेताओं से सम्पर्क



: १ :

आदर्श जीवन

(एक)

उनसे निकट सम्बन्ध : मेरा अहोभाग्य

मेरा यह अहोभाग्य रहा कि मेरा संघ के दो महापुरुषों संघ-निर्माता डा० हेडगेवार तथा उनके पश्चात् अपने प० पू० श्री गुरुजी के साथ बड़ा निकट का सम्बन्ध रहा। डाक्टरजी के समय छोटी आयु के कारण मेरी समझ कम थी तथा उनके सहवास में मेरा गठन हो रहा था। मेरे समान ही मेरे अन्य साथियों की, जो आज भिन्न-भिन्न प्रान्तों में प्रमुख के नाते कार्य कर रहे हैं, स्थिति थी। जब गुरुजी के साथ हमारा सम्बन्ध आया, तब हम डाक्टरजी द्वारा गढ़े जा चुके थे। हम लोगों की व्यावहारिक शिक्षा भी समाप्त हो चुकी थी और उस समय कोई नागपुर में तो कोई भिन्न-भिन्न प्रान्तों का कार्यभार संभालने लगा था। जब गुरुजी के साथ सम्पर्क आया, तब 'हम अनुभवी हैं, हमने कुछ कार्य किया है, हम कुछ जानते हैं,' ऐसा भाव या अहंकार मन के कोने में नहीं रहा होगा, यह नहीं कहा जा सकता।

यद्यपि १९४० में प० पू० डाक्टरजी के देहान्त के पश्चात् श्री गुरुजी सरसंघचालक बने तथापि उसके पूर्व भी हम लोगों

को उनके साथ जैसा-जितना सम्बन्ध आया था, उसके आधार पर उनके सम्बन्ध में उस समय हमारी निश्चित कोई धारणा नहीं बन पायी थी– वैसे 'वे बुद्धिमान तथा बहुश्रुत हैं', यह हम लोगों ने सुना था तथा उन गुणों का हम अनुभव भी करते थे परन्तु उन्होंने अपने भावी जीवन की दिशा तब तक निश्चित नहीं की थी। उनकी रुचि हमें आध्यात्मिकता की ओर अधिक दिखायी दी। सर्वसाधारण लोगों जैसी वेशभूषा धारण करने वाले गुरुजी को हमने कुछ दिनों के बाद दाढ़ी-केश बढ़ाये हुए देखा, इन सब बातों के कारण हम लोग उनके विषय में कोई निश्चित धारणा नहीं बना पाये।

इन प्रारम्भिक सम्बन्धों के बाद सन् १९३८ में डाक्टरजी की उपस्थिति में सिंदी में हुई एक दीर्घकालीन बैठक में उनके निकट सम्पर्क में आने का अवसर मिला। उस बैठक में हम लोगों ने श्री गुरुजी की वादविवाद-पटुता, बुद्धिमत्ता तथा अभिनिवेश के साथ स्वमत-प्रतिपादन की क्षमता आदि विशेषताएं देखी। साथ ही बैठक में एक निर्णय हो जाने पर उसे शिरोधार्य करके चलने की उनकी संघवृत्ति (टीम-वर्क) का भी परिचय मिला। अब तो हम लोगों का मन दुखित न हो, इसलिए हमारी बातें वे मान लेते थे। अन्तिम दिनों में तो उनकी इच्छा न होते हुए भी, हम लोगों की उदासी देखकर ही, इन्जेक्शन लेने के लिए वे डाक्टर के सामने अपना हाथ बढ़ा देते थे।

१९३८ से १९४० में उनके साथ मेरा और घनिष्ठ सम्पर्क आया। १९४० के नागपुर संघ-शिक्षा-वर्ग के वे सर्वाधिकारी थे। उनके साथ ४० दिन के इस सहवास के काल में मुझे उनके व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं तथा गुणों का गहरा परिचय प्राप्त हुआ। मुझे यह भी ज्ञात हुआ कि डाक्टरजी उनकी ओर विशेष दृष्टि से देखते हैं। डाक्टरजी १९३८ से संघ कार्य के बारे में कुछ चिंतित-से दिखाई देने लगे थे। एक तो उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता था, जिसके कारण वे मनचाहा दौरा नहीं कर पाते थे। उस समय संघ कार्य का आज जैसा वटवृक्ष के समान विस्तार नहीं हो पाया था। गुरुजी के साथ सम्पर्क बढ़ने पर वे प्रसन्न हुए और हम लोगों से कहने लगे कि मुझे अंग्रेजी व हिन्दी, दोनों भाषाओं में धाराप्रवाह रूप से विचार रख सकने की क्षमता वाला पुरुष मिल गया है। हम लोगों ने जब गुरुजी का प्रथम अंग्रेजी भाषण सुना, तब अंग्रेजी भाषा पर उनका असाधारण अधिकार देखकर हम स्तम्भित रह गये। डाक्टरजी के व्यक्तित्व में ऐसा

कुछ अवश्य था कि एक बार मिलने के लिए आया हुआ व्यक्ति बार-बार उनके सम्पर्क में आने की इच्छा करने लगता। गुरुजी का भी वही हुआ। वे डाक्टरजी की ओर धीरे-धीरे आकृष्ट हुए और डाक्टरजी ने १९४० में संघ कार्य का सम्पूर्ण दायित्व उन पर सौंप दिया। उस समय गुरुजी की आयु लगभग ३४-३५ वर्ष की होगी। सार्वजनिक जीवन के बारे में उनका अनुभव भी अधिक नहीं था। उन्होंने अपने अन्तिम पत्र में जो कहा है कि उन पर जब सरसंघचालक-पद का भार आ पड़ा, तब वे कुछ जानते नहीं थे, उनका यह कथन औपचारिकता नहीं, अपितु वस्तुस्थिति है। उन्होंने सफलता का काफी श्रेय सहयोगियों को दिया है, परन्तु स्वयं श्री गुरुजी का श्रेष्ठ व्यक्तित्व भी एक बहुत बड़ा कारण है। सरसंघचालक-पद का भार ग्रहण करने के बाद अत्यन्त श्रद्धा तथा लगन के साथ वे कार्य में जुट गये। उनके स्वभाव में आमूल परिवर्तन हो गया। प्रारम्भ में वे क्रोधी स्वभाव के थे, परन्तु संघ कार्य प्रारम्भ करने पर उन्होंने अपना क्रोधी स्वभाव बदल डाला। प्रारम्भिक दिनों में बैठक में कभी-कभी गुरुजी उग्र रूप धारण तो कर लेते थे, परन्तु कुछ मिनटों के बाद वे कोई ऐसी बात छेड़ देते थे कि बैठक के वातावरण की गम्भीरता दूर होकर हंसी का वातावरण छा जाता था। वे हम लोगों से कहते थे 'कि यद्यपि वे शीघ्रकोपी हैं, तथापि दीर्घद्वेषी नहीं हैं।'

देश के विभाजन तथा संघ पर प्रतिबन्ध के समय उनकी क्षमावृत्ति और उग्रवृत्ति का अनुभव मैंने स्वयं किया है। नवम्बर १९४७ से जनवरी १९४८ तक अर्थात् संघ पर प्रतिबन्ध लगने तक मुझे श्री गुरुजी के साथ दौरा करने का अवसर मिला था। विभाजन के कारण हिन्दुओं पर जो संकट आया था, उसमें संघ-स्वयंसेवकों ने अपने बन्धुओं को बचाने में अद्भुत साहस दिखलाया था। यही कारण था कि उन दिनों श्री गुरुजी जहाँ भी जाते, वहाँ लाखों लोग उनका भाषण सुनने के लिए एकत्रित हुआ करते। लाखों लोगों का सभाओं में आना, उनका श्रद्धा से नतमस्तक होना, यह सब देखकर दूसरा कोई व्यक्ति होता तो अहंकार से फूल उठता, परन्तु गुरुजी ने लोगों से कहा कि वे अपने ही लोगों पर क्रोध न करें। गुरुजी के मन में विभाजन की बड़ी पीड़ा थी, अपने भाषण में उसकी वे आलोचना भी करते थे, फिर भी वे लोगों को क्रोध न करने तथा सन्तुलन न खोने का ही परामर्श देते थे। बम्बई की महती सभा में उन्होंने जो भाषण दिया, वह चिरस्मरणीय

रहेगा । उन्होंने वहां कहा था कि 'बाहरी आक्रमण के समय हम 'वयं पञ्चाधिकं शतम्' हैं ।

परन्तु जब शासनकर्ताओं ने बिना कारण संघ पर प्रतिबन्ध लगाया, तब उन्होंने शासनकर्ताओं के प्रति कड़ा रुख अपनाया था । प्रतिबन्ध-काल में सहस्रों स्वयंसेवकों ने सत्याग्रह करके कारावास का जीवन स्वीकार किया । श्री गुरुजी को भी बन्दी बनाया गया । संघ पर लगायी गयी पाबन्दी हटाने के विषय में उन्होंने सरकार का कड़े शब्दों में विरोध किया । गृह मंत्रालय के एक अधिकारी ने श्री व्यंकटराम शास्त्री के निकट, जो उन दिनों संघ और सरकार के बीच मध्यस्थता कर रहे थे, कहा भी था कि श्री गुरुजी के पत्रों की भाषा बहुत कड़ी रहती है । इसी पर श्री व्यंकटराम शास्त्री ने वक्तव्य देते हुए उन्हें उत्तर दिया था—

"Mr. M. S. Golwalkar is a blunt man, innocent of the etiquette required in a correspondence with Government. The soft word that turneth away wrath is not among his gifts."

श्री गुरुजी क्रोध का शमन करने वाली मधुर भाषा नहीं जानते थे, ऐसा नहीं थी, परन्तु संघ की प्रतिष्ठा रखने के लिए उन्होंने उस समय अत्यन्त कड़ा रुख अपनाया था ।

उनकी कार्यपद्धति की अनेक विशेषतायें हैं । प्रतिबन्ध-काल और कैंसर के आपरेशन के बाद का ३,४ मास का समय छोड़ दें तो लगभग ३२ वर्षों तक लगातार प्रतिवर्ष एक बार संघ-शिक्षा-वर्ग के निमित्त से और दूसरी बार छोटे या व्यापक दौरे के निमित्त से सम्पूर्ण देश का वे दौरा करते रहे । उनका अन्तिम प्रवास मार्च के १९७३ मध्य में समाप्त हुआ और उसके अढ़ाई मास बाद उनकी मृत्यु हुई । उनके जैसा अपने देश का इतना विस्तृत दौरा विश्व के किसी भी व्यक्ति ने नहीं किया होगा । इस दौरे में किसी-न-किसी व्यक्ति के घर में वे ठहरा करते थे तथा उस घर के सभी व्यक्तियों को अपने स्नेहपूर्ण व्यवहार से आकर्षित कर लेते थे । इस प्रकार उनका सम्बन्ध लाखों परिवारों के छोटे-बड़े व्यक्तियों से आया तथा ये व्यक्ति गुरुजी को अपने परिवार का ही एक निकट व्यक्ति मानने लगे थे । वे उन व्यक्तियों के सम्बन्ध की पूर्ण जानकारी रखते थे और दुबारा भेंट होने पर, प्रत्येक के विषय में नाम लेकर जानकारी पूछते थे । उनकी मृत्यु के बाद जो शोक

संवेदना के पत्र यहां आये हैं, उनमें कइयों ने लिखा है कि—We have been orphaned again—हम पुनः अनाथ हो गये हैं।

जैसा उनका प्रत्यक्ष सम्पर्क अद्‌भुत था, वैसा उनका पत्रव्यवहार भी था। श्री गुरुजी के कार्यकाल में पत्र-लेखन के क्षेत्र की कल्पना करते ही ऐसा लगता है कि किसी एक व्यक्ति के द्वारा यह होना असम्भव है। श्री गुरुजी स्वयं पत्र लिखते थे। मिलने आये हुए स्वयंसेवक आस-पास चारों ओर बैठे हुए हैं, वार्तालाप चल रहा है, हास्य-विनोद हो रहा है और उसी बीच में श्री गुरुजी पत्र लिखते जा रहे हैं। हम सबके लिए यह एक सुपरिचित दृश्य था। प्रतिदिन यदि पाँच पत्र लिखने का भी हिसाब रखें तो वर्ष में १५०० से २००० पत्र वे लिखते होंगे। इस हिसाब से पूरे ३३ वर्षों में उन्होंने कितने पत्र लिखे होंगे, इसकी कल्पना से आश्चर्यचकित होना पड़ता है। पत्र लिखने का भी यह एक 'विश्व-विक्रम' **'World-Record'** हुआ, ऐसा कहना पड़ेगा।

अपनी विशिष्ट कार्य-पद्धति के द्वारा उन्होंने संघ-कार्य का वर्तमान स्वरूप खड़ा किया है। डाक्टरजी ने संघ-कार्य की आधारशिला रखी और श्री गुरुजी ने प्रासाद खड़ा किया। वे संघ कार्यरूपी प्रासाद के शिल्पी थे। अनेक संकटों में से उन्होंने संघकार्य को बढ़ाया, संकटों के सामने वे विचलित नहीं हुए। जैसा कि एक संस्कृत सुभाषितकार ने कहा है कि जिस प्रकार उदय तथा अस्त के समय सूर्य का रक्तवर्ण एक सा रहता है, वैसे ही महापुरुष संपत्ति और विपत्ति में एक रूप रहते हैं। उसी प्रकार गुरुजी का व्यवहार अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियों में एक सा रहा—

उदये सविता रक्तो रक्तश्चास्तमने तथा।
संपत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता॥

उनके व्यक्तित्व का हर पहलू आश्चर्यजनक था। उनका स्वास्थ्य प्रारम्भ में उत्तम था, वे मलखम्भ के चैम्पियन थे। हम लोगों के सामने तो उनका दुर्बल शरीर ही रहा। इसलिये ये बातें सुनकर, सम्भव है, आश्चर्य लगता होगा। वे उत्तम संगीतज्ञ थे। स्वयं उत्तम वंशीवादक थे। नागपुर के सुप्रसिद्ध अंधगायक श्री सांवलाराम उनके अभिन्न-हृदय मित्र थे। परन्तु संघ-कार्य में जुट जाने के बाद उन्होंने अपनी सारी क्षमता सारी सक्रियता उसी ओर नियोजित कर दी। अपने स्वास्थ्य की चिन्ता नहीं की। अखंड कार्यरत रहे। अपनी शारीरिक पीड़ाओं के सम्बन्ध में कभी किसी से कुछ नहीं कहा। दूसरों के स्वास्थ्य के बारे में दस बार पूछा करते थे। जब नागपुर में

रहते, तब बीमार स्वयंसेवकों के घर मिलने जाते, मेडिकल कालेज में रुग्ण स्वयंसेवकों को देखने जाते थे।

उनके आदर्श के कारण सम्पूर्ण देश भर में संघ कार्य का एक विशेष वायुमण्डल निर्माण हुआ है। जब किसी संघटन के छोटे से लेकर बड़े तक, सभी एक विशिष्ट प्रकार का व्यवहार करते हैं तो उस संघटन का वायुमण्डल निर्माण होता है। आज जो कुछ संघ के विषय में लोभनीय और प्रशंसनीय दिखायी देता है, उसका सम्पूर्ण श्रेय श्री गुरुजी को है।

—परम पूज्य श्री बालासाहब देवरस

(दो)

माँ की सेवा का प्रचार क्यों ?

मई १९७२ की घटना है। ग्वालियर में मध्य-भारत प्रान्त का संघ-शिक्षा-शिविर चल रहा था। शिविर में श्री गुरुजी दो दिनों तक रहे। इस समय उन्हें एक पुस्तक 'राष्ट्रीय सुरक्षा के मोर्चे पर' भेंट की गयी। उस पुस्तक में भारत-पाक-युद्ध के समय राष्ट्रीय-स्वयंसेवक-संघ के स्वयंसेवकों की सेवाओं का उल्लेख था। स्वयंसेवकों के द्वारा पंजाब के मोर्चे पर जो त्याग और बलिदान किये गये थे, उनका संक्षिप्त और तथ्यपूर्ण विवरण उस पुस्तिका में दिया गया था। मुझे स्वयं वह पुस्तक बहुत अच्छी और उपयोगी प्रतीत हुई थी। हम सभी को पूर्ण आशा थी कि श्री गुरुजी भी उस पुस्तक की प्रशंसा करेंगे।

भेंटस्वरूप पुस्तक दी जाने पर और पुस्तक का परिचय पाने पर उन्होंने जो प्रतिक्रिया व्यक्त की, उसे सुनकर मैं दंग रह गया। उन्होंने कहा—इस प्रकार की पुस्तक वे स्वीकार नहीं करेंगे।

संघ-स्वयंसेवकों द्वारा की गयी सेवाओं का, बलिदान का, त्याग का इस प्रकार प्रचार किया जाना उन्हें अच्छा नहीं लगा। मैंने कहा—पुस्तक में उल्लिखित तथ्य भविष्य में इतिहास की सामग्री बन सकते हैं और इस प्रकार के साहित्य से संघ-कार्य का प्रचार भी होता है।

श्री गुरुजी ने मुस्कुराकर धीरे से उत्तर दिया—यदि कोई पुत्र अपनी माँ

की सेवा करने का समाचार प्रकाशित करे तो क्या उसे श्रेयस्कर माना जा सकता है ? स्वयंसेवकों ने भारत-माता की सेवा में जो कुछ किया, वह तो उनका स्वाभाविक कर्तव्य ही था, अतः उसका प्रचार कैसा ?

●

(तीन)

च्युति कभी नहीं

सन् १९३८ की बात है। लाहौर में संघ-शिक्षा-शिविर लगा था। शिविर में कुल ३५-४० ही स्वयंसेवक थे। अगस्त का महीना था। गुरुदत्त भवन का स्थान प्राप्त हुआ था। एक दिन सुबह मैं लालटेन साफ कर रहा था, तभी किसी ने आकर कहा कि परमपूज्य श्री डाक्टर साहब आये हैं। मैं वैसे-के-वैसे ही, काले हाथ, जो मिट्टी के तेल से सने थे, लिये बाहर आया। द्वार पर ताँगा खड़ा था।

श्री गुरुजी ताँगे से नीचे उतरकर ताँगे के पास ही खड़े थे। श्री डाक्टर साहब ताँगे से नीचे उतर रहे थे। श्री डाक्टर साहब आगे आये ही होंगे कि मैंने जाकर चरण स्पर्श किये और जैसे ही मैंने ऊपर देखा तो उन्होंने इशारे से यह सूचित किया कि श्री गुरुजी के भी चरण-स्पर्श करो। मैंने वैसा ही किया। श्री गुरुजी का हाथ पीठ पर लगा और उन्होंने पूछा—क्या लाइट नहीं है ?

मैंने कहा—हाँ, लाइट आज तक तो नहीं थी। हो सकता है, आज ही कनेक्शन मिल जाये।

उन्होंने विनोदभरी भाषा में कहा—क्या आज का ही मुहूर्त है ?

जैसे ही हम लोग अन्दर आये तो आदत के अनुसार बिजली का बटन दबाया। लाइट आ गयी। श्री गुरुजी ने कहा—लो, मुहूर्त सध गया।

यह श्री डाक्टरजी का पंजाब में पहली बार और आखिरी बार आना था। श्री डाक्टरजी और श्री गुरुजी आठ दिन लाहौर में रहे। लाहौर से लौटने के दो-तीन दिन पहले से ही श्री डाक्टरजी के कमर में दर्द शुरू हो गया था। लाहौर से जाने के बाद दौरा पूर्ण होते ही श्री गुरुजी का एक पत्र आया। पत्र में था दौरे का समाचार, कार्य सम्बन्धी कुछ मार्गदर्शन और

श्री डाक्टरजी के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में कुछ विवरण। उसी पत्र में श्री गुरुजी ने लिखा था कि श्री डाक्टरजी का व्यक्तित्व वैसा ही है जैसा किसी महा-पुरुष की गरिमा के बारे में भगवद्‌गीता में लिखा हुआ है :—

यद्‌यद्‌विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसंभवम्॥ (गीता/१०/४१)

(हे अर्जुन ! जो-जो भी विभूतियुक्त अर्थात् ऐश्वर्ययुक्त एवं कान्तियुक्त और शक्तियुक्त वस्तु है, उस-उसको तू मेरे तेज के अंश से ही उत्पन्न हुई जान।)

क्या यही बात श्री गुरुजी के सम्बन्ध में भी सचमुच सिद्ध नहीं होती ? सन् १९४१ का प्रसंग होगा। श्री गुरुजी लाहौर के दौरे पर आये थे। वे स्नान करने के लिए स्नानगृह में जा रहे थे। मैं स्नानगृह के पास ही खड़ा था। ज्यों ही वे भीतर जाने लगे, मैंने सावधान करने की दृष्टि से धीरे से कहा—अन्दर थोड़ी फिसलन होगी।

उन्होंने बड़े विश्वास से भीतर प्रवेश करते हुए कहा—चिन्ता की कोई बात नहीं। मैंने संभल कर ही पैर रखा है। मैं कभी फिसलूंगा नहीं।

अब मैं अपनी जानकारी की बात कर रहा हूं। सरसंघचालक बनने के बाद श्री गुरुजी ने तैंतीस वर्ष तक अखंड प्रवास किया, पैर में खड़ाऊँ हो या जूती हो या चप्पल हो या कहीं पर चढ़ने-उतरने का काम पड़ा हो, कहीं भी कभी भी उनका पैर फिसला नहीं। इतना ही नहीं तो भरे हुए कप से कभी चाय नीचे नहीं गिरी, भोजन करते समय थाली के बाहर अन्न का कुछ कण भी नहीं गिरा, और क्या कहूं, उनके कपड़े पर भी कभी धब्बा नहीं आया। सब प्रकार से उनकी दृष्टि सावधान रहा करती थी।

●

(चार)

क्या प्रार्थना सुनायी देगी ?

काल की वह काली रात, ५ जून १९७३ की वह क्रूर रजनी आने के पूर्व साढ़े सात-आठ बजे तक श्री गुरुजी कितने शान्त थे, कितने संयत थे कि आप सहज ढंग से डा० आबाजी थत्ते से कहते हैं—मैं प्रार्थना में जाऊँगा।

सात बज रहे थे। उन्हें कष्ट बहुत था। साँस नहीं ले पा रहे थे, फिर

भी वे संघ-प्रार्थना में जाने के लिए अपनी धोती की फेंट कसने की कोशिश करने लगे। आबाजी ने मना किया और प्रार्थना में जाने से रोकते हुए कहा—अपने कमरे से ही प्रार्थना सुनिये।

तब आप पूछते हैं—क्या यहाँ से प्रार्थना सुनायी देगी ?

यही श्री गुरुजी के जीवन की अन्तिम जिज्ञासा थी। आबाजी ने कहा—हाँ, सुनायी देगी।

फिर श्री गुरुजी कुछ नहीं बोले। वहीं कुर्सी पर बैठे-बठे ही प्रार्थना की। ऐसी प्रार्थना कौन कर पाता है ? कौन जानता था कि उनकी वह अन्तिम प्रार्थना सिद्ध होगी।

●

(पांच)

समय की पाबन्दी

प० पू० श्री गुरुजी की समय की पाबन्दी के बारे में विशेष निर्देश करने की वास्तव में आवश्यकता नहीं, फिर भी एक प्रसंग का उल्लेख करना चाहूंगा, जो अपनी विशेषता के कारण कुछ विशिष्ट है। सन् १९५२ की घटना है। पचास वर्ष पूर्व भारत को स्वतन्त्र कराने के उद्देश्य से 'अभिनव भारत' नामक एक क्रान्तिकारी संस्था स्थापित की गयी थी। संस्था के संस्थापकों ने अब उसको विसर्जित करने का निश्चय किया, अतः सन् १९५२ की मई में बड़े पैमाने पर संस्था का समापन-समारोह चार दिन तक सोत्साह मनाया गया। स्वातन्त्र्यवीर वि० दा० उपाख्य तात्याराव सावरकर स्वयं चारों दिन उपस्थित रहे। सेनापति पां० म० उपाख्य तात्याराव बापट ने समारोह का संचालन किया था। अनेक बड़े-बड़े नेताओं ने समारोह में पचास वर्षों के इतिहास का अवलोकन करते हुए क्रान्तिकारी गतिविधियों पर अपनी ओजस्वी वाणी से प्रकाश डाला। समारोह के कार्यक्रमों में लाखों लोग उपस्थित रहा करते थे। इस वर्ष पुणे के संघ-शिक्षा-वर्ग में आये हुए स्वयं-सेवक सौभाग्यशाली रहे, क्योंकि उन्हें समारोह के सायंकालीन कार्यक्रम में उपस्थित रहकर गणमान्य नेताओं के विचारों को सुनने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

श्री गुरुजी के पास भी समारोह में भाग लेने के लिए निमन्त्रण भेजा गया था। श्री गुरुजी की पुणे-संघ-शिक्षा-वर्ग में उपस्थित रहने की तिथि तथा इस समारोह की तिथियाँ एक ही थीं। समारोह के अन्तिम चौथे दिन श्री गुरुजी के भाषण का कार्यक्रम था। श्रेष्ठ-श्रेष्ठ वक्ता व्यासपीठ पर विराजमान थे। केवल पाँच मिनट पूर्व श्री गुरुजी सभा-स्थल पर पहुँचे। श्री गुरुजी को आते हुए देखकर एक स्वयंसेवक ने तुरन्त धीरे से स्वातन्त्र्यवीर सावरकरजी को उनके आने की सूचना दी। उसी समय मंच के पीछे की सीढ़ियों पर चढ़कर श्री गुरुजी व्यासपीठ पर पधारे।

सावरकरजी ने श्री गुरुजी का स्वागत करते हुए कहा—आइये माधवरावजी।

अभिवादन करने के लिए ज्यों ही श्री गुरुजी कुछ नीचे झुके, त्योंही सावरकरजी ने अपना हाथ आगे बढ़ाया और श्री गुरुजी को अपने समीप ही बिठा लिया। श्री बापट, श्री सावरकर जैसे दो वयोवृद्ध श्रेष्ठ नेताओं के बीच में बैठते हुए श्री गुरुजी यदि कुछ सकुचाये हों तो कोई आश्चर्य नहीं, परन्तु वे उस अनुरोध को टाल भी नहीं सकते थे। व्यासपीठ पर विराजमान होते ही श्री गुरुजी ने सर्वप्रथम सावरकरजी से उनके स्वास्थ्य के बारे में पूछताछ की। उस पर हंसते हुए तथा सीना तानकर सीधे बैठते हुए उस सत्तर वर्ष के 'युवक' ने प्रति-प्रश्न पूछा—आपको क्या लगता है?

इस तरह के प्रश्न और इस तरह के उत्तर सुनने के लिये तथा निकट से ऐसा दृश्य देखने के लिये बहुत बड़ा पुण्य चाहिये।

सभा का समय होते ही समारोह के सभापति सेनापति बापटजी आगे बढ़े। विगत तीन दिनों का अनुभव कुछ ठीक नहीं था। 'चार शब्द' बोलने की अनुमति मिलने के बाद बोलने वाले वक्ताओं ने समय का पालन नहीं किया और वे भावावेश में बहकर जरूरत से बहुत ज्यादा समय तक बोलते रहे। समारोह में वक्ताओं की संख्या अधिक और समय कम था, इसलिए वक्ताओं पर समय-पालन का प्रतिबन्ध लगाना आवश्यक हो गया था। सेनापति बापट ने श्री गुरुजी को भाषण के लिये दस मिनट का समय देकर उन्हें श्रोताओं के समक्ष आने के लिये अनुरोध किया। निर्धारित समय के भीतर भाषण पूर्ण करने की सूचना बापट जी सभी को ही दे रहे थे, परन्तु गुरुजी को देते समय वे अपनी हंसी रोक नहीं सके। तब श्री गुरुजी, स्वातन्त्र्य वीर सावरकर तथा सारी सभा भी हंस पड़ी। भाषण के लिये खड़े होते ही

श्री गुरुजी ने अपनी घड़ी सेनापति बापटजी के सामने रख दी और उन्होंने अपना भाषण प्रारम्भ करके कहा—

"क्रान्तिकारियों को पागल, सिर-फिरे कहकर लोग खुद की अकलमन्दी का रौब दिखलाते हैं, पर सत्य यह है कि उन्हें क्रान्तिकारियों की राष्ट्रभक्ति की उग्रता सहन नहीं होती। क्रान्ति की अग्नि में सर्वार्पण करके उसी क्रान्ति की ज्वाला को युवकों के अन्त:करण में प्रज्वलित करने के लिए जीवित रहने वाले डाक्टर हेडगेवारजी के चरण-चिह्नों का अनुसरण करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। अतः क्रान्तिकारियों को आदरपूर्वक वन्दन करना तथा उनके प्रति स्मृति-सुमनाञ्जलि चढ़ाना मेरा कर्तव्य है। अब यह नहीं चलेगा कि क्रान्ति का चाहे जो अर्थ लगा लिया जाये। स्थायी क्रान्ति के लिये अहर्निश परिश्रम करना और वह भी शान्ति के मार्ग से प्रयास करना आवश्यक है। इसके लिए उग्र तपस्या की आवश्यकता है। इस समारोह में सभी को अपने हृदय में यह धारण कर लेना चाहिये कि दैन्यमय लोकजीवन को सर्वथा समाप्त करके सच्चे अर्थ में सुखी-समृद्ध भारत का निर्माण करने के लिये, राष्ट्रभक्तिशून्य अराष्ट्रीय भावनाओं पर आघात करने के लिये, भारत के अर्थात् हिन्दुराष्ट्र के राष्ट्रीय जीवन सम्बन्धी स्वप्न को परिपूर्ण करने के लिये तथा इस राष्ट्र का राष्ट्रध्वज अर्थात् भगवाध्वज को यावच्चन्द्रदिवाकरौ फहराते रहने के लिये अपने अन्तः-करण में क्रान्ति की ज्योति को निरन्तर जाग्रत रखना आवश्यक है।"

जब सारी सभा भाषण सुनने में विभोर थी, उसी समय गुरुजी ने अपना भाषण समाप्त कर दिया। दस मिनट पूर्ण होने में अभी कुछ क्षणों की देरी थी। वास्तव में सेनापति बापटजी को तथा सभा को ऐसा लग रहा था कि श्री गुरुजी दस-पन्द्रह मिनट और भाषण दें। श्रोताओं ने तालियों की गड़गड़ाहट के माध्यम से अपना मनोभाव व्यक्त कर दिया। स्वातन्त्र्य-वीर सावरकरजी ने भी कहा कि मेरे दस मिनट कम करके माधवराव को समय क्यों नहीं दे देते। परन्तु अब वह घड़ी हाथ से निकल चुकी थी। भाषण प्रारम्भ करने के पूर्व समय का जो निर्देश दिया गया था, उसी निर्देश ने सेनापति जी को उलझन में डाल दिया था। भाषण समाप्त करके आसन ग्रहण करते हुए गुरुजी ने सेनापतिजी को अभिवादन किया। समय का पूरा ध्यान रखने के विषय में गुरुजी की तत्परता देखकर सारी सभा भी विस्मित हो गयी थी।

सभा की ओर से सेनापति बापट ने प्रशंसा की और अभिनन्दन करते

हुए श्री गुरुजी से कहा—आपके समान नेता के हाथों में संघ की बागडोर सौंप करके डा० हेडगेवारजी अवश्य निश्चिन्त हुए होंगे और भारत का भविष्य निश्चय ही उज्ज्वल है।

'आपकी कृपा' कहते हुए श्री गुरुजी जाने के लिये जब खड़े होने लगे तो स्वातन्त्र्यवीर सावरकरजी भी विहंसते-मुस्कुराते खड़े हुए और उन्होंने श्री गुरुजी का आलिंगन किया। वह दृश्य देखकर अनेकों की आँखों में आँसू आ गये। तालियों की गड़गड़ाहट से सभास्थल गूंज उठा।

(छः)

वे बहुमूल्य वस्तुएँ

मैंने पूछा—डाक्टर साहब ! कोई चीज रह तो नहीं गयी ?

मैंने यह प्रश्न पूछा श्री गुरुजी के निजी सहायक डा० आबाजी थत्ते से उस समय, जब वे अभी रेल के डिब्बे के अन्दर ही थे। प्रातःकाल का समय था। गाड़ी कुछ लेट थी। ज्वालापुर में प्रायः भीड़ नहीं रहती, क्योंकि इससे अगले स्टेशन हरिद्वार के लिये ही यात्री अधिक रहा करते हैं। ज्वालापुर में गाड़ी का रुकना केवल दो मिनट का ही होता है। इस कारण उतरनेवाले यात्री फुर्ती करते हैं। यह स्वाभाविक ही है। परन्तु पहले दर्जे के डिब्बे में इसका कोई लक्षण नहीं था। इसके अलावा कई व्यक्तियों ने मिलकर श्री गुरुजी का सामान उतार लिया था। डा० थत्ते ने मेरे प्रश्न का उत्तर दिया—मेरा विचार है कि सब सामान उतर गया है।

परन्तु इस प्रश्न के उत्तर में श्री गुरुजी ने कहा—जो सामान उतर गया, उसको छोड़कर शेष हरिद्वार चला गया है।

यह सुनकर मुझे कुछ चिन्ता हुई, परन्तु वे मुस्कुरा रहे थे। मैंने नमस्कार करने के पश्चात् पूछा—क्या सचमुच ही कोई चीज हरिद्वार चली गयी है ? कोई चीज डिब्बे में रह गयी है क्या ?

वे मुस्कुरा दिये और कहने लगे—डिब्बे में किसी चीज के रहने का पता कैसे लग सकता है ?

मैंने सुझाव दिया—अभी एक आदमी हरिद्वार भेज देते हैं। वह डिब्बे की तलाशी लेने के बाद यहाँ लौट आयेगा।

श्री गुरुजी ने कहा—परन्तु वह चीज तो उसके पहुंचने के पहले ही उड़ सकती है।

मैंने पूछा—क्या इस प्रकार पहले भी कोई चीज खो गयी है ?

श्री गुरुजी चुप हो गये। जैसा कि बाद में पता चला, यह बात नहीं थी कि उनके पास इसका उत्तर नहीं था। शायद वे यह सोच रहे थे किन शब्दों में उत्तर दिया जाये। उन्होंने धीरे से कहा—वीरजी ! सारा सामान न उतारने के कारण एक बार नहीं, दो बार ऐसी चीजें गुम हो गयी हैं, जिनके मूल्य का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। पहली बार तो स्वयं पूज्य डाक्टर हेडगेवारजी के हाथ की लिखी हुई प्रार्थना गुम हो गयी। अब वह मिल नहीं सकती। यह कितना बहुमूल्य कोष था ! जिसके हाथ यह लगी होगी ,वह इसके मूल्य का अंदाजा लगा नहीं सकता।

मैंने पूछा—दूसरी ?

श्री गुरुजी ने कहा—स्वामी विवेकानन्द के पास एक चाकू रहा करता था। वह किसी प्रकार से मेरे पास पहुंच गया। सामान उतारने वालों की लापरवाही से वह बहुमूल्य वस्तु भी गुम हो गयी। न मालूम किसके हाथ वह चाकू पड़ा होगा और अब वह उससे क्या कार्य ले रहा होगा।

सचमुच ही ये दोनों वस्तुएं बहुमूल्य थीं और इनके गुम हो जाने से बहुत बड़ी हानि हुई।

(सात)

क्या फकीरी छोड़ दूँ ?

डा० श्री श्यामाप्रसादजी मुखर्जी का कश्मीर में भारत की अखण्डता के लिये बलिदान हो चुका था। श्री श्यामाप्रसादजी मुखर्जी सरीखा व्यक्ति, जो लोकसभा में श्री नेहरूजी जैसे नेता पर भी अंकुश रखता था और संसद में जिसकी बात कड़ुवी लगने के बाद भी आग्रहपूर्वक सुनी जाती थी, फिर कहाँ मिलेगा—यह प्रश्न लोगों के मन में चक्कर काट रहा था। उनके निधन

के एक-दो वर्ष बाद श्री गुरुजी प्रयाग आये। कार द्वारा पूज्य श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी के आश्रम पर उन्हें ले जाने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था।

श्री ब्रह्मचारीजी के आश्रम में दण्डवत् के पश्चात् मुस्कराहट के साथ वार्तालाप का क्रम आरम्भ हुआ। थोड़ी देर में श्री ब्रह्मचारीजी गम्भीर हो गये। उन्होंने स्लेट पर लिखकर वार्ता आरम्भ की—डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी गये। अब देश का क्या होगा? एक ही व्यक्तित्व था, जो नेहरूजी को झुका सकता था, उनका स्थान ले सकता था, वह संसार से चला गया। अब ऐसा कोई राष्ट्रीय नेता नहीं है, जो नेहरूजी से बात मनवा सके। इसके लिये तो नेहरूजी से समकक्ष कोई अखिल भारतीय नेता चाहिये, जो आवश्यकता पड़ने पर उन पर अंकुश लगा सके। ऐसा व्यक्तित्व तो केवल आपका है।

श्री ब्रह्मचारीजी ने फिर अपने कथन में अर्थभरे शब्द जोड़े—आप जनसंघ के 'सभापति' क्यों नहीं बनते? आप ही एक ऐसे हैं, जो नेहरूजी से बात मनवा सकते हैं। और दूसरा अखिल भारतीय व्यक्तित्व कहाँ मिलेगा?

श्री गुरुजी ने उतनी ही गम्भीरता से अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा—यदि किसी युवती को कोई 'पति' नहीं मिलता तो मैं अपनी फकीरी क्यों छोड़ूँ?

इस पर सभी एकाएक ठहाका मारकर हँस पड़े। इसके बाद भी अनेक बार श्री गुरुजी के साथ श्री ब्रह्मचारीजी के आश्रम पर गया हूँ, किन्तु फिर कभी श्री ब्रह्मचारीजी ने ऐसी बात नहीं की।

: १ :

गुरुदेव के सान्निध्य में

(एक)

रात में देर तक बर्तन मांजना

एक बार संघ-कार्य के निमित्त दौरा करते समय श्री गुरुजी को कलकत्ते में उनका एक पुराना सुपरिचित संन्यासी मिल गया। श्री गुरुजी को देखते ही उसने मधुर उलाहनों की भरमार कर दी। वह बोला—सारगाछी आश्रम में तो स्वामी (श्री अखण्डानन्द) जी के कहने पर तुम रात में देर तक भण्डारे के बड़े-बड़े बर्तन भी माँजने-धोने में खूब परिश्रम करते थे। सवेरे स्वामीजी जब देखते थे कि बर्तन तो बढ़िया मँजे हैं तो खुश होते थे। वे इस बहाने तुम्हारी परीक्षा ले रहे थे कि विश्व-विद्यालय का एक प्रोफेसर, जो कुछ दिन वकालत भी कर चुका है, भण्डारे के भारी-भारी बर्तन धो भी सकेगा कि नहीं? परन्तु तुम उनकी परीक्षा में खरे उतरे थे, फिर रात-रात जगकर तुम उनके पाँवों में मालिश भी करते रहते थे। तभी तो प्रसन्न होकर स्वामीजी ने तुम्हें अपना कमण्डलु दिया, अपनी चट्टी और चित्र भी तुम्हीं को दे गये, अन्य किसी को नहीं दिया। वे तुम्हें इतना चाहते थे और अब तुम कभी आश्रम आते भी नहीं?

(दो)

सारगाछी का साधक जीवन

मुर्शिदाबाद जिले का एक छोटा-सा ग्राम सारगाछी कलकत्ते से १७७ किलोमीटर की दूरी पर है, जहाँ श्रद्धेय स्वामी श्री अखण्डानन्दजी का प्रदीर्घ निवास हुआ था। उन दिनों श्रद्धेय स्वामी श्री अखण्डानन्दजी रामकृष्ण मठ और मिशन के अध्यक्ष थे। इन्हीं श्रद्धेय श्री स्वामीजी के अनुग्रह की प्राप्ति की आकांक्षा श्री गुरुजी के मन में उत्पन्न हुई थी। इसी अनुग्रह-प्राप्ति के आकर्षण से ही श्री गुरुजी घर-द्वार नाता-रिश्ता मान-सम्मान, पुरजन-परिजन आदि सब कुछ का नागपुर में ही परित्याग करके पाशरहित-ममतारहित होकर सारगाछी पहुंच गये थे। नागपुर स्थित रामकृष्ण मिशन के श्री अमिताभजी महाराज का बहुत बड़ा हाथ था श्री गुरुजी को सारगाछी पहुँचा देने में। वहाँ पहुँचते ही श्रद्धेय श्री स्वामीजी के दर्शन हुए और ३० वर्ष की आयु में श्री गुरुजी की नयी साधना का शुभारम्भ हुआ।

शीघ्र ही दीपावली आने वाली थी और अमावस्या को होने वाली कालीपूजा का वातावरण बनने लगा। इस पूजा का विधि-विधान जटिल होता है और वह प्रदीर्घ काल तक चलता है, किन्तु मुमुक्षु की आध्यात्मिक उन्नति के लिए वह अत्यन्त पोषक माना जाता है। अतः श्रद्धेय श्री स्वामीजी का आदेश हुआ कि यह पूजा श्री निरामयानन्दजी के द्वारा सम्पन्न हो और पूजा के कार्य में सहायता प्रदान करें नवागत साधक श्री गुरुजी। दीपावली आयी और कालीपूजा प्रारम्भ हुई। वह पूजा पूरी रात चलती रही और हवन की समाप्ति तक पौ फटी।

सारगाछी में नवम्बर में अच्छी सर्दी रहा करती है। उस कड़ाके के जाड़े में रात भर सतत् काम करते रहना आसान नहीं था। पूजा की उस रात्रि में श्री गुरुजी का निरन्तर ठण्डे पानी से ही सम्बन्ध था। उनका काम था थालियाँ, कमण्डलु, लोटे, झारियाँ, पंचारती, नीराजन आदि पूजा के उपकरण तथा अन्य बरतन-भाजन जैसे-जैसे खाली मिलते जायें, उनको माँजना साफ करना और जरूरत पड़ने पर पूजा के लिए दे देना। यह काम नवागत साधक श्री गुरुजी ने तत्परता से किया। कहीं त्रुटि नहीं आने दी।

दिन निकलते ही श्रद्धेय श्री स्वामीजी ने श्री निरामयानन्दजी से पूजा की विधि की सम्पन्नता और प्रसाद-वितरण आदि के बारे में पूछकर फिर नवागत साधक श्री गुरुजी के काम के बारे में पूछताछ की। श्री निरामया-

नन्दजी ने कहा—अत्युत्तम ! बहुत अच्छा ! इतना स्वच्छ और व्यवस्थित काम मैं भी शायद ही कर पाता ।

श्री निरामयानन्दजी के उस कथन पर श्रद्धेय श्री स्वामीजी प्रसन्न न होते तो ही आश्चर्य होता । उसी समय उन्होंने यह इच्छा प्रदर्शित की कि 'गोवलकर' उनकी व्यक्तिगत सेवा में रहेंगे । इस प्रकार साधक श्री गुरुजी अपनी प्रवेश-परीक्षा में उत्तीर्ण हुए और उन्होंने अपने श्री गुरुदेव की सेवा प्रारम्भ की । श्रद्धेय श्री स्वामीजी के आहार-विहार दवा-पानी पथ्यापथ्य तथा अन्य सेवा-शुश्रूषा करते-करते श्री गुरुजी को पता नहीं लगता था कि दिन कैसे बीत जाता है । श्रीगुरुजी उच्च विद्या-विभूषित थे, अध्यापक थे और वकील भी थे, किन्तु श्रद्धेय श्री स्वामीजी के काम से उन्होंने कभी जी नहीं चुराया । अपनी उपाधियाँ और अपनी प्रतिष्ठा को अलग रखकर बिल्कुल मामूली आदमी की भाँति उन्होंने निष्ठा से विनम्रतापूर्वक श्रद्धेय श्री स्वामी जी की सेवा की । लम्बी यात्रा अथवा स्थान-परिवर्तन अथवा अन्य किसी कारण से पहले कुछ दिन श्री गुरुजी को सबेरे जाग उठने में देरी हुई तो श्रद्धेय श्री स्वामीजी ने बहुत सौम्य शब्दों में कहा कि ऐसा निद्रालु मनुष्य मुझे बिल्कुल नहीं भाता । इसके बाद श्री गुरुजी ने फिर कभी उठने में विलम्ब नहीं किया । ऐसी टिप्पणी करने का अवसर फिर श्रद्धेय श्रीस्वामी जी के सामने आया ही नहीं । श्रद्धेय श्री स्वामीजी दिन में कई बार समाधिस्थ हो जाया करते थे । सेवा करते समय श्री गुरुजी को उन महान् योगी की अनेक लोकोत्तर अवस्थाएँ समीप से देखने को मिलती तथा उनके मुख से समय-समय पर अभिव्यक्त होने वाले जीवन-तत्त्व-विषयक उद्‌गार भी सुनने को मिलते ।

श्री गुरुजी की दिनचर्या थी सुबह चार बजे जगना और रात के लगभग बारह बजे सोना । सामान्य संकेत मिलने पर अथवा हल्की-सी भी आवाज सुनने पर 'जी आया' कहते हुए श्री गुरुजी अपने श्री गुरुदेव के सम्मुख उपस्थित होते थे । इस क्रम में कुछ बदल होता तो दोपहर को भोजन के निमित्त । दोपहर को भोजन के उपरान्त श्री गुरुजी कभी लेटे नहीं थोड़ा-सा अवकाश पाते ही वे ग्रन्थशाला में चले जाते और आध्यात्मिक ग्रन्थों के अनुशीलन में मगन हो जाते । सारगाछी में रहते समय श्री गुरुजी ने अनेकानेक अंगरेजी और हिन्दी ग्रन्थ पढ़ लिये थे ।

(तीन)

दीक्षा-संस्कार

श्रद्धेय स्वामी श्री अखण्डानन्दजी का स्वास्थ्य धीरे-धीरे गिरता जा रहा था। अतः श्रद्धेय श्री स्वामीजी ने श्री अमिताभ महराज को नागपुर से अपने पास बुला लिया। श्री अमिताभजी श्रद्धेय श्री स्वामीजी के पट्ट शिष्य थे और उनके आने से श्रद्धेय श्री स्वामीजी का आनन्दित होना स्वाभाविक था। श्री अमिताभ महाराज की प्रेरणा से श्री गुरुजी सारगाछी आये थे। यहाँ श्री अमिताभ महाराज और श्री गुरुजी पुनः परस्पर मिल गये।

सारगाछी आश्रम में आते ही श्री अमिताभ महाराज ने पूजा-अर्चा का कार्य स्वयं संभाल लिया और शेष समय में वे श्रद्धेय श्री स्वामीजी की सेवा किया करते। आश्रम में रहते-रहते उनकी समझ में यह बात आ गयी कि अभी तक श्री गुरुजी की दीक्षा नहीं हुई है। इस विषय में श्री गुरुजी सचिन्त नहीं थे, पर श्री अमिताभ महाराज को चिन्ता हो जाया करती थी। एक दिन श्रद्धेय श्री स्वामीजी की सेवा-चर्या करते समय श्री अमिताभ महाराज ने बात चलायी—माधवराव के माता-पिता वृद्ध हैं और उनके घर में अन्य कोई कमानेवाला तथा गृहस्थी को संभालने वाला भी नहीं है। अतः उनको दीक्षा यदि शीघ्र दे दी जाये तो अत्युत्तम हो और नागपुर जाकर वकालत करने की अनुमति भी उन्हें प्रदान करनी चाहिये।

इसके पहले भी दीक्षा दे दिये जाने की बात अन्यों द्वारा जब-जब चलायी गयी, तब-तब श्रद्धेय श्री स्वामीजी ने बार-बार यही कहा—'अभी नहीं, अभी नहीं।' श्री अमिताभ महाराज की वह विनती सुनकर श्रद्धेय श्री स्वामीजी ने अपने मन की बात कह डाली—श्री श्रीठाकुरजी की अनुमति मिलते ही 'गोवलकर' की दीक्षा होगी, किन्तु वह वकील ही होगा, यह कौन कह सकता है ?

सारगाछी में वे अभिमन्त्रित दिवस आनन्द के साथ उदित होते और सन्तोष के साथ अस्त होते। उनकी ओर ध्यान देने के लिये श्री गुरुजी को अवकाश ही न था। किन्तु १२ जनवरी १९३७ को एक महत्वपूर्ण घटना हुई। उस दिन शाम को कुछ अचानक ही श्रद्धेय श्री स्वामीजी ने श्री गुरुजी की दीक्षा के विषय में अपना भाव श्री अमिताभ महाराज के समक्ष व्यक्त किया। उन्होंने कहा—श्री श्रीठाकुरजी के आदेश के अनुसार कल मकर-

संक्रमण के शुभ मुहूर्त पर 'गोवलकर' की दीक्षाविधि सम्पन्न होगी। उसे बताना कि कल अनशन करना होगा।

श्रद्धेय श्री स्वामीजी ने श्री गुरुजी से भी बाद में कहा—गोवलकर! कल से तुम्हारा जीवन बदल जायेगा।

दूसरे दिन १३ जनवरी १९३७ बुधवार को मकर-संक्रमण का शुभ दिवस था। उस दिन श्री गुरुदेव ने सबेरे ही दीक्षाविधि की तैयारी की और छोटे-से समारोह में वह संस्कार अपने हाथों सम्पन्न करवाया। मकर-संक्रमण के दिन श्री गुरुजी के जीवन में एक महत्त्वपूर्ण संक्रमण हुआ। सारगाछी की विनोद-कुटी में श्री गुरुजी को दीक्षा दी गयी थी। दीक्षा के उपरान्त उन्हें देव-दर्शन के लिये मन्दिर भेजा गया। यह प्रभात की वेला थी और श्री अमिताभ महाराज मन्दिर में पूजा कर रहे थे। श्री गुरुजी को मन्दिर में आता हुआ देखकर उन्हें सन्तोष हुआ। श्री अमिताभ महाराज बताते हैं—उस समय गुरुजी प्रशान्त महासागर के समान शान्त तथा गम्भीर दिखलायी दे रहे थे।

नागपुर से इतनी दूर सारगाछी आने में श्री गुरुजी का जो उद्देश्य था, वह इस मकर-संक्रान्ति के दिन सफल हुआ। वे कृतार्थ हुए। श्रद्धेय श्रीस्वामीजी श्री गुरुजी से अत्यधिक प्रसन्न थे। उस प्रसन्नता की ठीक-ठीक कल्पना लौकिक व्यक्ति को नहीं हो सकती। एक दिन उन्होंने अपने इस नूतन शिष्य को निकट बुला लिया और उसको जी भरकर आशीर्वाद दिया। उस समय उन्होंने कहा—"अब मैं श्री ठाकुरजी से प्रार्थना करता हूं कि तेरी मनोकामना पूर्ण हो।"—इतना कहकर श्रद्धेय श्री स्वामीजी ने सचमुच ही हाथ जोड़ लिये। उस समय और तत्पश्चात् कितने ही समय तक श्री गुरुजी के आँसू-भरे नयनों के अश्रु-विन्दुओं का प्रवाह कपोलों को गीला करता रहा। अत्यधिक होने पर आनन्द भी अश्रुओं के रूप में बहने लगता है। उन्हें कौन रोक सकता है? और रोके भी क्यों? उस दिन के बाद से श्री गुरुजी की दृष्टि से कुछ मन्तव्य शेष नहीं रह गया था।

(श्रद्धेय स्वामी जी श्री गुरुजी को 'गोवलकर, से सम्बोधित करते थे।)

(चार)

वह अद्‌भुत आरती

दीक्षा के पश्चात् श्री गुरुजी सन्तुष्ट दिखलायी देते थे। उनका सौभाग्य था कि उनके हाथों श्री गुरुसेवा हो रही थी। इसी में सारगाछी के दिन परम सन्तोष से गुजर रहे थे। किन्तु श्रद्धेय गुरुदेव स्वामी श्री अखण्डानन्दजी के लौकिक जीवन का अन्तिम क्षण अब शीघ्र ही समीप आ रहा था। उसका पूर्वाभास श्रद्धेय श्री स्वामीजी के भाषण एवं व्यवहार से भी प्राप्त होने लगा था। स्वास्थ्य पर दबाव पड़ रहा था, फिर भी श्रद्धेय श्री स्वामीजी साधकों का मार्गदर्शन करते रहे, उनके लिये कष्ट उठाते रहे। अपने अ-स्वास्थ्य के कारण वातावरण में तनाव पैदा न हो, एतदर्थ वे सावधान भी रहा करते।

श्री गुरुजी सदा ही श्रद्धेय श्री स्वामीजी की सेवा में मग्न रहते। अतः शाम की आरती के लिये मन्दिर में उपस्थित रहना उनके लिये सम्भव नहीं हो पाता था। हाँ, अन्य साधक अवश्य ही आरती के समय मन्दिर चले जाते। यह मानो नित्य का ही क्रम हो गया था। एक दिन संयोगवशात् आश्रमवासी स्वामी श्री निरामयानन्दजी को एक अनोखा प्रसंग देखने को मिला। वह प्रसंग, बिल्कुल अनपेक्षित एवं अननुभूत। मन्दिर की आरती के पश्चात् श्री निरामयानन्दजी किसी कार्यवश श्रद्धेय श्री स्वामीजी की कुटिया की ओर तेजी से ही चल पड़े। वहाँ पहुंचे भी। आश्चर्य यह कि वहाँ कुटिया में भी एक आरती उतारी जा रही थी। वह दृश्य देखकर श्री निरामयानन्दजी अति विस्मित हुये और वहीं ठिठक गये। उस अद्‌भुत दृश्य का वर्णन करते हुए स्वयं श्री निरामयानन्दजी ने बताया है—श्री माधवराव गोलवलकर अगरबत्ती से श्री स्वामीजी की आरती उतार रहे थे। आरती के पश्चात् श्रद्धेय श्री स्वामीजी ने अपने दोनों हाथ श्री माधवराव के मस्तक पर रखे और उन्हें आशीर्वाद दिया। तुरन्त ही श्री माधवराव ने अपना मस्तक श्रद्धेय श्री स्वामीजी के चरणों पर रख दिया। तब श्रद्धेय श्री स्वामीजी ने प्रेम भरे हृदय से फिर एक बार श्री माधवराव पर शुभ आशिषों की वर्षा कर दी।

और वह अद्‌भुत आरती भी समाप्त हुई!!

: ३ :

आध्यात्मिकता और आस्तिकता

(एक)

आध्यात्मिकता का शाश्वत अधिष्ठान

जिस समय श्री गुरुजी का डाक्टर श्री हेडगेवारजी से घनिष्ठ सम्पर्क आया, ऐसा कहा जा सकता है कि उस समय श्री गुरुजी एक चौराहे पर खड़े थे। पहली दिशा थी एक प्रख्यात वकील बनने की और इसके लिये एल० एल० बी० के अध्ययन-क्रम को पूरा करना। दूसरी दिशा थी एक सुखमय पारिवारिक जीवन की, जिसके लिये श्री ताईजी (श्रीगुरुजी की माताजी) नयी-नयी कन्याओं की जन्मपत्नी ले आती थीं। तीसरी दिशा थी संघ के माध्यम से राष्ट्रोत्थान के कार्य में जुट जाने की। अन्तिम चौथी दिशा थी रामकृष्ण मिशन के सात्त्विक वातावरण में रहते हुए एकान्त आध्यात्मिक साधना में निमग्न हो जाने की।

अपनी अमित और अनुपम क्रिया-शक्ति के कारण वे शेष तीनों मार्गों पर तो कदम बढ़ाते जाते थे, परन्तु विवाह करके सुखी गृहस्थ-जीवन बसाने के विचार का उन्होंने सर्वथा परित्याग कर दिया था। इसी कारण वे श्री ताईजी के प्रस्तावों को हँसकर टाल दिया करते थे। इसके पीछे पलायन का भाव लेश-मात्र भी नहीं था, अपितु माता के चरणों पर अपना सर्वस्व

न्योछावर कर देने के लिये उनका अटल-अडिग निश्चय था। वकालत पास करके अपनी वक्तृत्व कला के बल पर विपुल धन-संचय की लालसा भी उनमें कभी नहीं जगी। अतः एल० एल० बी० का विद्याध्ययन-क्रम भी एक छोटी-सी अवधि का नगण्य कार्यक्रम था। विकल्प था तो दो कार्यों के बीच में। एक था संघ-कार्य और दूसरा आध्यात्मिक साधना। इसी बात को दूसरे शब्दों में यों कह लें—विकल्प था डाक्टर हेडगेवार की दुर्निवार चुम्बकीय शक्ति में और स्वामी विवेकानन्द जी द्वारा प्रतिपादित अद्‌भुत अद्वैत-तत्व में।

अन्ततः श्री गुरुजी के जीवन में दोनों मार्गों का और दोनों शक्तियों का समन्वय होना था, उसी प्रकार होना था जिस प्रकार मर्यादा पुरुषोत्तम दशरथनन्दन श्री राम के जीवन में वशिष्ठ की अध्यात्म शक्ति और विश्वामित्र के शस्त्रबल का समन्वय हुआ था और सच भी है कि अधिष्ठान तो अध्यात्म पर होना चाहिये। सम्भवतः नियति की योजना इसीलिये ऐसी हुई कि श्री गुरुजी बड़ी तीव्र गति से आध्यात्मिकता की ओर खिंचते चले गये।

सन् १९३६ में श्री गुरुजी स्वामी श्री अखण्डानन्दजी के पास सारगाछी आश्रम पहुंच गये। श्री स्वामी जी 'रामकृष्ण मठ एण्ड मिशन' के अध्यक्ष थे और थे स्वामी श्री विवेकानन्दजी के गुरुभाई। नागपुर-स्थित रामकृष्ण मिशन के स्वामी श्री अमिताभजी के माध्यम से स्वामी श्रीअखन्डानन्दजी तो श्री गुरुजी से मिलने के लिये पहले से ही उत्सुक थे। कुछ समय के बाद तो एक-से स्वभाव और गुणों के कारण श्रीगुरुजी और श्रीस्वामीजी नीले आकाश और सुनील सागर के समान एकाकार हो गये। स्वामी श्री अमिताभ जी ने श्री गुरुजी को देखकर लिखा था——'मेरे सामने एक अग्नि-पुंज खड़ा है, जिस पर केवल थोड़ी-सी राख जमी है।' स्वामी श्री अखण्डानन्दजी ने जब श्री गुरुजी को विधिवत् दीक्षा दी तो उन्हीं अमिताभजी को श्री गुरुजी 'एक प्रशान्त महासागर के समान उदात्त और गम्भीर, दिखलायी पड़े।

७ फरवरी १९३७ को स्वामी श्री अखण्डानन्दजी महाराज का शरीर पूरा हो गया। श्री गुरुजी के हृदय का शोकाकुल हो जाना स्वाभाविक था। मार्च १९३७ मैं श्रीगुरुजी नागपुर वापस आ गये। वे वापस तो आये, पर वे आये सारगाछी से जीवन का शाश्वत आध्यात्मिक अधिष्ठान लेकर, जिसके बल पर ही उन्होंने कारावास-काल में न्यायमूर्ति श्री मंगलमूर्ति जी से कहा था—'मैंने अपनी जीवन-पूंजी उस ईश्वररूपी बैंक में लगा रखी है, जो कभी डूब नहीं सकता।'

(दो)

बात साधारण, पर गहराई कितनी ?

एक बार मीरजापुर जिले के चुनार नामक स्थान से दो-तीन किलोमीटर दूर एक रमणीय पर्वतीय स्थल पर हम अनेक मित्र पिकनिक के लिये गये थे। पता चला कि वहाँ से थोड़ी दूर कोई बहुत विद्वान साधु रहते है। उनसे मिलने की सहज इच्छा हुई और हम चार मित्र उनके पास पहुंचे। ७५-८० वर्ष की आयु वाले गेरुआ वस्त्रधारी बावाजी के मुखमडण्ल को उनकी लम्बी घनी दाढ़ी ने अत्यधिक आकर्षक बना दिया था। प्रणाम करके हम उनके पास बैठ गये।

हमारी खाकी हाफ पैंट पर दृष्टि डालते हुए उन्होंने पूछा —क्या आप लोग आर० एस० एस० से सम्बन्धित हैं ?

मैंने जब उन्हें बताया कि हम सभी संघ के कार्यकर्ता हैं तो एक दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए वे बोले—गोलवलकर जी को तुम लोग अपना गुरु और नेता मानते हो, पर उनको पहचानते नहीं। पहिचान भी नहीं सकते। देश की तो बात ही छोड़ो, स्वयं तुम्हारे संघ में भी ऐसे कितने लोग होंगे, जो उस आत्मा को ठीक-ठीक पहचान सकें ?

तब से आज तक जब भी श्री गुरुजी के बारे में सोचता हूं, मुझे चुनार के उस साधु के शब्द अधिकाधिक अर्थ-पूर्ण लगते हैं। श्री गुरुजी जब तक जीवित थे तब तक उनके बारे में कितनी ही बातें सुनाई पड़ती थीं। एक पत्रकार के शब्दों में—'अपने समय में श्री गोलवलकर भारत में सर्वाधिक चर्चित व्यक्ति रहे।' पर अब निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि इतनी चर्चा के बावजूद भी श्री गुरुजी के समग्र व्यक्तित्व का साक्षात्कार करने का सौभाग्य थोड़े ही लोगों को प्राप्त हो सका। वास्तव में उनके जीवन और कार्य का सही मूल्यमापन अभी होना शेष है।

आखिर वह कौन-सा तत्त्व है, जिसने गुरुजी के जीवन को इतनी विशिष्ठता प्रदान कर दी? उनके सान्निध्य में जिन किन्हीं को थोड़ा भी रहने का मौका मिला, उन्हें उनके अनेक गुणों का सहज ही आभास होता था। वे विद्वान थे, प्रभावशाली वक्ता थे, आदर्श अध्यापक रह चुके थे, कुशल संगठनकर्ता के रूप में उनकी ख्याति थी। पर इन गुणों से विभूषित लोगों की भारत में कमी नहीं थी। हाँ, एक कसौटी ऐसी थी, जिस पर घिस कर उनके ये सभी गुण निखर उठते थे। वह थी अपने समाज के प्रति उनका

तादात्म्य। ईश्वर का साक्षात्कार करने वे सारगाछी गये थे। स्वामी अखण्डानन्द जी जैसे महान् योगी के चरणों में बैठकर उन्हें साक्षात्कार हुआ या नहीं, यह तो ईश्वर ही जानें, पर वहां से लौटने के बाद उन्होंने समाज को परमेश्वर का व्यक्त रूप मानकर उसकी अर्चना में सम्पूर्ण जीवन खपा दिया।

समाज के प्रति उनकी भक्ति इतनी निश्चल और निश्छल थी कि किसी प्रकार का द्वैत उन्हें कभी स्वीकार्य ही नहीं हो सकता था। समाजसेवा को वे सहज कर्तव्य मानते थे। किसी प्रकार की सौदेबाजी को वे सहन नहीं कर सकते थे। इसका प्रत्यक्ष अनुभव करने का अवसर मुझे उस समय मिला, जब वे वाराणसी में इलाज के लिये आये थे।

बिहार उन दिनों जबर्दस्त बाढ़ की चपेट में आ गया था। वहाँ के कुछ प्रमुख कार्यकर्ता देश भर से सहायता जुटाने का प्रस्ताव लेकर श्री गुरुजी से मिलने आये। उन कार्य-कर्ताओं से उन्होंने बाढ़ पीड़ित लोगों के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त की। फिर स्वयं ही उनसे पूछा—सभी स्वयंसेवक सेवा और सहायता के कार्य में जुट गये या नहीं?

एक प्रमुख कार्यकर्ता ने कहा—स्वयंसेवक तो पूरी तरह जुटे हैं, पर साधनों का अभाव सेवा-कार्य में बाधक बन रहा है। अकेले बिहार से इतने बड़े प्रमाण पर तत्काल साधन जुटा पाना कठिन लगता है।

श्री गुरुजी ने कहा—अकेले बिहार से ही क्यों साधनों को जुटाया जाये?

फिर अपने निजी सचिव डा०आबा जी थत्ते से कहा—इसके लिये पत्रक भेजकर सभी प्रदेशों में सहयोग जुटाने को कहो।

एक अति उत्साही कार्यकर्ता बीच में ही बोल पड़ा——पर गुरुजी! इसमें तो पर्याप्त देर हो जायेगी। अनेक दलों ने बड़े प्रमाण पर सहायता-कार्य प्रारम्भ कर दिया है। यदि हमारी सहायता में विलम्ब हुआ, तो हम लोग उनसे पिछड़ जायेंगे।

बात यद्यपि उन्होंने बहुत सहज ढंग से कही थी, पर श्री गुरुजी उसे सुनकर कुछ व्यथित हो गये। सामान्यतः जिनके चेहरे पर हमेशा मुस्कुराहट खेलती दिखलायी देती थी, वहाँ आक्रोश की स्पष्ट रेखायें उभर आयीं। श्री गुरुजी ने कहा——तो क्या तुम उन दुःखी बन्धुओं को सहायता इसलिये देना चाहते हो कि तुम लोग अन्य पार्टियों से पिछड़ न जाओ? यदि तुम्हारी भावना इसी संकुचित दलीय प्रेरणा पर आधारित है तो संघ के ऐसे काम से कोई वास्ता नही हो सकता।

एकाएक वातावरण में गम्भीरता छा गयी । अनजाने में ही क्यों न हो, पर वह कार्यकर्ता ऐसी बात कह गया था, जो संघ की विशुद्ध और सहज देश-प्रेम की कल्पना से मेल नहीं खाती थी । उस कार्यकर्ता ने प्रायश्चित भरे स्वर में धीरे से कहा——गुरुजी ! मुझसे गलती हो गई । मेरा आशय यह नहीं था ।

श्री गुरुजी ने फिर स्नेहपूर्ण शब्दों में कहना प्रारम्भ किया—भाई ! देखो, हम लोगों को सहज भाव से अपने पीड़ित बन्धुओं की सेवा करनी है, यह अपना कर्तव्य है । हमें इसके एवज में न वाहवाही लूटनी है, न वोट मांगने हैं । हम तो अपने इस सहज कर्तव्य का प्रचार भी नहीं चाहते । अतः इस प्रकार के सेवा-धर्म में कर्तव्य-भावना ही प्रमुख होनी चाहिये ।

देखने-सुनने में बात कितनी साधारण-सी लगती है । पर इसके अन्दर कितनी गहराई है । समाज को अपना परिवार ही नहीं, साक्षात् भगवान का मूर्तरूप मानने वाला गुरुजी जैसा भक्त अपने आराध्य के साथ किसी भी प्रकार की सौदेबाजी को भला कैसे स्वीकार कर सकता था ।

देश-प्रेम की उनकी इस उत्कटता का ही परिणाम है कि उनके सम्पर्क में आने वाले हजारों कार्यकर्ता उसी सहज भाव से ओतप्रोत हो समाज सेवा के पथ पर अग्रसर दिखायी देते हैं ।

उनके निर्मल अन्तःकरण में व्याप्त राष्ट्र-भक्ति की इस गहराई का क्या आज भी हम सही मूल्यमापन कर पाये हैं ? जब कभी इस प्रश्न का उत्तर ढूंढने का प्रयास करता हूं, उन क्षण में चुनार के उन महात्मा की मूर्ति आँखों के सामने खड़ी दीखती है और उनके वे शब्द कानों में गूंजने लगते है—'गुरुजी को तुम नहीं पहचानते, पहिचान भी नहीं सकते ।'

[तीन]

एक पहुंचे हुए फकीर

मैं अपने जीवन की लम्बी अवधि में कितने ही साधु-सन्तों से मिल चुका हूं, लेकिन मेरे ऊपर श्री गुरुजी का जितना गहरा प्रभाव पड़ा, उतना और किसी का नहीं । शायद सन् ६० या ६१ की बात है । श्री गुरुजी एक

डाक्टर साहब के घर चाय-कार्यक्रम के लिये आने वाले थे। मुझको भी निमन्त्रण मिला था। मैं अपने संग एक पुराने क्रान्तिकारी साथी को लेकर गया। परिचय होने के बाद काफी देर तक श्री गुरुजी से बातचीत होती रही। श्री गुरुजी ने यह पूछ लिया कि मेरे साथी का बचपन कहां बीता और फिर उनके सहपाठियों के नाम भी पूछकर उनके बारे में उन्होंने सब कुछ सविस्तार बता दिया। मेरे साथी आश्चर्यचकित रह गये। पूछने पर श्री गुरुजी ने बताया कि वे उस शहर में रह चुके हैं। मराठी में बातचीत करने पर मेरे मित्र ने श्री गुरुजी से बताया कि वे अब मराठी भूल चुके हैं। मेरे मित्र मराठी अच्छी तरह से बोल नहीं पाये। फिर मेरे साथ बंगाली में वे कुछ देर बात करते रहे।

उस दिन मेरे साथी भी श्री गुरुजी से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। चाय-कार्यक्रम के बाद लौटते समय रास्ते में वे यही कहते रहे कि ऐसा महात्मा मैंने आज तक देखा नहीं। साधु-सन्त-महात्मा लोग अपनी ही मुक्ति के प्रयत्न में लगे रहते हैं। उनका लक्ष्य होता है आत्म-मुक्ति, पर श्री गुरुजी ऐसे व्यक्ति हैं जो हिन्दू समाज की मुक्ति चाहते हैं।

वाराणसी की एक और छोटी-सी घटना है। वहाँ पर डाक्टर पी०के० बनर्जी संघ के पुराने कार्यकर्ता हैं और वे संघ की दृष्टि से विभाग-संघचालक हैं। वे दाँतों के एक विख्यात और योग्य डाक्टर हैं। हिन्दू-मुसलमान सभी फिरकों के लोग उनसे दवा लेते हैं। कई वर्ष पहले की बात है। डाक्टर साहब का दवाखाना गोदौलिया चौराहे पर ही है। एक दिन श्री गुरुजी दवाखाने में आये और डाक्टर साहब की कुर्सी पर जा करके बैठ गये। डाक्टर बनर्जी तब तक अपने दवाखाने में पहुंचे नहीं थे। मरीज लोग दवा लेने के लिये आने लगे। इनमें एक मुसलमान मरीज भी था। लेकिन यह डाक्टर साहब को पहचानता नहीं था। डाक्टर बनर्जी की कुर्सी पर बैठे हुए श्री गुरुजी को ही उसने डाक्टर साहब समझ लिया और उन्हें सम्बोधित करके कहने लगा—डाक्टर साहब ! मुझे बहुत तकलीफ हो रही है। आप मेरा दाँत देख लीजिये।

श्री गुरुजी ने उसे प्यारपूर्वक बैठाया और कहा—घबराइये नहीं। मैं डाक्टर नहीं हूं। डाक्टर साहब अभी आने वाले हैं। वे आ करके सबसे पहले आपको ही देखेंगे।

इसके बाद श्री गुरुजी बड़ी देर तक उन बड़े मियां को सान्त्वना देते रहे। डाक्टर बनर्जी ने आकर उस मुसलमान मरीज की चिकित्सा की। कुछ इलाज पाने पर जब कुछ आराम मिला तब उस मरीज ने श्री गुरुजी के बारे

में डाक्टर साहब से पूछा—डाक्टर साहब ! आपकी कुर्सी पर जो बैठे हुए थे, वे कौन हैं ?

डाक्टर साहब—अरे भाई ! आप नहीं पहचानेंगे ।

मरीज—क्यों नहीं पहचानूंगा ? आप बतायें तो सही ।

मरीज ने जब थोड़ी जिद की तो डाक्टर साहब ने उसी से उलटा पूछा—यह बताइये, वे आपको कैसे लगे ? उनके बारे में आपका क्या ख्याल है ? क्या अन्दाजा है आपका ?

मरीज—क्यों ? वे बहुत भले आदमी हैं । आप तो उलटे मुझसे ही सवाल करने लगे । आप बताइये न मुझे कि वे कौन हैं ?

डाक्टर साहब—क्या आपने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का नाम सुना है ?

मरीज—हाँ, हाँ, जानता हूं । वह ही तो जिसे जनसंघ कहते हैं ।

डाक्टर साहब—नहीं भाई । जनसंघ नहीं । जनसंघ तो चुनाव लड़ता है । राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का चुनाव से क्या वास्ता ? क्या आपने कभी आर० एस० एस० का नाम नहीं सुना ?

मरीज—तब यूँ कहिये आर० एस० एस० । मैंने आर० एस० एस० का नाम सुना है, पर भला आर० एस० एस० से इनका क्या सम्बन्ध ?

डाक्टर साहब—बहुत बड़ा सम्बन्ध है। आप हैं आर० एस० एस० के सारे हिन्दुस्तान के सरसंघचालक ।

मरीज—समझाकर कहिये डाक्टर साहब ! क्या मतलब हुआ ? हिन्दुस्तान के क्या हैं ये ?

डाक्टर साहब ने समझाया—सरसंघचालक का मतलब हुआ कि पूरे देश में संघ का काम चलाने वाले ।

इतना कहना था कि बड़े मियां ने एतराज किया और कहा—खैर, आप जो भी कहें, लेकिन मुझे तो यूँ लगा, जैसे वे बड़े पहुंचे हुए फकीर हैं । बड़ा दिल पाया है इन्होंने । तभी तो इतना पूछ रहा हूं मैं । लेकिन आप कहते हैं कि आर० एस० एस० के चलाने वाले हैं ये ।

इतना कहकर बड़े मियां सोच में पड़ गये । तब डाक्टर साहब ने कहा—जाने दो इन बातों को । आज और न बोलना । मेरी राय मानो, आज बोलना बन्द रखो । इशारे से बात करो । मुँह को आराम दो । आज सिर्फ पीने वाली चीजें लेना । रोटी-दाल आज बन्द । दूध भी ठण्डा पियो । कल आकर दिखलाना और दवा ले जाना ।

लेकिन बड़े मियां अपने ही शब्दों को दोहराते रहे : वे कोई हों, पर हैं वे पहुंचे हुए फकीर।

बड़े मियां दस-पन्द्रह मिनट के समय में ही श्री गुरुजी से प्रभावित हो गये, और ऐसे प्रभावित हो गये कि वर्षों से श्री गुरुजी को भुला नहीं पाये। जब भी बड़े मियां डाक्टर बनर्जी से मिलते तो श्री गुरुजी के बारे में पूछ लिया करते कि वे साहब कैसे हैं, अच्छी तरह से हैं न?

मैं अपने व्यस्त जीवन में जब कभी किसी साथी पर या कार्यकर्ता पर किसी कारण बहुत नाराज हो जाता हूं या किसी में कुछ कमियाँ देखकर निराश या हताश हो जाता हूं या किसी दूसरे कारण से हतोत्साहित होकर बैठ जाता हूं तब उस समय श्री गुरुजी की धीर-स्थिर-शान्त-निर्मल मूर्ति मेरे सामने आ जाती है। उनकी याद मुझे धीरज दिलाती है। तब मैं सोचता हूं कि इन सब विकट परिस्थितियों का सामना करते हुए ही हमें आगे बढ़ना है।

●

[चार]

दैवी आभा की झलक

गांधीजी की मृत्यु के पश्चात् मैं और श्रीगुरुजी, हम दोनों नागपुर जेल में थे। संयोग से हम दोनों को एक ही कोठरी में रखा गया था। कारागृह के एक ही कोठरी में साथ-साथ रहने के कारण यह सम्भव ही नहीं कि दूसरों की दृष्टि बचाकर कोई अपने व्यक्तिगत क्रिया-कलाप कर सके। ऐसे स्थान पर व्यक्ति के सारे व्यवहार का, बिल्कुल अंतरंग आचरण का भी अच्छी तरह से निरीक्षण किया जा सकता है।

सभी को विदित है कि श्री गुरुजी ध्यान-धारणा किया करते थे। कारागृह में कोई काम-धाम तो था नहीं, इसलिए ध्यान-धारणा में ही उनका समय व्यतीत होता था। कोठरी की सलाकों में चादर आदि बाँधकर हम लोग काम-चलाऊ एकान्तिक स्थान का निर्माण कर लिया करते थे। वहाँ बैठ करके ध्यान-धारणा में लीन हो जाते और हम लोग बाहर गप-शप करने लगते।

सलाकों से बंधे हुए वस्त्र हवा के झोकों से कभी-कभी इधर-उधर उड़

जाया करते थे, अतः फिर से उन्हें ठीक करना पड़ता था। एक बार हवा के झोंके से परदे इधर-उधर उड़ गये। मैं परदे को ठीक प्रकार से बांधने के लिये गया। तभी अनायास ही मेरी दृष्टि उनके मुख पर पड़ी। मुझे उनके मुखमंडल पर एक तेजस्वी अनोखी आभा दिखलायी दी। उनकी आंखें अधखुली थीं। मुख पर शान्ति और सन्तोष के भाव छाये हुए थे। एक अद्भुत दैवी स्मित उनके अधरों पर झलक रहा था। वह दृश्य आज भी मेरे हृदय-पटल पर ज्यों-का-त्यों अंकित है। मेरा अंतर्मन हमेशा मुझे गवाही देता है कि वे उस समय निश्चित रूप से परमेश्वर का दर्शन कर रहे होंगे। दैवी साक्षात्कारों के समय की वह लोकोत्तर स्थिति, वह असाधारण दैवी दृश्य मैंने स्वयं देखा है। जब-जब मुझे इस दृश्य की याद आती है, तब-तब मुझे सदैव एक तरह का सात्विक अभिमान और आनन्द होता है।

●

[पांच]

मात्र ढाई मिनट में समाधिस्थ

सन् ७२ के संघ-शिक्षा-वर्ग में श्री गुरुजी की आवास-व्यवस्था करने के कारण उस काल में उनके सान्निध्य में रहने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। अपने स्वयंसेवकों के सहयोग से बड़ी बारीकी से मैंने व्यवस्था की थी और अपने मन में मैंने पूर्ण समाधान मान लिया था कि व्यवस्था हर प्रकार से परिपूर्ण है।

काठगोदाम एक्सप्रेस से प्रातः चार बजे श्री गुरुजी पीलीभीत पहुंचे। जिस कक्ष में श्री गुरुजी के ठहरने की व्यवस्था की गई थी, उसमें उन्होंने अभी एक ही पैर रखा था कि तुरन्त प्रश्न किया—इसको अन्दर से बन्द करने की क्या व्यवस्था है?

मेरी दशा उस समय कैसी थी, यह देखने वाले ही बता सकते हैं। सन्ध्या-वन्दनादि के लिये उन्हें एकान्त और निर्विघ्न स्थान की आवश्यकता हुआ करती थी। उनके लौकिक और पारमार्थिक दोनों कृत्य समान चलते रहते थे। सांसारिक व्यवहार करते हुए भी पूर्ण योगी थे। उन्होंने एक बार

कहा भी था कि मुझे पूर्ण समाधिस्थ होने में मात्र ढाई मिनट के लगभग लगता है।

(छः)

जगज्जननी भगवती का साक्षात्कार

अनन्त श्रीविभूषित श्रीद्वारका-शंकराचार्यजी महाराज की एक जिज्ञासा को सुनकर श्री गुरुजी की उलझन बढ़ गयी। भले श्री गुरुजी समाज-सेवा तथा राष्ट्रोत्थान के कार्य में अहर्निश लगे रहते थे, परन्तु उनके जीवन के आध्यात्मिक पक्ष के प्रति परम पूज्य श्री शंकराचार्यजी महाराज के मन में अत्यधिक आदर-भाव था। एक बार परस्परालाप के बीच पूज्य श्री शंकराचार्यजी महाराज ने श्री गुरूजी से एक सीधा प्रश्न किया—क्या आपको भगवत्साक्षात्कार हुआ है ?

प्रश्न को सुनते ही श्री गुरुजी स्तब्ध रह गये। कुछ देर मौन बैठे रहे। फिर मौन को भंग करते हुए श्री गुरुजी ने कहा—आपको उत्तर किन शब्दों में दूँ ? न असत्य बोल सकता हूं और न सत्य कह सकता हूं।

पूज्य श्री शंकराचार्यजी महाराज के नेत्रों में जिज्ञासा नृत्य कर रही थी। श्री गुरुजी की उक्ति ने उनकी जिज्ञासा को और भी अभिवृद्ध कर दिया। जिस सद्भावपूर्वक यह जिज्ञासा व्यक्त हुई थी और जिनके द्वारा अभिव्यक्त हुई थी, उसकी उपेक्षा भी सम्भव नहीं थी। श्री गुरुजी ने अत्यधिक विनम्रतापूर्वक कहा—मेरा निवेदन है कि मेरे इस प्रसंग को, जहाँ तक बन सके, अप्रकट बनाये रखियेगा। प्रसंग इस प्रकार है। सरकार ने संघ पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। मैं कारागार में डाल दिया गया था। अपप्रचार, प्रतिबन्ध, कारावास, स्वयंसेवकों के पारिवारिकजनों की प्रताड़ना आदि हर-सम्भव भले-बुरे प्रयासों से सत्तारूढ़ दल संघ को समूल उखाड़ फेंक देने के लिये कृत-संकल्प था, पूर्णतः कटिबद्ध था। संघ पर विपत्ति के बादल छाये हुए थे। मुझे इस बात की बड़ी वेदना थी, सीमातीत वेदना थी—क्या यह दुर्भाग्य-घट मेरे सिर पर ही फूटना था कि डाक्टर साहब द्वारा लगाया गया संघ-वट-वृक्ष मेरे सामने मेरे देखते-ही-देखते छिन्न-भिन्न हो जाये ? देश-धर्म के लिये

सच्ची ईमानदारीपूर्वक किये गये कार्य का क्या यही कुपरिणाम मिलना था ? मैं कुछ सोच नहीं पा रहा था, कुछ समझ नहीं पा रहा था। विकट परिस्थिति में प्रभु का स्मरण और उनसे प्रार्थना एक बहुत बड़ा सहारा है। ऐसी विषमावस्था में जगज्जननी भगवती का प्रत्यक्ष साक्षात्कार हुआ। मेरे कन्धे पर हाथ रखकर वे मुझे धैर्य बँधा रही थीं और वे मुझे आश्वासन दे रही थीं कि सारे संकट दूर होंगे। इस आश्वासन ने अचिन्त्य स्फूर्ति, अनन्त आशा, अदम्य उत्साह प्रदान किया।

इसके अतिरिक्त अन्य अवसर पर एक बार भगवान् श्रीकृष्ण की एक छवि के दर्शन तथा उनकी वंशी के श्रवण का भी सौभाग्य मिला है।

अपनी आस्था और आशा के अनुरूप उत्तर पाकर परम पूज्य श्री शंकराचार्यजी महराज को परमाह्लाद हुआ।

●

(सात)

शरीर से अतीत

एक बार संघ-शिक्षा-शिविर में सबके साथ भोजन करते समय श्री गुरुजी को तीव्र प्यास की अनुभूति हुई। परन्तु उसी समय उनके मन में यह विचार आया कि यदि एक ही आत्मतत्त्व सबमें परिव्याप्त है तो इतने लोग पानी पी रहे हैं, उन सबकी तृषा-निवृत्ति से मेरे प्यास की निवृत्ति क्यों नहीं होनी चाहिये ? इस विचार के मन में आने के थोड़ी देर बाद ही उन्हें यह अनुभव हुआ कि उनकी प्यास अपने आप शान्त हो गयी है। श्री गुरुजी इस कोटि के एक तपःपूत आध्यात्मिक व्यक्ति थे।

ऐसा लगता है मानो शरीर से स्वतन्त्र आतम-तत्व की प्रत्यक्षानुभूति उन्हें हो चुकी थी। शरीर को जो कष्ट या पीड़ा है, वह उसे हुआ करे, मेरा उससे कोई सम्बन्ध नहीं। मैं शरीर नहीं, अपितु शरीर से स्वतन्त्र, मैं नित्य प्रसन्नात्मा हूं। यह सत्य उनके जीवन में उतर आया था, तभी शारीरिक कष्ट के होते हुए भी अखण्ड प्रसन्नता उनके मुख पर उनकी वाणी में खेलती रहती थी। कैंसर का आपरेशन और उसके बाद की स्थिति इस तथ्य को और भी अधिक परिपुष्ट करती है।

कैंसर के कारण शरीर के बहुत बड़े भाग कर शल्य-क्रिया की गयी थी। तीन दिन बाद डाक्टरों ने अनुमति प्रदान की कि लोग श्री गुरुजी से मिल सकते हैं। जो मिलने आये, उन लोगों ने देखा कि शल्य-क्रिया के बाद भी वे सदैव की भाँति प्रसन्न हैं तथा सभी के साथ हँसी-विनोद कर रहे हैं। लोगों को पता ही नहीं चला कि उनको कुछ कष्ट है। शरीर पर बँधी पट्टियों से ही उन पर की गयी शल्य-क्रिया का पता चलता था।

अन्तिम दिनों में भी उनके चेहरे पर प्रसन्नता और ताजगी सदैव बनी रहती थी। मुख-मण्डल की तेजस्विता को देखकर यह लगता ही नहीं था कि वे बीमार हैं। उनके शरीर में पीड़ा होती रही होगी, पर उन्होंने उसकी तीव्रता का आभास किसी को होने नहीं दिया। मृत्यु से कुछ दिन पूर्व ही महाराष्ट्र के मुख्यमन्त्री उनसे मिलकर गये और उन्होंने पत्रकारों को बताया कि श्री गुरुजी का स्वास्थ्य अच्छा है। पर वास्तविकता यह है कि कुछ दिन बाद ही श्री गुरुजी ने महाप्रस्थान कर दिया।

(आठ)

श्रीकृष्णराव मोहरीर के विकल अश्रु

श्री गुरुजी का स्वास्थ्य जैसे-जैसे चिन्ताजनक होने लगा, वैसे-ही-वैसे टेलीफोन पर नागपुर-कार्यालय से होने वाली पूछताछ बढ़ती गयी। जून के प्रारम्भ में नागपुर स्थित केन्द्रीय कार्यालय से दूर-दूर के स्थानों का सम्पर्क इतना बढ़ता गया कि यदि वहां चार-पांच टेलीफोन होते, तो भी कम पड़ते। अनेक मुखों से सारा देश नागपुर से संवाद पूछ रहा था। टेलीफोन पर श्रीकृष्णराव मोहरीर सबका यथोचित समाधान कर रहे थे। दिनांक ५ जून को सबेरे नित्यक्रम से वे काम में लगे। उस दिन टेलीफोन पर बतलायी जाने वाली हर बातें घड़ी-घड़ी बदलती रहीं। 'श्री गुरुजी का स्वास्थ्य उतना ठीक नहीं है'—इस कथन से स्थिति का जो निवेदन सबेरे प्रारम्भ हुआ, क्रमशः वह निवेदन बदलता ही गया।

"स्वास्थ्य चिन्ताजनक है……, विशेष सुधार नहीं है ……, वासुदेव गोलवलकर को तुरन्त नागपुर भेजिये……, हाँ जी ! मैं कृष्णराव बोल रहा

हूं ·····, मोरोपंत को लेकर ही आइये·····, क्या यह इन्दौर ही है ? सब समाप्त हो गया। माननीय, हाँ ! रामनारायण जी शास्त्री से कहिये ·····, येस् येस् ! हलो······, या ! टुमारो इविनिंग·····, अन्त्य यात्रा ? कल शाम को·····, यादवराव को मुम्बई में विमान मिलेगा·····, हाँ जी ! बाला साहब अभी आ गये·····, सात बजे महायात्रा रेशमबाग पहुंच जायेगी·····, अन्त्यविधि आटोपला, आप्पाजी जोशी रात्रीच वापस चालले जातील·····, येस् ! वे सबेरे निकलेंगे······" आदि-आदि श्रीकृष्णराव मोहरीर बराबर बोलते चले जा रहे थे। दिन भर में भारत के हर प्रान्त से एवं अनेक बड़े शहरों से उनका कम-से-कम दो-चार बार सम्पर्क हुआ होगा।

श्री गुरुजी ने महाप्रस्थान किया दिनांक ५ जून १९७३ की रात्रि में और उनका अन्त्य संस्कार हुआ ६ जून की शाम को। अन्त्य संस्कार के पश्चात् बाहर से आये हुए लोग लौटने लगे। उनकी दौड़-धूप में ६ जून का दिन व्यतीत हुआ। तदनन्तर ही श्रीकृष्णराव को कुछ फुरसत मिली। चालीस-बयालिस घन्टे के बाद वे अपने कमरे में आये। रात को एक बजे, वह था दिनांक ७ जून का प्रारम्भ। वे बिस्तर पर लेट गये। श्री गुरुजी गये, इस घटना का यथार्थ भान उन्हें इस समय हुआ। फिर उनका दुःख पूरी तरह आपे से बाहर हुआ और उन्होंने मुक्त रूप से अश्रुओं को झरने दिया। साठोत्तर अवस्था के वे अतुलशक्ति वाले कार्यकर्ता अब अत्यधिक विकल हो उठे। तब तक रोने के लिये उन्हें अवसर ही कहाँ मिला था ?

जब श्री कृष्णराव मोहरीर दुःख के परम आवेग में थे, उस समय का प्रसंग है। वे स्वतः उस प्रसंग को बताते हैं—उस समय श्री गुरुजी मेरे इस कमरे में आये। मैंने प्रत्यक्ष देखा। वे मुझसे बोले 'अरे अरे ! कृष्णा ! रोते क्यों हो ? मैं तो हूं ही। उठो, शोक न करते हुए कार्य में जुट जाओ ! रोओ मत !'

इस आकस्मिक प्रसंग से श्रीकृष्णराव विस्मित हुए और उस महापुरुष की ओर देखते रहे। श्री गुरुजी का कहा हुआ प्रत्येक शब्द उन्होंने साक्षात् सुना था। उनके आश्वासन एवं आदेश पर विश्वास करना अब श्रीकृष्णराव के लिये अनिवार्य ही था। श्री गुरुजी नागपुर के बाहर जाते थे और लौट भी आते थे, यह तो नित्य का ही अनुभव था। उसी तरह कुछ आज भी हुआ और श्रीकृष्णराव मोहरीर का मन शान्त हुआ।

(नौ)

बाबासाहेब आप्टे की रुष्टता

राष्ट्रीय-स्वयंसेवक-संघ के अखिल भारतीय प्रचार प्रमुख श्री बाबासाहेब आप्टे एक बार रुष्ट हो गये। घटना है नागपुर के हेडगेवार भवन की। फागुन का महीना था। होली के अवसर पर फाग का रंग शहर पर छाया हुआ था। इस रंग से संघ के कार्यकर्ता भी अछूते नहीं रह सके। होली है ही हिन्दुओं का विख्यात रंगीन त्योहार, इस त्योहार के अवसर पर किसी भी हिन्दू-हृदय पर रंगीनी चढ़ जाये तो स्वाभाविक ही है। हेडगेवार भवन में भी कुछ कार्यकर्ताओं ने आपस में रंग खेला तथा परस्पर में गुलाल मला।

यहाँ तक तो ठीक रहा। पर जब रंगीनी का रंग कुछ अधिक चढ़ गया तो एक-दो कार्यकर्ताओं ने अपने मित्रों को उत्साहित किया कि बाबा साहेब से भी रंग खेला जाये। ढलती आयु के बाबा साहेब स्वभाव से साधु थे, विरक्तों का-सा जीवन, अति स्थिर मति और बड़ा गम्भीर मननशील व्यक्तित्व। श्री गुरुजी से भी बाबा साहेब उम्र में अधिक थे। पर होली के रंग की उमंग में उनकी गम्भीरता और प्रौढ़ता पर ध्यान देने की बात ही उन लोगों के ध्यान में नहीं आयी। ज्यों ही कार्यकर्तागण उनसे रंग खेलने के लिये उनके कमरे में पहुंचे, उन्होंने स्पष्ट रूप से मना कर दिया। बड़े कड़े शब्दों में मना किया था उन्होंने। उनके स्वर की दृढ़ता के सामने सब सहम गये। मग्न मन से कार्यकर्तागण वापस चलने लगे। फिर भी एक कार्यकर्ता का मन नहीं माना और लौटते-लौटते भी उमंग-उमंग में बाबा साहेब पर रंग के कुछ छींटे डाल ही दिये। बाबा साहेब को बड़ा बुरा लगा। उन्होंने रुष्ट होकर अपने कमरे का दरवाजा बन्द कर लिया।

लोगों ने उनकी नाराजगी पर भी ध्यान नहीं दिया। सबका यही विश्वास था कि थोड़ी देर में सब शान्त और सम हो जायेगा। दोपहर को भोजन का समय हुआ। भोजनालय में सब कार्यकर्तागण गये केवल बाबा साहेब को छोड़कर। लोग उन्हें बुलाने के लिये गये। कमरे का दरवाजा बन्द तो था ही। उस बन्द दरवाजे को थपथपाते हुए, उनसे कहा गया कि भोजन का समय हो गया है। पर न तो उन्होंने कोई उत्तर दिया और न कमरे का दरवाजा ही खोला। अब लोगों के ध्यान में आया कि बाबा साहेब ज्यादा नाराज हो गये हैं। कुछ लोग ऐसा भी सोचने लगे कि व्यर्थ ही उन

पर रंग छोड़ा। जिस रंग से जीवन का ढंग बद-रंग हो जाये, वह त्याज्य ही है, चाहे वह रंग कितना ही रंगीन क्यों न हो ?

सबके साथ भोजन करने के लिये श्री गुरुजी आये। उनके आने के पहले-पहले तक यह सारी बात हो चुकी थी। श्री गुरुजी ने सबके बारे में पूछताछ की और तभी बाबा साहेब के रुष्ट हो जाने का विवरण भी सुनने को मिला। लोगों ने यह भी बता दिया कि उनको बुलाने का प्रयास विफल हो चुका है।

श्री गुरुजी ने न तो उससे कुछ कहा, जिसने रंग के छींटे डाले थे और न तो उनसे ही कुछ बोले, जो कुछ देर पहले उमंग की तरंग पर लहरा रहे थे। श्री गुरुजी गये और बाबा साहेब के कमरे के बाहर दरवाजे के पास चुपचाप बैठ गये। न बाबा साहेब को पुकारा और न दरवाजे को थपथपाया। बस, चुपचाप बैठ गये। बैठे-बैठे श्री गुरुजी मन-ही-मन क्या कह रहे थे, यह तो वे ही जानें, पर श्री गुरुजी दरवाजे के पास चुपचाप बैठे रहे। वे कुछ देर बैठे रहे होंगे कि लोगों ने देखा—बाबा साहेब ने कमरे का दरवाजा खोल दिया है। उन्होंने अपने-आप खोल दिया ! श्री गुरुजी ने उनसे कहा—चलिये, भोजन करने चला जाये।

श्री बाबा साहेब श्री गुरुजी के साथ-साथ बिना कुछ कहे भोजन करने के लिये चल दिये। बात का बिगड़ा ढंग फिर से सही रास्ते पर आ गया था, परन्तु दरवाजे के सामने श्री गुरुजी के बैठने का प्रसंग····उस प्रकार से चुपचाप बैठ जाने के प्रसंग की याद कई बार उभर आया करती है और ऐसा विश्वास करने को बाध्य कर देती है कि श्री गुरुजी की भावात्मक सूक्ष्म क्षमतायें बहुत अधिक समृद्ध तथा समर्थ थीं।

●

[दस]

एक कार्य और है

श्री गुरुजी हिमाचल प्रदेश में विस्तृत प्रवास करने के लिये सन् १९६८ के अप्रेल मास में आये। हिमाचल प्रदेश में यह आगमन पहली बार ही हुआ था। मण्डी से हम लोग प्रातःकाल मनाली पहुंचे। श्री गुरुजी बहुत प्रसन्न

थे। वहाँ पर श्री मनुजी के मन्दिर को देखकर उन्होंने उसके जीर्णोद्धार की अभिलाषा व्यक्त की। वहाँ से वशिष्ठ गाँव जाकर ऋषि वशिष्ठ के मन्दिर का दर्शन किया तथा हिडिम्ब मन्दिर को देखा। हिमालय के एक-से-एक ऊँचे शिखर तथा चारों ओर फैली हुई वन-राशि··इनकी अनुपम शोभा कभी वर्षा की बूंदों के बीच और कभी सूर्य की किरणों के मध्य देखते ही बनती थी। आकाश छूने वाले देवदार के वृक्षों को देखकर श्री गुरुजी ने महाकवि कालिदास के रघुवंश काव्य की कुछ पंक्तियां बोलते हुए कहा—यहां से लौटने की इच्छा नहीं हो रही है।

दूसरे दिन शाम को कुल्लू की सार्वजनिक सभा में श्री गुरुजी ने अपने भाषण का आरम्भ ही यहां से किया·····"हिमालय में आना मैं अब तक प्रयत्नपूर्वक टालता रहा। उस परम पिता परमात्मा के द्वारा निर्मित ये उत्तुंग शिखर, व्यास नदी और सब तरफ बिखरा हुआ यह वन-सौन्दर्य मन में एक विशेष आकर्षण उत्पन्न करता है। मन कहता है कि इस एकान्त में एवं सुरम्य वातावरण में उस भगवान की लीला को एकाग्र भाव से अविराम देखते रहें। मन आनन्द-विभोर हो जाता है। किन्तु भगवान् ने हमारे करने के लिये एक और कार्य भी अपने सामने रख रखा है।"

वह कार्य है इस हिन्दुस्तान को जाग्रत करना और इसे शक्तिशाली हिन्दू राष्ट्र के रूप में दुनिया के सामने खड़ा करना। इस लक्ष्य की सिद्धि के लिये श्री गुरुजी अनवरत और आजीवन कार्यरत रहे। स्वामी विवेकानन्द की तरह उन्होंने समाज को ही भगवान् माना। वे एक श्वेत-वस्त्रधारी संन्यासी थे। वस्त्र नहीं, अपितु उनका मन ही गैरिक रंग में रंगा हुआ था। इस कार्य को करने के लिये एक सच्चे कर्मयोगी की भाँति श्री गुरुजी ने अपने सम्पूर्ण जीवन को गला दिया। श्री गुरुजी जीवनमुक्त विभूति के ज्वलन्त उदाहरण हैं।

●

[ग्यारह]

दीपक कई, पर प्रकाश एक

नागपुर जेल से अन्य संघ-अधिकारियों के छूट जाने के बाद जेल में हम दो ही रह गये थे, श्री गुरुजी और मैं। अब संध्या-वन्दन में श्री गुरुजी का

समय अधिक लगने लगा। वे श्री गीता का पाठ रोज करते थे। अधिकतर एकान्त में ही रहना चाहते थे वे, या थोड़ी-बहुत मेरी चिन्ता उनको रहती थी।

कुछ ग्रन्थ बाहर से मँगवा लिये गये। एक दिन श्री गुरुजी बोले–चलो, हम लोग ज्ञानेश्वरी पढ़ें।

वे पढ़ते थे और मैं सुनता था। श्री गीता जैसे गूढ़ ग्रन्थ की बातें मेरी समझ में भला क्या आ सकती थीं? परन्तु इतनी सावधानी से न कभी मैंने पढ़ा था और न कभी सुना ही था। मुझे याद नहीं कि बात कैसे चल पड़ी, परन्तु कुछ दिन के बाद ऐसा प्रसंग आया कि मुझे कुछ कहना पड़ा। मैंने श्री गुरुजी से कहा–मैंने ऐसा सुना है कि भगवान् श्रीकृष्ण ने पार्थ अर्जुन को अपना आलिंगन प्रदान किया और अपने जैसा बना लिया, यह क्या बात है?

श्री गुरुजी ने ज्ञानेश्वरी का इस प्रसंग से सम्बद्ध पाठ, जो उन्हें कण्ठस्थ था, तुरन्त सुना दिया :–

हृदया हृदय एक झाले
ये हृदयीचे ते हृदयी टाकले
द्वैत न मोडता आपण पैं केले पार्थ।

(द्वैत न समाप्त करते हुए भी पार्थ को अपने जसा बना लिया और पार्थ को यह प्राप्त हुआ आलिंगन से।)

इस पाठ को अधिक स्पष्ट करने के लिये श्री गुरुजी ने कहा–एक दीपक से दूसरा दीपक प्रज्वलित कर लेने के बाद फिर दो दीपक जलते हैं, दोनों का व्यक्तित्व अलग-अलग है, परन्तु उनके प्रकाश में भेद नहीं किया जा सकता। कार्य वही होता है, भले ही व्यक्तित्व भिन्न-भिन्न हो।

श्री गुरुजी के मुख से इस पाठ की व्याख्या मैं सुन रहा था और मैं मन-ही-मन सोच रहा था पूज्य श्री डाक्टर साहब और पूज्य श्री गुरुजी के आपसी सम्बन्ध के बारे में। आज भी सोचता हूं कि ऐसा ही बड़ों के बारे में होता होगा। मैं फिर बार-बार सोचता हूं–श्री गुरुजी के अखण्ड-प्रवास का प्रेरक-हेतु यह 'आलिंगन-प्रदान' ही है क्या?

[बारह]

अरविन्दाश्रम की माता जी से भेंट

१४ अगस्त १९७२ को सौभाग्यवश श्री गुरुजी से एकान्त में वार्तालाप करने का सुअवसर मिला था। मैंने उनसे कुछ जिज्ञासाएँ की थीं, जिनका स्पष्ट समाधान उन्होंने किया था।

मैं—श्री लेले ने श्री अरविन्द घोष को जब योग की दीक्षा दी थी, तब उन्हें बताया गया था कि वे जब भाषण देने के लिये खड़े हों, तब अपने मस्तिष्क को सब प्रकार के विचारों से मुक्त कर लें। उसके बाद अन्तःकरण में विचार उठें, उन्हें ही बोलना प्रारम्भ कर दें। वही ईश्वरीय वाणी होगी।

श्री गुरुजी—मस्तिष्क को विचारों से शून्य कर लेने के पश्चात् जो कुछ शेष रहता है, वह परमात्मा ही है और इसीलिये उस अवस्था में जो विचार आयेंगे, वे उसकी ही प्रेरणा से होंगे।

मैं—कभी-कभी स्वयं मुझे ही ऐसा अनुभव में आया है कि जब बोलने के लिये खड़ा हुआ, तब मन में कोई विषय ही नहीं सूझ रहा था। क्या बोला जाये, यही समस्या थी। किन्तु अचानक तभी कोई ऐसा विचार मन में कौंध गया, जिसके बारे में कभी पहले सोचा भी नहीं था और वह विचार अपने मस्तिष्क की उपज है, ऐसा बिल्कुल भी नहीं लगता था। जब उस विचार की भाषण में अभिव्यक्ति हुई, तब सुनने वालों को भी बहुत अच्छा लगा, किन्तु स्वयं को यही लगता रहा कि यह विचार मेरा नहीं है। बाद में जब दूसरी बार उसी विचार को बोलने का प्रयत्न किया तो मामला जमा नहीं।

श्री गुरुजी—इसीलिये कि दूसरी बार तुम सोचकर बोलने के लिये खड़े हुए थे।

मैं—क्या श्री मां योगिराज अरविन्द के पाण्डिचेरी पहुंचने के पूर्व वहाँ थीं ?

श्री गुरुजी—नहीं, वे बाद में वहाँ गयीं। जब प्रथम महायुद्ध प्रारम्भ हुआ, तब वे कुछ समय के लिये वापस फ्रांस चली गयी थीं। फिर कुछ दिनों बाद वे भारत वापस आयीं। तबसे अब तक वे वहीं पर हैं।

मैं—क्या श्री माँ को सिद्धि प्राप्त हो गयी है ? (अब श्री माँ का शरीर नहीं है)

श्री गुरुजी–हाँ, यदि महर्षि अरविन्द पर विश्वास है तो उन्हें सिद्धि अवश्य प्राप्त है। महर्षि ने तो उनके बारे में बड़ी भावना प्रकट की है। अब श्री माँ की आयु ६६ वर्ष की है। शरीर अत्यन्त कृश हो गया है, किन्तु मुखमण्डल पर अपूर्व तेज है। देख करके मन को बड़ी प्रसन्नता होती है। आश्रम की प्रत्येक गतिविधि पर उनका नियन्त्रण है।

मैं–आपकी तो उनसे भेंट हुई थी ?

श्री गुरुजी–हां, मैं उनसे मिलने गया था।

मैं–क्या बातचीत हुई ?

श्री गुरुजी–प्रकट बातचीत कुछ नहीं हुई। मुझे ऐसा लगा कि बातचीत न करना ही अधिक श्रेयस्कर होगा। हम दोनों एक दूसरे की ओर अनिमेष देखते रहे, काफी देर तक देखते रहे।

मैं–आपको ऐसा क्यों लगा कि न बोलना ही कल्याणकारी है ?

श्री गुरुजी–अन्दर से ऐसा विचार अपने-आप आया कि न बोलना ही अधिक ठीक रहेगा।

मैं–अधिक ठीक रहेगा, इसका क्या अर्थ है।

श्री गुरुजी–अरे भाई, जब प्रत्यक्ष बातचीत होती है, तब अनेक व्यावहारिक बातें बीच में आ जाती हैं और ज्यादा बात नहीं हो पाती। वैसे हम लोगों ने काफी बातचीत कर ली।

मैं–ऐसा कहते हैं कि चलते समय उन्होंने आपको एक गुलाब का फूल दिया था ?

श्री गुरुजी–हां, दिया था। एक लाल गुलाब का बड़ा फूल था। वहाँ रखे फूलों में वह अकेला ही वैसा फूल था।

मैं–क्या इसमें भी कोई संकेत है ?

श्री गुरुजी–होता है, ऐसा कहते हैं, पर मुझे नहीं मालूम।

●

(तेरह)

श्री बदरीनाथ यात्रा

पूज्य श्री प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी की बड़ी इच्छा थी कि श्री गुरुजी एक बार श्री बदरीनाथ धाम चलें इस इच्छा के अनुसार यात्रा-कार्यक्रम बनने में बड़ा

सहारा मिला स्वामी श्री अमूर्तानन्दजी से, जो श्री गुरुजी के अभिन्न मित्र एवं गुरु-भाई हैं। श्री स्वामीजी भी बदरी-केदार की यात्रा का कार्यक्रम बनाने के लिये कई बार कह चुके थे। परन्तु वहाँ जाने की स्फुरणा मन में होने पर भी श्री गुरुजी भला वहाँ क्यों कर जाने लगे ? बदरीनाथ जाने के लिये कोई समुचित कारण चाहिये ही। जहाँ संघ की शाखा है और स्वयंसेवक हैं, वहाँ अपने स्वयंसेवकों से मिलने के लिये ही श्री गुरुजी के जाने का कार्यक्रम साधाणरतः बनता है। अतः श्री महाराजजी (पूज्य श्री प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी) ने एक और मार्ग निकाला। बदरीनाथ धाम में लोगों के ठहरने के लिये धर्मशालाओं का अभाव है, अतः श्री महाराजजी ने संकीर्तन भवन की ओर से वहाँ एक भवन का निर्माण करवाया। भवन के बन जाने पर उन्होंने उसका उद्घाटन श्री गुरुजी से करवाने का तय किया और उसका आग्रहपूर्ण निमन्त्रण जुलाई मास में ही श्री गुरुजी के पास भेज दिया।

उधर श्री स्वामीजी ने भी इस यात्रा-कार्यक्रम के लिये सितम्बर मास में एक सप्ताह निकालने के लिये आग्रह किया। जुलाई मास की बैठक में जब श्री गुरुजी के वर्ष भर के दौरे का कार्यक्रम बन रहा था, तब मैंने भी सात दिन छुड़वा कर रखे। बदरी-केदार-यात्रा के लिये या तो अप्रैल-मई-जून के मास उपयोगी रहते हैं या फिर वर्षा के बाद सितम्बर-अक्टूबर मास। सारे देश में संघ शिक्षा शिविर के कार्यक्रम होने के कारण श्री गुरुजी का गर्मी के महीनों में बदरी-केदार जाना सम्भव ही नहीं था, अतः सितम्बर में यात्रा की योजना बनायी गयी।

श्री गुरुजी, डा० आबाजी थत्ते, स्वामी श्री अमूर्तानन्दजी लाला हंसराज जी, हम सब एवं उस क्षेत्र के तरुण कर्यकर्ता साथ थे। श्री महाराजजी वृन्दावन से अपनी मोटरकार द्वारा स्वतन्त्र रूप से आये और हम लोगों से उनका मिलन ऋषिकेश में हुआ। वैसे, मार्ग में हरिद्वार में विश्व हिन्दू परिषद की एक बैठक हुई थी। हरिद्वार में एक व्यक्ति ने श्री गुरुजी से प्रश्न किया—आपको बदरीनाथ यात्रा की कैसे सूझी ?

श्री गुरुजी ने कहा—संघ-कार्य से मुझे इतना अवकाश कहाँ कि तीर्थ को जा सकूं, पर मुझे तो विवश होकर जाना पड़ रहा है।

ऋषिकेश में स्वामी श्री शिवानन्द जी के 'दैवी जीवन संस्थान' में वहाँ के आश्रमवासियों के मध्य श्री गुरुजी का एक प्रवचन हुआ। उसी दिन सायंकाल तक श्रीनगर पहुंचना था, जहाँ स्वयंसेवकों का एक छोटा-सा कार्यक्रम आयोजित था। हमारे साथ एक एम्बेसेडर कार, एक जीप तथा

श्री गुरुजी के लिये देहरादून के संघचालक जी की एक बड़ी इम्पाला–कार थी। परन्तु इम्पाला-कार ने तो चढ़ाई पर अपना दम तोड़ना आरम्भ कर दिया। अभी असली चढ़ाई तो प्रारम्भ ही नहीं हुई थी। इसलिये ऐसा लगा कि यह विदेशी कार स्वदेशी तीर्थ-स्थानों पर जाना नहीं चाहती। इम्पाला-कार लौटा दी गयी। उसके यात्री शेष दोनों वाहनों में बंट गये तथा मैं श्री महाराजजी की कार में बैठ गया, इस प्रकार हम सभी लोग श्रीनगर पहुंचे।

श्री केदारनाथजी का रास्ता अभी पूरा बना नहीं है। अन्तिम दस-बारह मील, पैदल, घोड़ा या डाँडी के द्वारा ही तय हो सकता है। केदारनाथ जी के पास की पाँच-छः मील की चढ़ाई भी बड़ी ही कठिन है। इन दिनों श्रीगुरु जी को पैदल चलने का अभ्यास कम ही हो गया था। जिसको घोड़े पर सवारी करने का काम नहीं पड़ता हो, उसको घोड़े पर चढ़कर चलना पैदल चलने के समान ही थकावट देता है। कमर, जाँघ, कन्धे दो-तीन मील में ही दर्द करने लगते हैं। श्री गुरुजी को हम लोग डाँडी में ले जाना चाहते थे, परन्तु उन्होंने मनुष्य के ऊपर चलने वाले वाहन पर चढ़ने से पूर्णतः मना कर दिया। उनकी इच्छा तो पैदल चलने की थी, बहुत हुआ तो अधिक-से-अधिक घोड़े पर, पर हम सभी जानते थे कि यह कितना कठिन है। हम लोगों ने कुछ अधिक अनुरोध किया तो हम सबसे श्री गुरुजी ने स्पष्ट कह दिया कि मनुष्य के कन्धों पर चढ़कर चलने के लिये तो उन्होंने केवल अन्तिम महायात्रा का प्रसंग निश्चित कर रखा है। हम लोगों ने श्री महाराजजी से कहा कि श्री गुरुजी को डाँडी पर चढ़कर चलने के लिये तैयार करें। उनके सामने शास्त्र से कोई ऐसी बात निकालकर सिद्ध कर दें कि कन्धों पर चढ़कर चलने में कोई आपत्ति नहीं है। श्री महाराजजी के कहने पर श्री गुरुजी ने इतना ही स्वीकार किया कि वहाँ पहुंच कर देखा जायेगा। पर केदारनाथ जाने का प्रसंग ही नहीं आया, वर्षा के कारण रास्ते में कई स्थानों पर पहाड़ खिसक आया था और मार्ग अवरुद्ध हो गये थे। सड़क के टूट जाने से केदारनाथ की यात्रा हो नहीं पायी। बदरीनाथ के रास्ते के साफ होने के लिये ही हम सभी को दो दिन रुद्रप्रयाग में रुकना पड़ा। तब हम सभी लोग रुद्रप्रयाग से सीधे बदरीनाथ गये। मार्ग में मोटरकार यदि कभी कुछ बिगड़ जाती तो श्री गुरुजी भी हम लोगों के साथ उसे ठेलने लगते।

पहाड़ों पर सर्दी बहुत पड़ती है और श्री गुरुजी धोती छोड़कर अन्य कुछ पहनते नहीं। मैं श्री गुरुजी के लिये सूती बुना हुआ एक नया पाजामा लेता गया था, जो धोती के नीचे पहना जा सकता है। यह इसलिये कि सर्दी

में श्री गुरुजी को कष्ट न हो, परन्तु श्री गुरुजी ने उसका प्रयोग कभी नहीं किया। मोजा और जूता भी श्री गुरुजी साधारणत: नहीं पहनते, फिर भी उसकी भी व्यवस्था की गयी थी, परन्तु उसका भी उपयोग श्री गुरुजी ने नहीं किया। मेरे अतिशय आग्रह करने पर उन्होंने उत्तर दिया कि पहाड़ पर अनेकों व्यक्ति शीत-निवारक वस्त्र के बिना काम चलाते हैं तो मुझे सर्दी से बचने के लिये इतने वस्त्रों की क्या आवश्यकता है ? श्री गुरुजी को चाय पीने का चाव तो अवश्य है पर कई वर्षों से उन्होंने चाय के साथ कुछ खाना छोड़ दिया था। न तो सायंकाल भोजन करते थे और न रात्रि में दूध लेते थे। दिन भर में केवल एक बार भोजन और वह भी अत्यल्प करते थे। हम लोगों को बड़ी चिन्ता थी कि यह अल्प आहार पहाड़ की सर्दी से बचने के लिये कैसे पर्याप्त शक्ति और उष्णता प्रदान कर पायेगा। यह सब सोचकर हम लोगों ने कुछ सूखे मेवे तथा कुछ मुनक्का निर्मित लड्डू अपने साथ ले लिये थे। मैंने उनसे कहा कि पहाड़ पर चाय के साथ कुछ लेना अत्यन्त आवश्यक है। एक दिन उनको आग्रहपूर्वक एक लड्डू भी खिलाया, परन्तु यह कह कर कि इसमें मेरे दाँत चिपक जाते हैं, न तो उन्होंने आगे लड्डू ही खाया और न मेवा का ही प्रयोग किया। श्री महाराजजी जानते थे कि श्री गुरुजी का शुद्ध घी के ऊपर आग्रह रहा करता है, अत: श्री गुरुजी के लिये विशेष रूप से मूंग के लड्डू बनवा कर लाये थे, पर उन लड्डुओं को भी हम कार्यकर्ताओं को ही खाना पड़ा। पूरे प्रवास में श्री गुरुजी का वही पूर्ववत एक बार भोजन का तथा शुद्ध चाय का प्रयोग बना रहा।

केदारनाथजी की यात्रा हो नहीं पायी, अत: श्री बदरीनाथ क्षेत्र में पाँच दिन ठहरने का अवसर मिल गया। श्री गुरुजी ने बड़े भक्ति-भाव से भगवान श्री बदरीनाथजी का सविधि अभिषेक कराया। श्री अलखनन्दाजी के तट पर ब्रह्म-कपाली में अपने माता-पिताजी के लिये तथा पूर्वजों के लिये विधिवत् पिण्ड-दान दिये। इतना ही नहीं, उन्होंने अपना भी श्राद्ध कर दिया। अपने लिये किये गये श्राद्ध की बात उन्होंने भरसक अप्रकट ही रखी। अन्य कार्यक्रमों के साथ-साथ श्री गुरुजी माना ग्राम भी गये, जो भारत का सीमावर्ती अन्तिम ग्राम है। माना ग्राम के छोटे-छोटे सभी बच्चों को एकत्रित करके अपने देश व धर्म के विषय में प्रश्न पूछे तथा सभी को मिठाई देने की व्यवस्था करवायी। श्री बदरीनाथजी से तीन मील की दूरी पर माना ग्राम है और माना ग्राम से आगे तीन मील पर वसुधारा है। श्री गुरुजी का विचार वसुधारा भी जाने का था। माना तक तो जीप से

गये पर माना से आगे पैदल जाना था। श्री गुरुजी डेढ़ मील तो जैसे-तैसे चले गये, पर फिर साँस फूलने लगी। वसुधारा केवल डेढ़ मील रह गयी थी। नहीं चला गया अत: श्री गुरुजी को लौट आना पड़ा आने पर श्री गुरुजी ने श्रीमहाराजजी से कहा—आज मुझे अनुभव हुआ कि मैं बूढ़ा हो रहा हूं। माना के आगे डेढ़ मील के बाद मुझे एक पद चलना भी भारी हो गया।

श्री गुरुजी श्री महाराजजी को बिना बताये ही माना-वसुधारा की ओर चले गये थे। इससे श्री महाराजजी अप्रसन्न हुए। वे बोले—आपको मुझसे कहकर जाना चाहिये था। मैं भी साथ चलता। माना से घोड़ा ले लेते। सब प्रबन्ध हो जाता।

श्री गुरुजी ने कहा—इसीलिये तो मैंने आपसे नहीं कहा। यदि कहता तो आप अवश्य चलते। इससे आपको कष्ट होता।

बदरीनाथ में एक दिन वहाँ के सभी तीर्थ, पुरोहितों की बैठक हुई। उस बैठक में श्री गुरुजी ने सभी से यह पूछा कि वे अपने कर्मकाण्ड के विषय में कितना जानते हैं। श्री गुरुजी ने सभी को सुझाव दिया कि दक्षिणा में क्या मिलता है कितना मिलता है, इसका विचार न करते हुए सभी तीर्थ-पुरोहितों को अपना अपना कार्य शास्त्रसम्मत रीति से करना चाहिये। ऐसा करने से ही हिन्दू समाज की श्रद्धा-भावना टिकी रह सकती है। श्री बदरीनाथजी के मन्दिर के पूजारी को रावल कहते है और यह परम्परा है कि ये रावल केरल प्रदेश के नम्बूद्री ब्राह्मण हुआ करते हैं। उन दिनों मन्दिर के जो रावल थे, उन्होंने अपनी विद्यार्थी-अवस्था में श्री गुरुजी का भाषण केरल में सुना था। संघ से भी सबका अच्छा परिचय था। उनके साथ भी श्री गुरुजी की बातचीत हुई तथा चाय-पान का कार्यक्रम रहा। बदरीनाथ के अन्य नागरिकों के साथ भी भेंट-वार्ता हुई तथा सभी से श्री गुरुजी ने यही कहा कि सभी अपने धर्म पर आस्थापूर्वक चलें और अपने बन्धुओं के साथ स्नेह-सम्बन्ध सुदृढ़ बनाये रखें।

इन्ही दिनों श्री महाराजजी के द्वारा भगवत्कथा सुनने का अवसर श्री गुरुजी को प्राप्त हुआ। श्री महाराजजी प्राय: कहा करते हैं कि जैसे संघ वालों को प्रतिदिन शाखा लगाये बिना और प्रार्थना किये बिना चैन नहीं पड़ता, वैसे ही साधु-सन्तों को भगवान के गुण-गान को सुने सुनाये बिना चैन कहाँ? दोपहर को तीन बजे श्री महाराजजी प्रसाद लेकर उपस्थित होते थे और फिर घण्टे-डेढ़ घण्टे उनकी रसमयी वाणी से कथा श्रवण का आनन्द हम सभी को प्राप्त होता था। श्री महाराजजी कथा इतनी

तन्मयता के साथ कहते, प्रसंगों का वर्णन इतना रोचक होता, पात्रों की भाव-भावनाएँ इतनी सुन्दर रीति से व्यक्त होती कि सुनने वाले उस कथा-गंगा में पूर्णतः बह जाते। प्रेमाश्रु-पूर्ण नेत्रों से श्री गुरुजी भी उस कथा को सुनते थे। श्री महाराजजी नित्य श्रीकृष्ण-चरित्र की कथा सुनाया करते थे। प्रसंग था भ्रमर-गीत का। श्री गुरुजी की भाव-विभोरता को देखकर श्री महाराज जी ने बाद में कहा-अब तक तो मैं उन्हें एक सामाजिक नेता के रूप में समझता था किन्तु भगवत्कथा के समय मैं जान पाया कि वे तो नारियल की भाँति हैं, नारियल, जो ऊपर से तो दृढ़ कठोर दिखलायी देता है पर जिसके भीतर स्वच्छ निर्मल नीर परिपूर्ण रूप से भरा रहता है। जितनी देर वे कथा सुनते, उनकी आँखों से रह-रह कर अश्रु प्रवाहित होते रहते थे। तभी मेरे मन में आया कि यदि सम्भव हो तो मैं इन्हें एक बार सम्पूर्ण भागवत चरित सुनाऊँ।

अपनी इस तीर्थ-यात्रा तथा कथा-श्रवण के बारे में श्रीगुरुजी ने स्वयं एक पत्र में लिखा है-"श्री बदरीनारायण क्षेत्र में श्रद्धेय श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी महाराज ने संकीर्तन भवन का निर्माण कराया था और उसका उद्घाटन मुझे ही करना चाहिये, ऐसी उनकी इच्छा थी। श्री महाराजजी की इच्छा को आदेश मानकर मैंने श्री बदरीनाथ की यात्रा करने का निश्चय किया। सोचा कि वर्षों की उत्कट इच्छा पूर्ण करने के लिये परम कृपालु श्री बदरीनाथ ने ही यह संयोग बनवाया होगा और अपने अन्तरंग भक्त श्रीब्रह्मचारी जी महाराज को मुझे भवन के उद्घाटन करने के हेतु निमन्त्रित करने की प्रेरणा दी होगी। इस कार्यक्रम को निमित्त बनाकर मुझ पर श्री भगवान ने दया कर मुझे अपने पास खींचकर ले जाने का मेरे लिये भाग्य का सुयोग प्राप्त करा दिया। अकारण करुणा करने का यह पवित्र खेल, खेल कर मुझ पर अपना वरद हस्त रख दिया। श्री बदरीनाथ पहुंच कर पाँच रात्रि वहाँ भगवच्चरणों में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और श्री महाराज जी के श्रीमुख से श्रीमद् भागवद् के कुछ अंशका विवरण सुनने का असीम सुख प्राप्त कर सका। भगवान् श्रीकृष्ण के मथुरा चले जाने के कारण शोक विह्वल गोप-गोपियों और विशेषकर नन्द बाबा और यशोदा मैया की भाव-विभोर अवस्था का उनके द्वारा किया हुआ वर्णन पत्थर को पिघला सकने वाला कारुण्य रस का उत्कट आविष्कार था। उनको सान्त्वना देने के लिये श्री भगवान के द्वारा प्रेषित उद्धवजी के आगमन पर गोप, गोपी, यशोदा माई आदि की स्थिति, उनकी भावनाएँ, उनका उद्धवजी के साथ हुआ सम्भाषण

श्री ब्रह्मचारीजी श्री मुख से सुनते, सुनते मन एक सुखद वेदना का अनुभव कर द्रवित हो जाता था। इस अनुभव का वर्णन किस प्रकार करूँ ?"

श्री गुरुजी की विह्वल स्थिति की बात तो उनके अनोखे व्यक्तित्व के अनुरूप ही है। उनकी चर्चा ही क्या की जाये, जब कि हम जैसे शुष्क व्यक्ति भी कथा की समाप्ति के बाद एक अनिर्वचनीय अतृप्ति का अनुभव करते थे। श्री बदरीनाथ-यात्रा का यह कथा-श्रवण प्रसंग एक अद्भुत और अभूतपूर्व था। एक दिन श्री गुरुजी ने मुझसे कहा-"अब यहाँ से जल्दी ही चलना चाहिये, नहीं तो हिमालय की यह शान्ति और ब्रह्मचारीजी की यह कथा कही मुझे यहीं रह जाने के लिये विवश न कर दे"। ऐसे प्रसंगों पर प्रकट हो जाता था कि यद्यपि श्री गुरुजी ने डाक्टर साहब के कहने पर अपना अध्यात्म-परक प्रथम प्रेम छोड़कर समाज-सेवा का व्रत अपनाया था, परन्तु फिर भी वह प्रथम आकर्षण जबतब उचित उद्दीपन पाकर प्रबल हो उठता था और श्री गुरुजी उसे प्रयत्नपूर्वक दबाकर रखते थे।

चौदह

एक पिण्ड और तैयार करो

पूज्य गुरुजी, लाला हंसराज जी श्री रज्जू भैय्या आदि के साथ बद्री-नाथ-केदारनाथ यात्रा पर आये थे। उन दिनों मेरा कार्यक्षेत्र होने के कारण मुझे व्यवस्था की दृष्टि से साथ रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जैसा कि हम सब जानते हैं कि श्री बद्रीनाथ धामकी यात्रा के अवसर पर प्राय: यात्री वहाँ पर अपने पूर्वजों का पिण्डदान-तर्पण देते है। श्री गुरुजी ने भी अपने पूर्वजों को पिण्डदान-तर्पण अपने पण्डे से दिलाया। कर्मकाण्ड के अनुसार दान के लिये जितने पिण्ड आवश्यक थे, उतने तैयार किये गये।

श्री गुरुजी ने आज्ञा दी—एक और पिण्ड तैयार करें।

पुरोहित ने कहा—विधान के अनुसार इतने ही पिण्डों की आवश्य-कता है।

श्री गुरुजी के आग्रह पर एक पिण्ड और तैयार किया गया। श्री गुरुजी ने अपने पूर्वजों के पिण्डदान के बाद कहा-शास्त्रों एवं कर्मकाण्ड का विधान

है कि जिसके कुल में आगे कोई नहीं है, वह अपने आत्म-पिण्ड का दान स्वयं जीवित रहते ही कर दे। अतः मैं अब अपना आत्म-पिण्ड दान कर रहा हूं।

श्री गुरुजी ने अपना आत्म-पिण्ड दान किया। हम खड़े-खड़े अश्रु पूर्ण नेत्रों से इस क्रिया को देखते रहे। श्री गुरुजी ने फिर बद्रीनाथ धाम की धर्मशाला में नागरिकों, पुरोहितों एवं पण्डों के बीच में श्री शंकराचार्य जी के प्रयासों को सफल करने की प्रेरणा दी।

(पन्द्रह)

अन्तर की आस्था

श्री गुरुजी जब श्री बद्रीनाथ-धाम गये थे, तबकी बात है। अति वर्षा के कारण श्री केदारनाथ जी का मार्ग अवरुद्ध हो गया था। दो दिन तक सभी लोग रुद्रप्रयाग में रुके रहे। इतनी प्रतीक्षा के बाद भी श्री केदारनाथ के मार्ग के खुलने की सम्भावना दिखलायी नहीं दी। अतः बदरीनाथ जाना ही तय हुआ।

श्री बदरीनाथ से लौटने पर पूज्य श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी ने श्री गुरुजी से पूछा, अब केदारनाथ की यात्रा कब?

श्री गुरुजी ने कहा-जब वे दर्शन देने के लिये बुलायेंगे, तब। मैं स्वयं होकर तो कहीं जाता नहीं। उसी के संकेत से साथी लोग ले जाते हैं। मैं उसी के काम में लगा हूं। जब वे चाहेंगे, तभी चला आऊँगा।

(सोलह)

नर्मदा के तट पर

श्री गुरुजी और श्री स्वामी श्री अमूर्त्तानन्दजी महाराज, दोनों गुरु भाई बैठे हुए चर्चा कर रहे हैं। रात्रि के साढ़े-नौ बजे हैं। डा० आबाजी पास के कमरे में लेटे-लेटे कोई पुस्तक पढ़ रहे हैं।

स्वामी जी ने सहसा श्री गुरुजी का ध्यान आकर्षित करते हुए कहा नर्मदा मैया का सान्निध्य मुझे ऐसा प्रिय है कि मैया का विछोह सुहाता नहीं है। दिन में तो मैं शाखा और ग्रामवासियों से मिलने में व्यस्त रहता हूं, परन्तु रात्रि होने पर उस नीरव वातावरण में अपनी कुटिया में लेटा हुआ माँ के मधुर प्रवाह में एक अनिर्वचनीय संगीत सुना करता हूं। आपको कितनी बार कहा, आप मेरी कुटिया का हृदयहारी प्राकृतिक सौंदर्य देखिये तो सही, पर ये लोग... (कहते कहते स्वामी जी ने मेरी ओर संकेत किया)... ये लोग कभी कार्यक्रम बनाते ही कहां हैं ?

मैंने कहा—महाराज। आप मुझे क्यों कहते हैं, मैं तो मात्र आज्ञानुवार्ता हूं। हाँ, आप चाहें तो आबाजी को उलाहना दे सकते है।

यह सुनते ही स्वामीजी ने अपने सहज हास्य से कमरे को गुंजा दिया।

श्री गुरुजी मुस्कुरा रहे थे। सहसा उन्होंने आबाजी को पुकारा-आबा! सुना तुमने ? स्वामीजी क्या कह रहे हैं।

आबाजी हंसते हुए हमारे समीप आ गये और कहने लगे—आपकी कुटिया पर जाने का अर्थ है पूरे दिन का कार्यक्रम। फिर आजकल है वर्षा ऋतु। शायद रास्ते में मोटर जा भी न सके। किन्तु आगे हम ऐसी योजना बनायेंगे कि आपके आश्रम पर प्रातः काल जाकर वहीं नर्मदा-स्नान तथा अन्य नित्यकार्य से निवृत्त होने की व्यवस्था रखेंगे। भोजन वहीं करेंगे और फिर विश्राम करने के पश्चात् आप से बिदा लेंगे।

स्वामी जी ऊँचे स्वर में कहने लगे—हाँ-हाँ, भाई। कभी भी सही। आप लोगों का यह एकान्तवासी साधु कैसे स्वर्गोपम सुख का सम्राट है यह तो कभी चलकर देखना ही चाहिये। मैं कैसी शाखा चलाता हूं, यह देखेंगे तो चकित हो जायेंगे।

श्री गुरुजी हंसने और कहने लगे लगे—आबा! सुना तुमने! स्वामीजी अब संघ के अधिकारी के नाते बोल रहे हैं। एक बार हमें मोहीपुरा चलना ही होगा। अभी नहीं तो आगे किसी समय कार्यक्रम अवश्य रखना चाहिये।

फिर स्वामीजी की ओर देखकर श्री गुरुजी बोले—महाराज! आज्ञा शिरोधार्य! स्वामीजी ठहाका लगाकर हंस पड़े।

कुछ दिनों के बाद अचानक श्री आबाजी ने नागपुर से सूचना दी—श्री गुरुजी मोहीपुरा जाने के लिये इंदौर पधार रहे हैं।

सूचनानुसार श्री गुरुजी नागपुर से कार्यालय की मोटर से सीधे इंदौर पधारे। निश्चय हुआ कि प्रभात में चाय पीकर हम इंदौर से प्रस्थान करेंगे।

स्वामीजी को पूर्व सूचना थी ही। श्री सुदर्शनजी को भी सूचना दे दी गयी थी। अति-प्रभात में तैयार कराकर यथेष्टमिष्ठान्न सहित भोजन अपने साथ रख लिया गया और प्रतिक्षण श्री सुदर्शनजी की प्रतीक्षा होने लगी। श्री गुरुजी चिन्तित थे, बारम्बार कह रहे थे-सुदर्शन नहीं आया। सुदर्शन अब तक आया क्यों नहीं ?

पर्याप्त प्रतीक्षा करने के पश्चात् हम लोगों ने विलम्व करना उचित नहीं समझा और श्री गुरुजी से निवेदन किया अब प्रस्थान करना चाहिये क्योंकि हमें लगभग ९०-९५ मीलका मार्ग तय करना है।

श्री गुरु जी मोटर में बैठने तक श्री सुदर्शन जी को याद करते रहे और मजा यह कि हमारे सुदर्शन जी रात्रि में देर से आकर बैठक के बड़े कमरे में किवाड़ बन्द किये गम्भीर निद्रा में निमग्न थे, यह कोई जान ही न पाया।

अंजड़के पश्चात् नवनिर्मित सड़क के किनारे स्थान-स्थान पर मार्ग बताने के लिये स्वयं सेवक नियुक्त थे। लगभग दस बजे हम सब लोग मोहीपुरा पहुंचे।

नर्मदा के विशाल तट पर एक प्राचीन शिव मन्दिर से सटी हुई स्वामीजी की कुटिया है। हम वहाँ पहुंच गये। जैसे ही श्री गुरुजी स्वामीजी के चरणों में प्रणाम करने के लिये झुके कि स्वामीजी ने आगे बढ़कर उन्हें छाती से लगा लिया। सामने ही नर्मदा की निर्मल धारा सूर्य की किरणों से दमक रही थी। जल प्रवाह में दूरातिदूर से बहकर आये हुए तथा वहीं की पर्वतीय भूमि के जल-संस्कृत पाषाण खण्डों से भरा विस्तृत नदी तट निसर्ग की सुषमा के साथ सुशोभित हो रहा था। स्वामीजी प्रसन्न थे। मेरी ओर देखकर वे कहने लगे-हूं न मैं इस अनिर्वचनीय सौन्दर्य धाम का सम्राट? प्रिय लगा मेरा आश्रय ?

श्री गुरुजी माँ नर्मदा की विस्तृत धाराको कुछ क्षण देखते रहे। फिर सिर झुकाकर माता को प्रणाम कर वे स्वामीजी से कहने लगे-महाराज ! अब हमें स्नान के लिये ले चलिये। यहाँ दूर खड़े रहकर मैया के दर्शन से तो तृप्ति होगी नहीं।

स्वामीजी ने कहा—हां-हां स्नान तो करना ही है, परन्तु स्नान के साथ ही नर्मदा मैया के पूजन का भी कार्यक्रम रखा गया है। पूजन-सामग्री तैयार है। आप मैया को नैवेद्य निवेदन करेंगे जिसे ग्रामवासियों में बाँटा जायेगा।

तुरन्त स्वामीजी ने पूजन—सामग्री की सुसज्जित थाली एक ग्रामवासी को सौंपी और ग्राम में बाँटा जाने वाला प्रभूत नैवेद्य दूसरे व्यक्ति को उठाने

के लिये कहा । हम सब स्ननार्थ पूत धारा की ओर चले । अनेक ग्रामवासी भी अब तक आ चुके थे । अब तो एक छोटी सी शोभा यात्रा ही बन गयी थी ।

श्री गुरुजी ने पहले स्नान किया पश्चात् नर्मदा माता की श्रद्धापूर्वक वन्दना की । धीमे स्वर में वे श्री नर्मदाष्टक का पाठ कर रहे थे । 'नमामि देवि नर्मदे ।' कहकर पुनः प्रणत हुए और पूजन करके नैवेद्य निवेदित किया । जब हम सब स्नान कर चुके तो लौटकर कुटिया पर आ गये । श्री गुरुजी की सन्ध्योपासना के लिये उचित व्यवस्था की गयी थी और वे उपासना में बैठ गये ।

हम अपने साथ मिठाई और पक्वान आदि यथेष्ट भोजन सामग्री लाये थे, तथापि स्वामीजी ने वहीं ग्रामवासियों के घर का आतिथ्य स्वीकार करने का आग्रह किया श्री गुरुजी ने कहा—यह भी ठीक है । तब तो अपने साथ की भोजन-सामग्री अपने आतिथेय को सौंप देना चाहिये ।

यही हुआ । हम एक ग्रामवासी सज्जन के गोबर से लिपे स्वच्छ आंगन में उनके द्वारा प्रेम से बनाये हुए 'सीधे-सादे' भोजन के लिए बैठे । भगवान श्री कृष्ण ने भी कभी श्रेष्ठ पकवान्नों को छोड़कर जैसे विदुर की साग-सब्जी को स्वाद से स्वीकार किया था, उसी प्रकार श्री गुरुजी ने उस प्रेमपूर्ण सादा भोजन को सराहते हुए ग्रहण किया । हम स्वादभक्त सराहना का मौन समर्थन करते हुए भोजन करते रहे । हमारी दृष्टि से भोजन कैसा था, यह न पूछिये । अन्न तो देवता है न ? सब अच्छा ही था ।

इसी समय श्री सुदर्शनजी आ गये । मुचकंद की तरह वे कपड़ा ओढ़े सोये रहे और कोई बाधा न होने के कारण पूरी निन्द्रा लेकर स्वयं ही जब जागे तब वे हमारे जाने की सूचना पा सके । तुरन्त बस पकड़कर वे हम सबसे आ मिले । 'घर में छोरा और गाँव में ढिंढोरा' की कहावत का आनन्द लेते हुए बड़ी दिल्लगी रही ।

विश्राम के पश्चात् श्री गुरुजी समागत ग्रामवासियों से मिले । अनेक आसपास के स्वयं सेवक भी आ गये थे । इस छोटे से ग्राम मोहीपुरा में स्वयंसेवको का उल्लास अकथनीय था । जैसे कोई निधि मिल गई हो, अपनी उमंग में सभी प्रफुल्लित थे । जिन्होंने कभी चित्र में ही दर्शन किये थे, उन्होंने साक्षात् श्री गुरुजी के दर्शन करके समीप बैठ करके तथा बातें करके अपने आपको धन्य माना ।

अब बिदा का अवसर आया। स्वामीजी ने बड़े प्रेम से विदाई दी। ग्रामवासी अगाध श्रद्धा के साथ प्रणत थे। हम सब ग्रामवासियों के नेत्रों की स्नेहधारा से अभिषिक्त होते हुए मोहीपुरा से विदा हुए।

●

(सत्रह)

सत्यनारायण भगवान् के दर्शन

सन् १९७१ की घटना है। बम्बई के नेहरू नगर में मैं अपने पिताजी के मित्र श्री अम्बिकें के यहाँ श्री सत्यनारायण भगवान की पूजा के निमित्त गयी थी। उसी दिन श्रीगुरुजी किसी कार्यक्रम में भाग लेने के लिये नेहरु नगर पधारे थे। श्री सत्यनारायण भगवान का प्रसाद लेकर श्री अम्बिके चाचा उस स्थान पर श्री गुरुजी के दर्शनार्थ पहुंच गये। श्री गुरुजी ने उनसे कहा– प्रसाद तो ले आये, ठीक है, किन्तु श्री सत्यनारायण भगवान के दर्शन किये बिना उसे ग्रहण कैसे करूं?

और श्री गुरुजी चाचा जी के साथ घर पधारे। श्री सत्यनारायण भगवान का दर्शन करने के बाद वे बैठक वाले कमरे में बैठ गये। श्री गुरुजी का दर्शन मैं पहली बार ही कर रही थी। उनके चरणों का वन्दन करके मैंने आशीर्वाद की याचना की।

इतनी व्यस्तता के बाद भी किसी के पारिवारिक कार्यक्रम में उतने ही आनन्द और उत्साह से भाग लेने वाले उस सरल किन्तु धीर-गम्भीर व्यक्तित्व का हंसमुख चेहरा, मेरी दृष्टि से कभी भी ओझल हो ही नहीं पाता।

●

(अठारह)

मन्दिर में मूर्ति का दर्शन

नागरकोयल (कन्याकुमारी जिला) का कार्यक्रम समाप्त हुआ। हम लोग कन्याकुमारी की ओर चल पड़े। सब लोग प्रातः काल ही स्नानकर चुके

थे। मन्दिर के भीतर के शान्त-स्तब्ध वातावरण के ठीक विपरीत तेजी के साथ तूफानी हवाओं के चलने के कारण क्षारमय हिन्द महासागर में भयंकर शब्द हो रहा था। मन्दिर में भगवती की मूर्ति बड़ी ही सुन्दर थी। हम सभी को भगवती के कन्या-रूप का दर्शन करके बड़ी प्रसन्नता हुई। भगवती का दर्शन-पूजन करके जब हम लोग अपने निवास की ओर लौटने लगे, उसी समय किसी ने कहा—यह सुन्दर मूर्ति शिल्प-कला की दृष्टि से भी कितनी उत्तम कृति है। गुरुजी! क्या उत्तर भारत में आपने इसके समान सुन्दर कोई मूर्ति देखी है?

श्री गुरुजी ने तुरन्त उत्तर दिया-देखो! जब मुझसे कोई ऐसा प्रश्न करता है तो मेरे सामने एक भीषण कठिनाई उपस्थित हो जाती है क्योंकि जब मैं मूर्ति के सामने जाकर खड़ा होता हूं तो मेरी आँखे बन्द हो जाती हैं। हमें ईश्वर को अपने अंतश्चक्षुओं से देखना चाहिये। अतएव मेरे लिये यह संभव नहीं कि मैं मूर्ति के सौन्दर्य अथवा शिल्पकला का अनुमान कर सकूं।

उत्तर सुनकर प्रश्नकर्ता महोदय आश्चर्यान्वित अवश्य हुए होंगे, इसमें संदेह नहीं, परन्तु हम लोगों ने देव-मूर्ति के दर्शन करने का एक नवीन दृष्टिकोण प्राप्त किया।

●

(उन्नीस)

श्रद्धा के स्वरूप

श्रीगुरुजी के लम्बे-लम्बे केश तथा लम्बी-लम्बी दाढ़ी ही इस बात के परिचायक हैं कि श्री गुरुजी के मन में अपने दीक्षा-गुरु की रुचि के लिये कितना अधिक आदर-भाव था। श्री गुरुजी के दीक्षा-गुरु थे परम् श्रद्धेय स्वामी श्री अखण्डानन्दजी महाराज, जो परमहंस श्री रामकृष्ण जी के ग्यारह प्रधान पट्ट शिष्यों में से एक थे। जिस समय श्री गुरुजी अध्यात्म-साधना की दृष्टि से सारगाछी आश्रम में श्रद्धेय श्री स्वामी जी के पास निवास करते थे, उस समय अपने प्रिय शिष्य के बिखरे हुए कोमल बालों पर अपना स्नेहपूर्ण हाथ फेरते हुए उन्होंने कहा था कि तुम्हारे ये केश बड़े अच्छे लग रहे हैं। इनको ऐसे ही रहने देना, कटवाना मत। बस, तभी से

नाई की कैंची अथवा उस्तरा अथवा सेफ्टीरेजर का अस्तित्व ही कम-से-कम श्री गुरुजी के लिये समाप्त हो गया और ये बढ़े हुए केश श्री गुरुजी के तपःपूत ऋषिजीवन की गरिमापूर्ण झलक ही आजीवन प्रस्तुत करते रहे।

और श्री गुरुजी का वह कमण्डलु ! इस बीसवीं सदी के 'तथाकथित सभ्य युग' में भी हाथ में उसे उठाते समय कभी उन्हें संकोच हुआ ही नहीं। संकोच की कौन कहे, परम श्रद्धासहित अपने हाथ में लेकर श्री गुरुजी चला करते थे। वह सदा उनके हाथ में ही रहता। रेलवे-प्लेट फार्म पर यदि शिष्टाचार बरतने अथवा सम्मान देने के लिये कोई श्री गुरुजी से कमण्डलु मांगता और अनुरोध करता कि दीजिये, मैं अपने हाथ में ले चलूं, तब श्री गुरुजी यही कहा करते-भाई। इसे तो मेरे ही हाथ में रहने दो। वह कमण्डलु श्रद्धेय स्वामी श्री अखण्डानन्दजी का कृपा-प्रसाद था। श्री गुरुजी कहा करते थे कि इस कमण्डलु की आयु मुझसे भी अधिक है। मुझसे पहले यह मेरे दीक्षा गुरुजी के पास था और उनके साथ हिमालय-तिब्बत आदि न जाने कितने कितने स्थानों का, तीर्थों का यह परिभ्रमण कर चुका है।

जब श्री गुरुजी का निवास नागपुर में रहा करता था तो संघ-कार्यालय के उनके कमरे में यह कमण्डलु उनकी बाँयी ओर रखा रहता। नागपुर से प्रस्थान करने के समय बाँयी ओर से उठाकर श्री गुरुजी उसे अपनी दाहिनी ओर रख लिया करते थे, जिससे यात्रा के समय दाहिने हाथ से उठाने में सुविधा रहे। यात्रा करते समय भी यह कमण्डलु श्री गुरुजी अपने दाहिने हाथ में लिये रहते। ५ जून १९७३ के दिन श्री गुरुजी का निधन हुआ। इसी दिन प्रातः काल श्री गुरुजी ने यह कमण्डलु बाँयी ओर से उठाकर अपने दाहिने ओर रख लिया, दाहिनी ओर बहुत पास। थोड़ी देर बाद श्री विष्णु पंतजी मुठाल ने देखा कि कमण्डलु तो दाहिनी ओर रखा है। ऐसा देखकर उन्होंने समझा कि किसी ने गलती से दाहिनी ओर रख दिया है। बाँयी ओर रखने के लिये जब श्री मुठालजी कमण्डलु उठाने लगे तो श्री गुरुजी ने मना कर दिया और कहा—कमण्डलु को दाहिनी ओर ही रहने दो। उस क्षण तो वह बात साधारण-सी लगी, पर श्री गुरुजी का महाप्रस्थान हो जाने के बाद उस चेष्टा का गम्भीर अर्थ बाद में समझ में आया। अपनी 'महा-यात्रा' की पूर्व-तैयारी के रूप में श्री गुरुजी ने कमण्डलु को दाहिनी ओर रख लिया था।

ये केश और यह कमण्डलु तो प्रायः लोगों के देखने में आते थे, पर श्रद्धेय श्री स्वामीजी की पनहिया की बात तो बहुत दिनों तक लोगों के लिये

सर्वथा अज्ञात ही रही। श्रद्धेय श्री स्वामीजी महाराज के चरण-कमलों की ये पनहिया श्री गुरुजी अपने साथ नागपुर लाये थे। सारगाछी से लौटते समय और घर पर आने के बाद उन पनहियों को एक संदूक में भली-भाँति रखकर उनकी श्रद्धापूर्वक अर्चना नित्य करने लगे। संध्या-वन्दन के समय श्री गुरु-चरणों की इन पनहियों की धूपबत्ती से आरती उतारना, उनके ऊपर फूल चढ़ाना, विल्व-पत्र चढ़ाना, प्रणाम करना, यह श्री गुरुजी के नित्य का क्रम था और जब श्री गुरुजी नागपुर से बाहर रहते तो इन पावन पनहियों की दैनन्दिन अर्चना का कार्य सम्पन्न होता था श्री बाबूराव चौथाईवाले के द्वारा।

इस संदूक में और भी कुछ श्रद्धास्पद वस्तुएँ थीं। अपने निधन के पूर्व इन सभी श्रद्धास्पद वस्तुओं को श्री गुरुजी ने पूना-निवासी अपने चचेरे भाई श्री वासुदेवजी गोलवलकर के पास जशपुर नगर के श्री सीताराम महाराज के हाथ भिजवा दी। श्री गुरुजी ने श्री वासुदेवजी से यह निवेदन किया था कि इन सबको किसी पीढ़े पर आदरपूर्वक पधराया जाना चाहिये। सबेरे स्नान करके धूपबत्ती तथा पुष्प से तथा शाम को पैर धोकर केवल धूपबत्ती से अर्चना कर देनी चाहिये। आज भी ये वस्तुएँ श्री वासुदेवजी के निजी देवालय की दिव्य निधि बनी हुई हैं।

श्री गुरुजी के पास स्वामी श्री विवेकानन्दजी के हाथ का एक चाकू रहा करता था। किसी प्रकार यह चाकू श्री गुरुजी को उपलब्ध हो गया था। श्री गुरुजी का इस चाकू के प्रति बड़ा श्रद्धा-भाव था। एक बार ट्रेन से उनका कुछ सामान उतारने से रह गया और उस सामान के साथ वह चाकू भी ट्रेन में छूट गया। इस चाकू की चर्चा करते हुए कभी-कभी श्री गुरुजी कहा करते थे—जिसे वह चाकू मिला होगा, उसे क्या पता कि इस चाकू का महत्त्व क्या है।

जिस तरह इस चाकू के खो जाने का अत्यधिक खेद श्री गुरुजी के मन में था, उसी तरह का खेद था एक पन्ने के खो जाने पर। वह पन्ना भी चाकू की तरह ही खोया था। उस पन्ने पर पूज्य डाक्टर हेगगेवारजी के हाथ से लिखी हुई संघ-प्रार्थना थी।

अनोखी थी श्री गुरुजी की भक्ति अपने श्रद्धेय-जनों के प्रति और अद्‌भुत थी उनकी अर्चना उनकी ममता श्रद्धास्पद वस्तुओं के प्रति। प्रखर बुद्धि और अजेय तार्किकता के धनी होते हुए भी श्री गुरुजी सहज श्रद्धा के साकार स्वरूप हो सकते हैं, यह बात विचित्र-सी लगने पर भी एक वास्तविकता है।

(बीस)

दैनन्दिन नित्यकर्म के प्रति निष्ठा

घटना सन् १९५३ की है। राजस्थान के प्रवास के क्रम में श्री गुरुजी जयपुर पधारे। जयपुर के कार्यक्रम के दूसरे दिन सीकर नगर में कार्यक्रम था। जयपुर से रेलगाड़ी प्रातः ९-४० बजे जाती थी। अतः जयपुर में प्रातः सात बजे से आठ बजे तक के लिये एक बैठक आयोजित कर ली गयी थी। बैठक के बाद नित्यकर्म से निवृत्त होकर श्री गुरुजी ९-१५ बजे स्टेशन के लिये प्रस्थान करने वाले थे। एक कार्यकर्ता को यह कह दिया गया था कि ज्यों ही आठ बजे, त्यों ही वह सूचित कर दे। यह इस लिये कि स्नान-पूजन-आदि नित्यकर्म से निवृत्त होने में लगभग सवा घण्टा अपेक्षित था।

बैठक के भावपूर्ण और विनोदपूर्ण वातावरण में उक्त कार्यकर्ता आठ बजे श्री गुरुजी को संकेत करना भूल गये। जब सवा आठ बज गये, तब श्री गुरुजी ने समय पूछा। अब सब चुप। उस कार्यकर्ता की तो विचित्र हालत थी, काटो तो खून नहीं। श्री गुरुजी से कहा गया कि अब भी आप निवृत्त होकर स्टेशन पहुंच सकते हैं, किन्तु उन्होंने अस्वीकार कर दिया। नित्यकर्म के लिये अपेक्षित समय तो चाहिये ही था। श्री गुरुजी तनिक भी रुष्ट नहीं हुए और बैठक चलती रही। बैठक का वातावरण वैसा ही भाव पूर्ण वैसा ही विनोदपूर्ण बना रहा।

श्री गुरुजी फिर सीकर के लिये प्रस्थान कर गये। बाद में यह पता चला कि नित्यकर्म न होने से श्री गुरुजी दिन भर निराहार रहे।

●

(इक्कीस)

हठयोग में भी गति

नागपुरके मुख्य कार्यालय हेडगेवार-भवन के कमरेमें बैठे हुए श्री गुरुजी पत्रों का उत्तर लिख रहे थे। उनकी लेखनी तीव्र गति से चल रही थी। उनके समीप हम कई लोग बैठे हुए थे। वे उत्तर भी लिख रहे थे और बीच-बीच

में हम लोगों से बात भी करते जा रहे थे। बात-चीत करते-करते भी पत्र-लेखन तीव्र गति से चल रहा था।

बाहर आकाश बादलों से छाया हुआ था। हल्की-हल्की फुहार पड़ रही थी। तभी एक महाराष्ट्रीय सज्जन ने श्री गुरुजी के कमरे में प्रवेश किया। अभिनन्दन के उपरान्त उन्होंने एक पुस्तक जो हठयोग पर लिखी हुई थी, वह पुस्तक श्री गुरुजी की ओर सरका दी और अपना स्थान ग्रहण किया। पत्र लिखते-लिखते श्री गुरुजी ने पूछा—क्या है भाई!

उन सज्जन ने पुस्तक-लेखक का नाम बताते हुए कहा—उन्होंने यह पुस्तक आपके पास भेंट स्वरूप भेजी है तथा वे इस पुस्तक पर आपकी सम्मति जानना चाहते हैं।

श्री गुरुजी का पत्र-लेखन चलता रहा। पत्र समाप्त होने पर उन्होंने पुस्तक हाथ में ली। फुहार के कारण पुस्तक कुछ-कुछ भीग गयी थी। कमरे में बिजली का पंखा चल रहा था, अतः सुखाने के लिये उसको आधा खोल कर उलटा खड़ा कर दिया। इतना करने के बाद उन सज्जन से श्री गुरुजी ने कहा—देखिये! आपकी इस पुस्तक को शीर्षासन करा दिया है।

उनके ऐसा कहते ही कमरा हम लोगों की हँसी से भर गया। श्री गुरुजी दूसरे पत्र का उत्तर लिखने लग गये। दूसरे उत्तर को समाप्त करके उन्होंने पुस्तक उठायी और खोली। खोलते ही आसन का एक चित्र सामने आया। उस चित्र के नीचे आसन के बारे में कुछ लिखा था। उसी आसन का विस्तृत विवरण सामने वाले पृष्ठ पर छपा हुआ था। श्री गुरुजी ने उस व्यक्ति को बुलाया और कहा—चित्र के नीचे जो लिखा है और सामने जो लिखा है, दोनों को पढ़ो और तुम्हीं देखो कि इन दोनों वर्णनों में विरोधाभास है या नहीं?

उन सज्जन ने पढ़ा। श्री गुरुजी का कथन सही था। श्री गुरुजी ने फिर एक और पृष्ठ निकाला। उस पृष्ठ में भी जो विरोधाभास था, उसे भी श्री-गुरु जी ने उन सज्जन को दिखलाया। इसके बाद श्री गुरुजी बोले—अब अधिक पृष्ठ नहीं उलटूंगा, नहीं तो तुम यही कहोगे कि मैं बड़ा दोष दर्शी हूँ।

हम लोग समझ नहीं पा रहे थे कि कैसे श्री गुरुजी की दृष्टि और उनकी अँगुली वहीं पहुँच जाती है, जहाँ कुछ त्रुटि होती है। पत्र-लेखन का कार्य समाप्त होने पर श्री गुरुजी हठयोग के बारे में बताने लगे, बहुत विस्तार से बताया कि परम तत्व की प्राप्ति हेतु अनेक साधन-पथों में

से किस प्रकार एक पथ हठयोग है, हठयोग का शास्त्रीय स्वरूप क्या है, हठयोग के क्या-क्या अंग और उपाँग है, हठयोग से क्या-क्या लाभ हैं, हठयोग में क्या-क्या सावधानी रखनी चाहिए। इन सब बातों को बताते-बताते श्री गुरुजी कहने लखे—इतना होकर भी लोगों का, मुख्यतः पाश्चात्य रंग में रंगे हुए लोगों का विश्वास हठयोग पर क्यों नहीं हो पाता ? हठयोगी का शरीर परम स्वस्थ और अति पुष्ट होता चाहिये। पर दिखलायी यह देता है कि वह रुग्ण या क्षीण है। हठयोगी की अस्वस्थता को देखकर लोगों का विश्वास हठयोग की श्रेष्ठता पर जम नहीं पाता और लोग कह बैठते हैं कि ये शास्त्र सब मिथ्या हैं, ये साधनाएँ सब ढकोसला हैं। वास्तविकता की पकड़ न होने के कारण ही लोग गलत रूप से सोचते हैं और गलत ढ़ंग से कहते हैं। हठयोग के अनुसार साधना करते-करते व्यक्ति जब सिद्धी के स्तर पर अवस्थित हो जाता है तब वह सिद्ध समर्थ गुरु कई बार अपनी ज्ञान दृष्टि से हल्के-गहरे आवरणों को भेद कर अपने हठयोगी शिष्यों की कठिन कर्म-राशि को देख लेता है और फिर उन्हें अपने ऊपर ले लेता है। अशुभ कर्म-राशि की विपुलता और कठिनता के कारण शिष्य उच्च स्तर की और अग्रसर नहीं हो पाता अतः शिष्यों के प्रगति-पथ को प्रशस्त करने के लिये ही समर्थ गुरु अपने शिष्यों की विपुल कर्म-राशि को अपने ऊपर झेल लेता है। कर्म-राशि के फल को भोग तो होना ही है, चाहे वह कोई भोगे। यह कहा ही गया है कि **'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्'**। यही कारण है कि वह समर्थ गुरु कई बार अशक्त-अस्वस्थ-अपुष्ट रूप में दिखलायी देता है। अक्षम-सा दिखलायी देने वाला हठयोगी वस्तुतः समर्थ गुरु है, इसकी कसौटी यही है कि वह अस्वस्थ होकर भी सदा आनन्द भाव में रहता है। सुख दुःख से अतीत होकर नित्य आनन्द की स्थिति में अवस्थिति ही उसकी सर्व समर्थता का परिचायक है। सच पूछा जाये तो सद गुरु की यह क्षमता भारतीय शास्त्रों की सत्यता, शास्त्रों की पूर्णता और प्रामाणिकताओं को ही अधिकाधिक सिद्ध करती है। फिर भी लोग इन तथ्यों की जानकारी नहीं होने से अपने छिछले ज्ञान के आधार पर शास्त्रों को अप्रामाणिक कहते हैं, पर यह उनके अज्ञान का ही परिचय देता है।

हम लोग मुग्ध मन से यह सारा निर्वचन सुनते रहे। साथ ही मुझे स्मरण हो आया कि सर-संघचालक बनने से पहले श्री गुरुजी संघ के स्वयंसेवकों के सामने कई बार पद्मासन लगाकर अपना बौद्धिक दिया करते थे।

एक प्रसंग तो मेरे सामने का ही है। कार्यमर्ताओं की बैठक हो रही थी। श्री गुरुजी सिद्धासन से बैठे हुए बैठक ले रहे थे। एक-सवा घण्टे के बाद कार्यकर्ताओं को कुछ मिनट का विश्राम दिया गया जिससे कि वे सब लोग मल-मूत्र के वेग से निवृत्त हो लें, पर इस विश्राम की अवधि में भी श्री गुरुजी ज्यों-के-त्यों सिद्धासन से बैठे रहे। इसके बाद वे सब कार्य-कर्ता फिर बैठक में आ गये। यह बैठक कई घण्टे चली। इस कई घण्टे वाली बैठक में श्री गुरुजी बिना हिले बिना हटे आद्यन्त सिद्धासन में बैठे रहे।

●

(बाईस)

उनका जीवन-सूत्र

विगत १८ अप्रैल १९७३ को मैं श्री गुरुजी के पास बैठा था। उनका स्वास्थ्य उन दिनों बहुत गिर गया था। एक बात की मन में बड़ी जिज्ञासा थी। मैंने श्री गुरुजी से पूछा—गुरुजी! जीवन-सूत्र के रूप में आपने कुछ निश्चित किया है क्या?

श्री गुरुजी बोले—सूत्र? मैंने प्रवाह के साथ बहते रहने का निश्चय किया है।

मैंने फिर प्रश्न किया—याने, प्रवाह में पड़े रहना?

श्री गुरुजी ने स्पष्टीकरण किया—नहीं, नहीं। प्रवाह के साथ बहते रहना। प्रवाह के बाहर जाना नहीं। प्रवाह में डूबकर नष्ट होना भी नहीं प्रवाह के विरुद्ध भला कैसे जाना? किनारे पर खड़े होकर प्रवाह की ओर देखना भी नहीं। प्रवाह के बाहर फेंका जाना, यह भी नहीं। भगवान ने बताया है न कि

'कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् (गीता ३/२५)

अर्थात विश्व का मार्गदर्शन करने वालों को लोक-विलक्षण नहीं होना चाहिए। लोक संग्रह का व्रत लेने वालों का सर्व साधारण व्यक्ति की अपेक्षा भिन्न नहीं दिखलायी देना चाहिये। यही है मेरा जीवन-सूत्र!

●

(तेइस)

समय प्रवाह के द्रष्टा

सन् १९४८ में दिल्ली सरकार ने संघ पर प्रतिबन्ध लगाकर संघ के अनेकानेक लोगों को गिरफ्तार कर लिया था। सन् १९४९ में सरकार ने यह प्रतिबन्ध बिना शर्त हटा लिया और संघ के सभी लोगों को जेल से रिहा कर दिया। प्रतिबन्ध हटने के बाद एक दिन नागपुर-कार्यालय में श्री गुरुजी स्वयंसेवकों के साथ बातचीत कर रहे थे। तभी एक स्वयंसेवक के मन में यह उत्सुकता जगी कि जिन श्री गुरुजी का सारा समय सदा ही अपने स्वयंसेवकों के बीच रहने और उनसे बात करने में व्यतीत होता है, उन श्री गुरुजी को जेल के एकाकी वातावरण में कैसा लगता होगा ? अपनी उत्सुकतका को व्यक्त करते हुए उस स्वयंसेवक ने श्री गुरुजी से पूछा—कारावास के एकान्त में आपका समय कैसे कटता होगा ?

श्री गुरुजी ने उत्तर दिया—एक जगह शान्ति से बैठकर, समय का प्रवाह अखण्ड रूप से बह रहा है, यह देखने में और अनुभव करने में एक विलक्षण आनन्द आता है। (To observe the flow of time)। परम पावन भागीरथी के तट पर बैठकर उस सुरसरिता के शुद्ध जल के भव्य स्रोत को देखने में जैसा आनन्द आता है, वैसा ही आनन्द समय का प्रवाह देखने में।

श्री गुरुजी द्वारा तब दिये गये उत्तर का एक-एक शब्द आज भी भलीभाँति स्मरण है, पर उस उत्तर का अर्थ-बोध न तब हो पाया था और न अब भी हो पा रहा है। नदी के तट पर बैठकर पानी के प्रवाह को देखना, यह तो समझ में आता है, पर समय के प्रवाह से मुक्त होकर, समय के प्रवाह से अतीत होकर और फिर समय के प्रवाह को देखना और अनुभव करना, ऐसा लगता है, यह कोई बहुत ऊँची आध्यात्मिक अनुभूति का स्तर है। केवल कल्पना करना भी जहाँ सम्भव न हो, वह आध्यात्मिक स्थिति श्री गुरुजी के जीवन में मूर्तिमान थी।

(चौबीस)

कठिन योग, सरल साधना

१६ फ़रवरी १९७३ का प्रसंग है। श्री गुरुजी उत्कल-प्रवास के दौरान कटक में थे। में भी उनके साथ था। अनौपचारिक चर्चा के समय मैंने उनसे पूछा—श्री अरविन्द और श्री रमण महर्षि के साहित्य में ऐसा पढ़ने में आया है कि अपनी सारी वृत्तियाँ ईश्वराधीन कर देनी चाहिये तब हमारे हाथों से अपने आप सत्कर्म ही होंगे। किन्तु मेरा स्वयं का अनुभव तो ऐसा है कि मन में सदा सत् और असत् प्रवृत्तियों में संघर्ष होता रहता है और असत् प्रवृत्ति को दबाकर सत् प्रवृत्ति को प्रभावशाली बनाने के लिये हमें सदा प्रयत्न करना पड़ता है। फिर संत तुकाराम भी इसी का समर्थन करते हैं। वे कहते हैं—आम्हा संता नित्य युद्धाचा प्रसंग (संतों को नित्य संघर्षरत रहना पड़ता है) तब इसमें संगति कैसे लायी जाये ?

श्री गुरुजी नेकहा—प्रवृत्ति को सिर्फ दबाने से काम नहीं चलेगा। वह तो नष्ट होनी चाहिये। ज्ञानयोग, कर्मयोग अथवा राजयोग की अपेक्षा भक्तियोग का आचरण सरल है, ऐसा माना जाता है। वस्तुतः भक्तियोग ही आचरण के लिये कठिन है, क्योंकि उसमें निरपवाद समर्पण-भाव आवश्यक है। यदि वह सध गया तो हमारे हाथों से श्री अरविन्द अथवा महर्षि रमण के कथनानुसार सत्कर्म ही होंगे।

●

(पच्चीस)

श्रद्धा और विश्वास फलदायक

नागपुर के एक स्वयंसेवक ने सब प्रकार की चिकित्सा करवायी, इसके बाद भी उसकी बीमारी अधिकाधिक बढ़ती ही गयी। रोग से उसका शरीर जर्जर हो चुका था। जब श्री गुरुजी अपने प्रवास से लौटकर वापस नागपुर आये तो वह स्वयंसेवक उनसे मिलने के लिये गया। उसके शरीर की हालत देखकर श्री गुरुजी ने उसका हाल-चाल पूछा। उस स्वयंसेवक ने बताया—

सब प्रकार की दवा करके थक चुका हूं। कोई लाभ नहीं हुआ। अब तो मृत्यु की प्रतीक्षा है।

श्री गुरुजी के पास भगवान विश्वनाथ का प्रसादी-भस्म था। वह भस्म उस स्वयंसेवक को देकर श्री गुरुजी ने कहा—इसको नित्य थोड़ा-थोड़ा खाया करो। अवश्य लाभ होगा।

उसी से वह स्वयंसेवक स्वस्थ हो गया। सन् १९६९ में जब मैं वाराणसी के संघ-शिक्षा-शिविर का सर्वाधिकारी था, तब यह प्रसंग श्री गुरुजी के मुख से ही मैंने सुना था। गुरुजी ने बताया—श्रद्धा और विश्वास ही फलदायक होते हैं। मैं कोई डाक्टर नहीं और भस्म कोई औषधि नहीं, पर विश्वास के कारण शरीर स्वस्थ हो गया।

●

(छब्बीस)

परम पावनी मातृभूमि

श्री गुरुजी की भारत भूमि के प्रति मातृ-भावना थी। पर्वतराज हिमालय तथा शुचि-सलिला गंगा जी के दर्शन से उन्हें अनेक आध्यात्मिक अनुभूतियां हुई थीं। श्री गुरुजी ने स्वयं लिखा है।

"अपनी इस मातृभूमि का यह पवित्र-पुनीत वामुमण्डल भगवान का प्रत्यक्ष दर्शन करने वाला और चिरन्तन सत्य का साक्षात्कार कराने वाला है। भगवान का दर्शन तो गुरु ही करवा सकते हैं, इसलिये यह कहा गया कि यह भूमि हमारे लिये गुरु के रूप में है।

यह अपना हिमालय अपने निकट होने के कारण शायद हम लोगों ने उसका विशेष विचार नहीं किया होगा। हिमालय की इधर-उधर बरफ से ढकी हुई चोटियों के बीच में किसी स्थान पर मनुष्य यदि थोड़ा समय शान्ति से बैठ जाये, उन चोटियों को देखता हुआ शान्त बैठे तो थोड़े ही समय में उसे अनुभव होगा कि बन्दर के समान नित्य उछल-कूद करने वाला अपना मन, कुछ समय की उछल-कूद के बाद शान्त-स्थिर हो गया है। जैसे हिमालय अडिग है, ऐसा ही अपना अडिग मन भी शक्तिशाली बनकर खड़ा है। यह अनुभव करने की बात है।

गंगा जी अपने लिये पवित्र है। कभी उस पवित्रता का अनुभव किसी ने किया या नहीं, मैं नहीं जानता, परन्तु गंगा के किनारे जरा बैठो। उसके ऊपर छोटी-छोटी तरंगे उठती रहती हैं। उनका खेल देखते हुए बैठो। थोड़ी देर में अपने आप अनुभव होगा कि अंतःकरण में बड़ी पवित्रता भर रही है। समग्र अनिष्ट विचार घुलते जा रहे हैं। यह मैं अपने अनुभव से बतलाता हूं।

मैंने कई रातें गंगा के किनारे इस प्रकार बितायी हैं। यह पवित्रता इस भूमि में प्रत्यक्ष है। अपने हृदय में यह भावना दृढ़ता से धारण करें कि यह मेरी माता-मातृभूमि-मेरे लिए अतीव वन्दनीय, अतीव आदरणीय है। हम सबका प्रथम कर्तव्य है कि इसके कण को कोई भी किसी प्रकार की दुष्ट बुद्धि से स्पर्श न कर सके। ऐसी स्थिति उत्पन्न करना और इस मातृभूमि के सम्बन्ध की शुद्ध भावना सारे जगत में फैलाना, मेरा प्रथम कर्तव्य है।"

(सत्ताईस)

इस शरीर के लिये प्रार्थना नहीं

पूज्य श्री गुरुजी उन दिनों कोट्टाइकल (केरल) में भर्ती थे— उपचार के लिये। तेल-धारास्नान (OIL BATH) की प्रक्रिया चलती थी। डाक्टर थे श्री माधव परड़कर। एक दिन जब वैद्यजी आये तो उन्होंने धूप दीप जलाया। प्रार्थना की, फिर श्री गुरुजी से कहा—आप भी शीघ्र स्वास्थ्य-लाभ के लिये भगवान से प्रार्थना कर लें।

श्री गुरुजी तैयार नहीं हुए। स्पष्ट मना करते हुए उन्होंनेकहा—आप लोग जो भी करें, मैं बीच में नहीं पड़ूंगा, परन्तु अपने इस नश्वर शरीर के लिये भगवान से क्या प्रार्थना करना? इस शरीर से वह जितना काम कराना चाहता है, करायेगा। और जब देखेगा कि मेरा काम पूरा हो गया, तो वापस ले लेगा। स्वास्थ्य लाभ के लिये मैं प्रार्थना नहीं करूँगा।

मैं सोचता रह गया कि श्री गुरुजी के ये शब्द जहाँ लोगों को चौंकायेंगे, वहीं एक नयी दिशा का बोध भी कराते हैं कि प्रार्थना निजदेह के स्वार्थ के लिये नहीं होनी चाहिये।

(अट्ठाईस)

वाराणसी का महारुद्र-यज्ञ

२८ फरवरी १९७३ को श्री गुरुजी का वाराणसी आगमन हुआ। इस आगमन के पीछे एक विशेष हेतु था। जब जनवरी मास में श्री गुरुजी उत्तर प्रदेश के दौरे पर आये थे तो उनका स्वास्थ्य हम लोगों को बहुत क्षीण लगा। उधर श्री गुरुजी अपने स्वास्थ्य की जाँच करवाने के लिये बम्बई गये और इधर हम लोगों ने प्रयाग के भृगु-संहिता वाले पण्डित जी को श्री गुरुजी की जन्मपत्नी दिखलायी और उनके स्वास्थ्य के बारे में जिज्ञासा व्यक्त की। जन्मपत्नी देखकर उन ज्योतिषी पंडित जी ने बड़ी अशुभ बात बतलायी कि उनके छाछठवें वर्ष में अति अनिष्टकारी मृत्यु-योग है। इस अनिष्ट की शान्ति के लिये उन्होंने रुद्र-यज्ञ करवाने का सुझाव दिया। इसी सुझाव के अनुसार वाराणसी में मेरे घर पर महारुद्रयज्ञ का आयोजन हुआ।

हम लोग चाहते यह थे कि इस यज्ञ की सम्पन्नता केअवसर पर श्री गुरुजी उपस्थित रहें तथा वे स्वयं ही अपने हाथ से यज्ञ की पूर्णाहुति करें, परन्तु इस कार्य के लिये उनकी स्वीकृति के बारे में बड़ी आशंका थी। यह अच्छी तरह ज्ञात था कि इस प्रस्ताव को श्री गुरुजी कभी भी स्वीकार नहीं करेंगे। वे कभी नहीं चाहते कि मेरे निमित्त कुछ किया जाये। अन्त में हम लोगों ने पूज्य श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी महाराज के माध्यम से अनुरोध करना अधिक उचित समझा। सभी को ऐसा विश्वास था कि श्री गुरुजी अवश्य ही श्री ब्रह्मचारी जी के अनुरोध को स्वीकार कर लेंगे। हुआ भी ऐसा ही। श्री ब्रह्मचारी जी ने श्री गुरुजी को पत्र लिखकर यह अनुरोध किया कि वे २८ फरवरी को यज्ञ की सम्पन्नता के लिये वाराणसी पधारें। उनके अनुरोध को आदेशवत् मान करके बंगाल-आसाम के कार्यक्रम में व्यस्त रहते हुए भी श्री गुरुजी ने कुछ घण्टों का समय निकाला और वे २८ फरवरी को वाराणसी आये। श्री गुरुजी को यज्ञ का प्रयोजन नहीं बताया गया। बस, इतना ही कहा गया था कि यह आयोजन आपके हाथ से सम्पन्न होना है।

प्रतिपदा के शुभ दिन यह महारुद्र यज्ञ आरम्भ हुआ। वाराणसी के विख्यात वैदिक पण्डितों ने इस यज्ञ में उत्साह सहित भाग लिया और उनके ही सहयोग से यज्ञ के विविधकार्यक्रम विधि सहित सम्पन्न होते रहे। यह यज्ञ नौ दिन तक होता रहा और एकादशी २८ फरवरी ७३ के दिन इस यज्ञ की पूर्णाहुति होनी थी। इस वर्ष २८ फरवरी को ही श्री गुरुजी

का जन्मदिवस भी था। यज्ञ का आयोजन इस ढंग से किया गया था कि पूर्णाहुति जन्म दिवस पर हो। लाला श्री हंसराज जी, बैरिस्टर श्री नरेन्द्र-जीत सिंह जी, पं० श्री रामनारायण जी शास्त्री, श्री बालासाहब देवरस, श्री माधवराव मूले आदि आये ही थे, ज्वर से ग्रस्त होने के बाद भी प्रयाग से श्री ब्रह्मचारीजी आयें थे। वाराणसी के पं०श्री राजेश्वर शास्त्रीजी द्रविड़ विशेष रूप से निमन्त्रित थे।

श्री गुरुजी ने शुद्ध स्वच्छ धोती पहन रखी थी। उन्होंने अपने शरीर पर एक पीला दुपट्टा ओढ़ रखा था, जिस पर 'नमः शिवाय','नमः शिवाय' छपा हुआ था। भूतभावन भगवान रुद्र की नगरी वाराणसी में जो महारुद्र यज्ञ हो रहा था, उस यज्ञ के होता के शरीर पर भगवान रुद्र के मन्त्र से अंकित उत्तरीय का होना उचित ही है। यज्ञ-मण्डप में वेदों के विद्वान विप्रगण श्रुति-मन्त्रों से यज्ञाग्नि का स्तुतिगान करने लगे और तदनन्तर प्रारम्भ हुआ हवन की पूर्णा-हुति का शुभ उपक्रम। वेद मन्त्रों से समर्पित अग्निदेव मानो साक्षात् प्रकट होकर आहुति स्वीकार करते हुए यज्ञ-मण्डप को आलोकित कर रहे थे। एक परम-आस्तिक परम-श्रद्धालु भक्त की भाँति श्री गुरुजी पूजन-हवन-आदि करते जा रहे थे। यज्ञाग्नि के पवित्र आलोक से श्री गुरुजी का मुख-मण्डल तेजोमय हो उठा था। रुग्णता के कारण उनके शरीर को पर्याप्त अशक्तता की अनु-भूति हो रही थी, इसके बाद भी उनके हाथ निष्कम्प-स्थिर-भाव से दीर्घ अवधि तक आहुति प्रदान करते रहे। यह सम्पूर्ण आयोजन लगभग डेढ़-दो घण्टे तक चला होगा, किन्तु अशक्तता के बाद भी उनके शरीर के किसी भी भाग पर थकावट का कोई चिह्न रंच मात्र भी उभर नहीं पाया। इस समय श्री गुरुजी के मुखपर गाम्भीर्य भी कम नहीं था। महारुद्र यज्ञ की पूर्णाहुति का यह विशद कार्यक्रम श्री गुरुजी के द्वारा शास्त्र सम्मत विधि से भली प्रकार सम्पन्न हुआ और इस सम्पन्नता को देखकर सभी के मन में सात्त्विक आह्लाद हिलोरें ले रहा था। अन्त में श्री ब्रह्मचारी जी पं० श्री राजेश्वर-शास्त्री जी के चरणों में नत-मस्तक होकर श्री गुरुजी ने वन्दन किया।

भोजनोपरान्त श्री गुरुजी डा० पी० के० बनर्जी के घर पर गये। वहाँ वे बिस्तर पर लेट रहे। लोग मिलने के लिये आने लगे तो श्री गुरुजी उठकर बैठ गये और आने वाले लोगों से श्री गुरुजी कुशल-क्षेम पूछने लगे। इस बात चीत के मध्य उन्होंने एक बार भी, भूलकर भी उस महारुद्र यज्ञ के बारे में नहीं पूछा, जो कुछ देर पहले विशद रूप में सम्पन्न हुआ था। रात्रि में श्री गुरुजी प्रस्थान करने वाले थे। प्रस्थान के कुछ पूर्व श्री माधवराव मूले उनसे

मिलने के लिये गये । श्री गुरुजी ने उनसे यज्ञ के विषय में पूछा । इसके पहले अब तक किसी से भी यज्ञ के बारे में चर्चा हुई ही नहीं थी । श्री माधवराव मूले ने सहमते हुए यज्ञ का हेतु बतलाया । श्री गुरुजी शान्त भाव से सुनते रहे । श्री माधवराव मूले के कथन के बाद श्री गुरुजी प्रवास के लिये उठ खड़े हुए मानो वे स्पष्ट रूप से कह रहे हों कि इतने विशद रूप में इतनी विधिसहित और इतनी श्रद्धापूर्वक जो यज्ञ आज हुआ है, उस यज्ञ के फल के भोक्ता वे नहीं हैं ।

लोग कहते हैं कि 'स्वास्थ्य क्षीण हो रहा है, अतः विश्राम करें, पर जिन्होंने विश्राम को ही विश्राम दे दिया हो, ऐसे श्री गुरुजी एक पूर्ण अनासक्त योगी की भाँति चल दिये । वे चल दिये एक ऐसे यात्री की भाँति, जिसे-पल-प्रति-पल चिन्ता रहती हो अपना मार्ग तय करके लक्ष्यपर पहुँचने की ।

●

(उन्तीस)

मृत्यु-चिन्ता-जयी

जालन्धर नगर से बाहर दयानन्द कालेज के छात्रावास में गर्मियों की छुट्टियों में प्रशिक्षण शिविर लगा हुआ था । एक दिन कुएँ के पास ठण्डी जगह पर कुर्सियाँ बिछायी गयीं । श्री गुरुजी, जालन्धर-संघचालक और डा० आबाजी थट्टे बैठे हुए थे । न मालूम कैसे, पूर्वाभास की बातें चल पड़ी । श्री गुरुजी ने बताया—एक दिन नागपुर के पास ही रामटेक में मुझे जाना था । मेरी माता जी ने मुझसे कहा कि मधू, तुम जा रहे हो । जरा, अमुक सज्जन को भी देख आना । वे बीमार पड़े हैं । मैंने रामटेक में उन सज्जन को देखा तो पास बैठे हुए डाक्टर बिल्कुल निश्चिन्त थे । परन्तु मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि यह तो आज-ही-आज हैं । फलस्वरूप नागपुर में उस रोज शाम को लौटने पर मैंने माँ से कहा कि वह तो कल का सूर्य नहीं देखेगा । (बाद में ऐसा ही हुआ ।) यह सुनकर माँ ने मुझको झिड़की दी कि क्या कभी ऐसी बात मुंह से निकाला करते हैं ? यह कहना भी हो तो इसके कितने ही दूसरे ढंग हो सकते हैं । माँ की यह बात सुनकर मैं चुप हो गया ।

मैंने अपने मन में संकल्प कर लिया कि आगे से किसी के भविष्य के विषय में कुछ न कहूँगा।

मैंने प्रश्न किया—क्या ऐसा योगी अपने भविष्य के विषय में भी जान सकता है?

श्री गुरुजी हँसकर बोले—मैं योगी नहीं हूँ। लेकिन इतना कह सकता हूं कि जिसने अपना जीवन परमात्मा के हाथ में सौंप रखा है, उसे मृत्यु की चिन्ता नहीं हुआ करती।

बम्बई में श्री गुरुजी का कैंसर के लिये आपरेशन हुआ। कई दिन तक वे अस्पताल में रहे। उन्ही दिनों वहीं राष्ट्रीय-स्वयंसेवक-संघ की अखिल भारतीय बैठक बुलायी गयी, जिससे विभिन्न प्रान्तों के संघचालकों तथा प्रमुख प्रचारकों को भी श्री गुरुजी के स्वास्थ्य के विषय में पता चल जाये और किसी को चिन्ता न रहे। श्री गुरुजी एक बैठक में भी आये, भले थोड़ी देर के लिये ही। दोपहर का भोजन उन्होंने अन्य अधिकारियों के साथ ही किया। शाम को उन्होंने सबके साथ ध्वज-प्रणाम किया और प्रार्थना में सम्मिलित हुए।

इसके पश्चात् वे एक मन्दिर में गये। वहाँ भगवान के श्री विग्रह के समक्ष नारियल, केले मिष्ठान्न तथा कुछ रुपये चढ़ाये गये। ऐसा प्रतीत होता था कि श्री गुरुजी की ओर से परमात्मा के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने के लिये ऐसा आयोजन किया गया था। उस समय मन्दिर के पुजारी जी से प्रसाद लेने के पूर्व श्री गुरुजी ने भगवान के सम्मुख खड़े होकर अपने हाथ जोड़े और प्रार्थना की। प्रार्थना के शब्द सुनायी नहीं दिये, किन्तु उनके मुख की रेखाओं से उनकी आन्तरिक भावनाएँ प्रकट हो रही थीं। परमात्मा को धन्यवाद उन्होंने उस रूप में भी किया, जिसको जन-साधारण अपनाते हैं।

आपरेशन के पश्चात जब श्री गुरुजी पहली बार दिल्ली आये, तब बहुत-सी संस्थाओं ने मिलकर उन्हें बधाई दी और परमात्मा के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त की। इस अवसर पर जो कार्यक्रम हुआ, उसके अध्यक्ष थे पंजाब विश्वविद्यालय के भूतपूर्व उप कुलपति दीवान आनन्द कुमार। अध्यक्ष महोदय ने श्री गुरुजी की सौ वर्ष की आयु के लिये परमात्मा से प्रार्थना की। इसके उत्तर में श्री गुरुजी ने स्पष्ट शब्दों में कहा—मुझे मृत्यु कभी डरा नहीं सकती, क्योंकि मैं जानता हूँ कि यह एक-न-एक दिन आने वाली है। फिर भी मैं यह जानता हूँ कि प्रकृति अपने नियमों का पालन करती है। ऐसी अवस्था में हमें अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिये। जो कर्तव्य जिसके

जिम्मे है, यदि वह उसे प्राणप्रण से निभाता है तो यह उसके लिये पर्याप्त है इससे अधिक की उसे आशा ही क्यों हो ? इसके अतिरिक्त मैं तो यह भी जानता हूँ कि मैं संघ में कोई विशेष कार्य नहीं करता। ऊँट की नकेल चूहे के हाथ में दे दी गयी है। अब क्या चूहा इस बात का गर्व कर सकता है कि मैं ऊँट को चला रहा हूँ।

कर्तव्य-परायण श्री गुरुजी ने सचमुच मृत्यु को चुनौती दे रखी थी। दिल्ली के एक कालेज में प्रशिक्षण शिविर लगा हुआ था। श्री गुरुजी वहाँ भी पहुंचे। बौद्धिक-वर्ग में उनका भाषण होना ही था। इसका उन्होंने वेद के इस मन्त्र से आरम्भ किया—

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमा दित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय। यजुर्वेद /३१/१८

(ऋषि ने कहा—मैं उस महान पुरुष परमात्मा को जानता हूँ। वे अविद्या रूप अन्धकार से सर्वथा परे हैं तथा सूर्य के समान स्वयं प्रकाश हैं। उनको जानकर ही मनुष्य मृत्यु का उल्लंघन करने में समर्थ होता है। मृत्यु के बन्धन से छुटकारा पाने के लिये इसके अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग नहीं है।)

मुझे पता नहीं कि श्रोताओं में से कितनों ने उस रोज श्री गुरुजी के मुख से उच्चरित इस मन्त्र के मर्म भरे अर्थ को समझा होगा। कम-से-कम मेरे मन में यह बात बैठ गयी कि श्री गुरुजी मृत्यु को चुनौती दे रहे हैं। दूसरे शब्दों में, उन्होंने यह बतलाया कि मैं पहले ही मृत्यु से पार हो चुका हूं अब मेरे लिये इस मृत्यु से डरने की कोई बात नहीं है।

●

(तीस)

गीत-रामायण का प्रसंग

सात अप्रैल की शाम को श्री सुधीर फड़के श्री गुरुजी का दर्शन करने के लिये आये। वे एक विख्यात पार्श्व गायक एवं गीत-रामायण के ख्याति-लब्ध संगीत-निर्देशक हैं। राष्ट्रीय-स्वयंसेवक-संघ की महाराष्ट्र शाखा ने अकाल-ग्रस्त लोगों की सहायता करने के उद्देश्य से गीत-रामायण-संगीत-समारोह को

चिटनीस पार्क में आयोजित किया था, इसी समारोह का संचालन करने के लिये वे नागपुर आये थे।

कार्यक्रम से पूर्व श्री सुधीर फड़के ने गीत-रामायण के पाँच या छः गीत श्री गुरुजी के कमरे में अपने सम्मोहक स्वर में सुनाये। एक गीत में भरत के भावों को इस प्रकार से चित्रित किया गया था कि भरत जिसने अपने माता पिता को छोड़ दिया, अपना राज्य छोड़ दिया और जो अन्तरंग थे निकट थे, उनको भी छोड़ दिया, सबको छोड़-छाड़कर राम के पास गये और उनसे अयोध्या लौट चलने का आग्रह अश्रुपूरित नयन होकर करते रहे। इन हृदय-स्पर्शी मनोभावों के कर्णप्रिय गीत को सुनकर श्री गुरुजी की आँखों में आँसू भर आये। हम पाँच-छः लोग चुपचाप उनकी ओर देखते रहे। फिर उन्होंने अपनी ऐनक हटाकर आँखें पोंछी और अति स्नेहमयी वाणी में श्री सुधीर फड़के से कहा—कितनी उपयुक्त राग इस गीत के लिये तुमने चुना है और कितने भाव-विभोर होकर इसे तुम गाते हो ?

जब वहाँ बैठा-बैठा मैं यह सब देख रहा था, एक विचित्र विचार मेरे मन में आया। श्री गुरुजी, जो विगत तीन दशकों से देश भर में करोड़ों लोगों को सान्त्वना और सहायता देते रहे हैं, आज स्वयं कैंसर से जकड़ लिए गये हैं। कैंसर के बावजूद भी आने वालों में आनन्द और स्नेह का प्रसार वे कर रहे हैं। वे दूसरों के दुःखों के लिये रोने भी लगते थे। कैसे महान् व्यक्ति हैं वे ? ऐसे व्यक्ति को भी ईश्वर ने इतना भयंकर रोग दे दिया ? विचित्र भावों से मेरा दिल भर आया। मेरी आँखों से आँसू बहने लगे, इसलिये मैंने अपना सिर नीचे झुका लिया, ताकि श्री गुरुजी मेरी स्थिति को देख न सकें। मुझे सन्देह है कि इसे टालने का प्रयास करते हुए भी श्री गुरुजी की पैनी दृष्टि से मैं बच नहीं पाया होऊँगा।

●

(इकतीस)

मन पर काबू

मैं अपना परम सौभाग्य समझता हूं कि मुझे परमपूजनीय डॉ० हेडगेवार और परमपूजनीय श्री गुरुजी, दोनों महापुरुषों का निकट सहवास और असीम

स्नेह प्राप्त हुआ। डाक्टर साहब को तो मैंने अपनी किशोरावस्था में ही देखा था परन्तु श्री गुरुजी के दर्शन का सौभाग्य तब प्राप्त हुआ, जब मैं डाक्टरजी के साथ काशी गया था। उस समय देखी हुई उनकी इकहरी, फुर्तीली, तेजस्वी मूर्ति आज भी मेरी आँखों के सम्मुख है।

श्री गुरुजी के गुणों का परिचय क्रमशः अधिकाधिक मिलता चला गया। सन् १६३६ के फरवरी मास में वर्धा जिला के सिन्दी नामक स्थान पर श्री नाना साहब टालाटुले के घर एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बैठक आठ-दस दिनों तक हुई। इस बैठक की अवधि में श्री गुरुजी के गुणों को अत्यन्त पास से देखने का अवसर मिला। एक दिन बैठक में एक बात पर मेरी और श्री गुरुजी की जोरदार बहस हुई। दोनों में से कोई भी अपने मत का आग्रह छोड़ने के लिये तैयार नहीं था। अन्त में डाक्टर जी से निर्णय करने के लिये कहा गया और उन्होंने मेरे पक्ष में निर्णय दिया। निर्णय श्री गुरुजी के मत के विरुद्ध दिया गया था, पर इस बात का तनिक भी दुःख श्री गुरुजी के मन में न उभरा और न मुख पर दिखलायी दिया। इतना ही नहीं, पहले के समान ही उन्होंने हँसते-खेलते अगले कार्यक्रमों में सहर्ष भाग लिया। राजनैतिक क्षेत्र में कार्य करने वाले व्यक्तियों की मनोवृत्ति का मुझे परिज्ञान था, अतः मन पर काबू पाने के उनके असाधारण और अनपेक्षित उदाहरण से मैं बहुत ही प्रभावित हुआ।

उसके बाद जब मैं और डाक्टर हेडगेवार, दोनों ही घूमने गये थे तब डाक्टरजी ने अचानक मुझसे कहा—अप्पाजी! भावी सरसंघचालक के रूप में माधवरावजी के बारे में आपकी क्या राय है?

यह सुनते ही मैंने तुरन्त कहा—वाह! बहुत ही सुन्दर चुनाव है। जिसने अपना मन जीत लिया है, वह दुनिया भी जीत सकता है।

आगे फिर समय ने सिद्ध कर दिखाया कि डाक्टरजी का यह चुनाव सब दृष्टि से कितना उचित था।

: ४ :

लक्ष्य से तादात्म्यता

(एक)

मैं नहीं, तू ही

सबके प्रति आत्मीयता ही उनकी महानता और उनके प्रति व्यापक श्रद्धा का कारण है। उनकी महानता इसमें है कि वे इस आत्मीयता को लेकर चल सके हैं। एक बार 'धर्मयुग' साप्ताहिक ने भारत के अनेक महापुरुषों के जीवन के ध्येय-वाक्य छापे थे। उन छपे ध्येय-वाक्यों में श्री गुरुजी का ध्येय वाक्य सबसे छोटा किन्तु बोधप्रद था। 'मैं नहीं, तू ही'।

इन चार शब्दों में श्री गुरुजी का सम्पूर्ण जीवन समाया हुआ है। यह 'तू' कौन है? संघ, समाज, ईश्वर, वे इन तीनों को एक रूप करके चलते थे। तीनों की सेवा में विरोध नहीं, विसंगति नहीं। 'एकहि साधे सब सधे' के अनुसार वे संघ की साधना करके सबकी साधना में लगे रहे हैं और उनका जीवन ही साधना बन गया है।

●

(दो)

देशात्म-बोध

सन् १९६२ ई० में चीन ने आसाम के पास उत्तर दिशा से भारत पर आक्रमण किया। भारत की नेहरु-सरकार चीनी आक्रमण की सम्भावना पर विश्वास नहीं कर पाती थी। चीनी द्वारा 'हिन्दी-चीनी भाई-भाई' का जो नारा लगाया जा रहा था, उसी की भाव-लहरियों के साथ बही जाती हुई नेहरु-सरकार शेख चिल्ली के से सुख-स्वप्न में आशिख निमग्न थी। भाई-भाई का नारा लगाने वाला कम्युनिस्ट चीन भीतर-ही-भीतर आक्रमण की योजना बना रहा है और भारत पर आक्रमण करने वाला है, इस प्रकार की पूर्व-जानकारी अपने सार्वजनिक भाषण में जब श्री गुरुजी ने दी तो उस पर किसी ने कुछ भी ध्यान नहीं दिया। ये सब बातें तो संकीर्ण मस्तिष्क की उपज है, ऐसा कह कर श्री गुरुजी की बात हवा में उड़ा दी गयी। इतना ही नहीं, कुछ विरोधियों ने मखौल उड़ाते हुए कहा कि गुरुजी पागल हो गये हैं। पर किसी सही बात को गलत कह देने से अथवा किसी वास्तविकता-दर्शी को पागल बता देने से विपत्ति का निवारण तो होता नहीं। चीन का आक्रमण होते ही नग्न सत्य सामने आ गया। इस आक्रमण से भारत को बहुत हानि उठानी पड़ी, क्योंकि न तो भारतीय सरकार सावधान थी और न भारतीय सेना सन्नद्ध थी।

भारत सरकार के एक अधिकारी श्री गुरुजी से अनौपचारिक रूप से मिले। उन्होंने श्री गुरुजी से पूछा—आपको कैसे पता चल गया कि चीनी आक्रमण की सम्भावना है?

श्री गुरुजी जोर से हँसे तथा बोले—आप तो विचित्र प्रश्न कर रहे हैं?

अधिकारी महोदय—क्यों?

श्री गुरुजी—भारतीय सरकार के पास एक उत्तम गुप्तचर व्यवस्था है तथा विदेश में दूतावासों का सुन्दर विस्तार है, जिससे कि सरकार को भारत के भीतर-बाहर की सभी ही प्रकार की जानकारी भली प्रकार से मिलती रहे, किन्तु न मेरे पास गुप्तचर हैं और न मेरे पास राजदूत हैं, ऐसी स्थिति में मुझे जानकारी कैसे मिल सकती है भला?

अधिकारी महोदय—यही तो आश्चर्य की बात है कि गुप्तचर विभाग और विदेशी दूतावासों की उत्तम व्यवस्था के होते हुए भी भारतीय सरकार को

जानकारी नहीं हो पायी और आपके पास सूचना-संग्रह का तन्त्र न होते हुए भी पर्याप्त सही जानकारी थी !

अधिकारी महोदय को बातों में अधिक न उलझाते हुए श्री गुरुजी ने सहज और सरल रूप से समझाया—अरे भाई ! आप यह नहीं कह सकते कि अपने नेताओं को सर्वथा जानकारी थी ही नहीं। कुछ तो जानकारी उन्हें थी कि चीन छेड़छाड़ कर रहा है। फिर भी राजनैतिक सत्ता के मोह में जानबूझ कर वे अनजान बने रहे। जो थोड़ी-बहुत सही जानकारी थी, उसके आधार पर न तो उन्होंने सुरक्षा की कोई तैयारी की और न तो उन्होंने इसके बारे में देश की जनता को कुछ बतलाया। यह तो बात हुई थोड़ी बहुत जानकारी के बारे में, जो सरकारी सूचना-तन्त्र के द्वारा उन्हें प्राप्त होती है, पर आफिस की चार दीवालों के भीतर बैठे रहने से क्या बातों की सही-सही और पूरी-पूरी जानकारी हो सकती है ? हमारे नेता गण कब बाहर निकलकर जन-जन से निकट और घनिष्ट सम्पर्क स्थापित करने का प्रयास करते हैं? संघ के कार्यकर्ता गण मेरा कार्यक्रम कुछ इस ढंग से बनाते हैं कि सारे भारत का भ्रमण मेरे द्वारा वर्ष भर में कम- से-कम दो बार हो ही जाया करता है। इस भ्रमण-काल में ही लोगों से मिलते रहने के कारण बहुत-सी जानकारियाँ अनायास ही मिल जाया करती हैं।

श्री गुरुजी ने यह जो हेतु बतलाया, वह स्थूल स्तर का था, किन्तु इस स्थूल हेतु से अलग एक और हेतु था सूक्ष्म स्तर का, जिसे जानते थे केवल निकटवर्ती लोग ही। समाज में सबको स्नेह के एक सूत्र में पिरोने के लिये श्री गुरुजी को सतत भ्रमण करना पड़ता था। सरसंघचालक के नाते ३३वर्षों में उन्होंने अनेक बार भारत की परिक्रमा की थी। साधनों की, सुविधाओं की, वाहनों की कमी होते हुए भी ऐसी परिक्रमा करने वाले सम्भवतः वे अकेले ही राष्ट्र नेता थे। इस सतत संचरण के फलस्वरूप देश के कोने-कोने की समस्याओं से तथा वहाँ की स्थिति से वे भली-भाँति परिचित रहते थे। परिस्थिति का यह सम्यक् ज्ञान तथा उसका उचित मूल्यांकन श्री गुरुजी की एक अनमोल पूंजी बन जाती थी, जिसके आधार पर वे समय-समय पर समस्त देशवासियों तथा सरकार को संकटों के सम्बन्ध में सजग तथा सतर्क करते रहते थे। स्थूल रूप से इस प्रत्यक्ष हेतु के अतिरिक्त एक सूक्ष्म प्रकार का परोक्ष हेतु यह था कि वे देशात्म-बोध की भावना के मूर्तिमान स्वरूप थे। उनमें देश के प्रति आत्म-बोध की भावना इतनी प्रबल थी कि देश के किसी भी कोने में कुछ भी छोटी अथवा बड़ी घटना घटित हो जाये तो उसकी ठेस

उन्हें पहुंचती थी और उनके शरीर पर उस घटना का प्रभाव प्रतिबिम्बित हो उठता था। भारत-भूमि को वे जमीन-पहाड़-नदी-ज़ंगल-पशु-आदि का एक जमघट मात्र नहीं मानते थे, अपितु इस भूमि के प्रति मातृ-भावना उनके जीवन में पूर्ण रूप से बद्ध मूल थी। 'यह मेरी माता है, हम इसकी सन्तान है, यह हमारा पोषण करती है, इसका हमारा सम्बन्ध अभेद्य-अछिन्द्य हैं' इस प्रकार के माता-पुत्र-भाव की गहन अनुभूति से उनका अन्तर निरन्तर भावित रहता था। श्री गुरुजी कहा करते थे कि देश के सुख-दुःख को अनुभव करने की शक्ति राजनैतिक चातुर्य से नहीं, अपितु राष्ट्र के प्रति संवेदन शील एवं शुद्ध अन्तःकरण की भाव-प्रबलता से आती है। इस प्रबल भाव के न होने के कारण ही तो अपने कुछ लोगों ने ही भारत का बँटवारा करवा लिया। यदि मातृ-भूमि के कण-कण के प्रति हमारी आत्मीयता होती तो क्या इस बँटवारे की और भारत-भूमि के खण्ड-खण्ड हो जाने की स्थिति उत्पन्न होती ?

श्री गुरुजी का मानस देश के प्रति अत्यधिक संवेदनशील था। उनका सम्पूर्ण जीवन राष्ट्र के साथ एक रूप हो गया था। उनके हृदय का स्पन्दन भी देश में उठने वाली छोटी-छोटी अथवा बड़ी-बड़ी लहरों से सम्बद्ध था। भारत माता के सुख-दुःख और भारत-वासी हिन्दू-समाज के सुख-दुःख के साथ श्री गुरुजी अत्यधिक समरस हो गये थे। देश के किसी कोने में क्षति पहुंचने पर श्री गुरुजी के अन्तःकरण को आघात पहुंचता था। भौतिक साधनों से जितनी सूचनाएँ मिल सकती थीं, उन सबसे अलग ये आघात भी उस क्षति की सूचना दे दिया करते थे। राष्ट्र-जीवन के साथ यह जो तल्लीनता उनके जीवन के अंग-प्रत्यंगों में ओत-प्रोत थी, उसी के फलस्वरूप उन्हें 'भविष्यवाणी' करने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा। क्या सचमुच इतना तादात्म्य राष्ट्र-जीवन के साथ सम्भव है ? इस सम्भावना की चरितार्थता सिद्ध करता है श्री गुरुजी का जीवन।

मातृ-भूमि भारत के साथ पूर्ण तादात्म्य हो जाने का एक और प्रसंग है। श्री गुरुजी के दोनों हाथों में दर्द रहा करता था। इस दर्द के कारण वे अपने दोनों हाथों को पूरा नहीं उठा पाते थे। अनेक प्रकार की चिकित्सा के उपरान्त भी यह दर्द मिट नहीं सका। अपने सहयोगियों का मन रखने के लिये श्री गुरुजी ने सब प्रकार की चिकित्सा करवा ली, पर वे यह जानते थे कि यह दर्द मिटने वाला नहीं है। वे कई बार कहा करते थे कि यह दर्द मेरे जीवन का साथी है। उनके दाहिने हाथ में और बायें हाथ में यह दर्द

आरम्भ हुआ था सन् १९४७ ई० में, जब भारत का विभाजन हुआ था और उस विभाजन के फलस्वरूप भारत के दाहिने और बायें अंग काट-काट कर अलग कर दिये गये थे।

(तीन)

कार्य के लिये शरीर

सन् १९४९ के दिन थे। संघ से प्रतिबन्ध हटने के पश्चात् देश भर में आयोजित विराट स्वागत-कार्यक्रमों को सम्पन्न करके श्री गुरुजी कुछ दिनों के लिये काशी रहे थे। हमें बताया गया कि इन दिनों वे श्रमाधिक्य से अत्यधिक श्रमित-थकित हैं। यदि कुछ दिन यहाँ काशी में उनका विश्राम हो सके तो अच्छा रहे। मै काशी में प्रचारक के नाते संघ-कार्य देखता था। श्री दत्त-राजजी कालिया के यहाँ सदा की तरह उनके ठहरने की व्यवस्था हुई, किन्तु यह ध्यान रखा गया कि किसी प्रकार के कार्यक्रम से उनके विश्राम में कोई बाधा न पड़े।

आते ही श्री गुरुजी ने पूछा—इन दिनों के कार्यक्रम क्या हैं ?

हम सबने एक स्वर से उत्तर दिया—इस बार आपको पूर्ण विश्राम करना है और इसलिये कोई कार्यक्रम नहीं रखा गया।

सुनते ही वे गम्भीर हो गये और उन्होंने हमें समझाने का प्रयास किया, विश्राम की यह कल्पना ठीक नहीं है। कार्यक्रम अवश्य होने चाहिये।

हम लोगों ने उनकी बात नहीं मानी। हमारे नगर कार्यवाह डा० बनर्जी बोले—इस समय आप हमारे चार्ज में है। हमने कोई कार्यक्रम न रखकर आपके पूर्ण विश्राम की योजना बनायी है।

फिर वे कुछ नहीं बोले। रात होते-होते उन्हें खाँसी का जोर पकड़ने लगा। दूसरे दिन प्रात: आकर हम लोगों ने देखा कि खाँसी से श्री गुरुजी का बुरा हाल है। तकलीफ के कारण रात खाँसते ही बितायी। आंखें और चेहरा लाल था, स्वास्थ्य तेजी से गिर रहा था। हम सब बहुत चिन्तित हो गये। कार्यवाह डा० बनर्जी ने पूछा—गुरुजी ! यह क्या बात है ? सोचा था विश्राम से आपको लाभ होगा किन्तु आपकी स्थिति देखकर बहुत चिन्ता हो रही है।

वे बोले—मैं क्या कहूं ? जो आप सबने सोचा है उसी का यह परिणाम हो रहा है।

इस पर हम सबकी आँखों में आँसू आ गये। डा० बनर्जी का गला रूँध गया और श्री गुरुजी से बोले—हमने तो आपके स्वास्थ्य के हित में ही सारा विचार करके विश्राम का आयोजन किया था और फिर उसका ऐसा उलटा परिणाम कैसे ? आपके स्वास्थ्य में यह गिरावट देखकर हम सभी बन्धु बहुत व्याकुल हैं। बताइये, हम क्या करें ?

श्री गुरुजी ने बताया—देखो, डाक्टर ! तुम सोचते हो कि 'पूर्ण विश्राम' से यह शरीर अच्छा हो जायेगा। ऐसी बात नहीं है। सच पूछो तो इस शरीर में ऐसा कुछ ज्यादा नहीं बचा है कि जिसके द्वारा यह चल सके। डाक्टरों के हिसाब से यह शरीर कभी का समाप्त हो चुका है। जब यह कार्य से अलग हुआ तो यह शरीर अपनी स्वभाविक अवस्था की ओर जा रहा है। सच्चाई तो यह है कि मै दिन-रात संघ-कार्य में लगा रहता हूं इसी के कारण यह शरीर सधा हुआ है और चल रहा है। यदि तुम चाहते हो कि यह शरीर स्वस्थ रहे तो पूर्ण-विश्राम के बजाय यथाविधि कार्यक्रम चलने दो।

तुरन्त ही हम लोगों ने वैसा ही किया। देखते-ही-देखते फिर से वार्तालाप और कार्यक्रमों के बीच श्री गुरुजी की वही हँसी, वही ठहाका आरम्भ हो गया और दो-तीन दिन में ही पहले जैसा उनका स्वास्थ्य हो गया।

इसकी कल्पना भी नहीं थी कि 'जीवन और जीवन-कार्य' इतने एक रूप हो सकते हैं। अपनी आँखो के सामने यह एक जीता-जागता उदाहरण था। तब हम लोगों को समझ में आया कि इस महापुरुष ने तन से एवं मन से अपने आपको कार्य से एकाकार कर लिया है और शरीर से जीवन-कार्य नहीं चल रहा है, अपितु जीवन-कार्य ही शरीर को चला रहा है।

●

(चार)

ध्येय के साथ तादात्म्य

हम लोग समाचार पत्र पढ़ रहे थे। आदि से अन्त तक करीब-करीब सभी पढ़ डाला। इतने में श्री गुरुजी ने कमरे में प्रवेश किया और सहज

भाव से समाचार पत्र उठाकर इधर-उधर निगाह डाली। सुर्खियाँ देखीं, पन्ने उलटे और समाचार पत्र रख दिया। बातचीत शुरू हो गयी। बातचीत के दौरान में संघ सम्बन्धी समाचार का जिक्र आ गया, जो उसी समाचार पत्र में छपा था। मैंने पूछा—परन्तु पत्र में वह समाचार है कहाँ ?

श्री गुरुजी ने कहा—इसी अखबार में तो हैं।

मैंने पूरा अखबार पढ़ा था। मुझे वह समाचार कहीं नहीं दिखा। अखबार लेकर फिर पन्ने उलटे, पर वहाँ संघ का कहीं भी नाम नहीं मिला। श्री गुरुजी ने मेरी हैरानी देखकर अखबार हाथ में लिया और बताया—यह है वह समाचार। बाजार-भावों के पन्ने पर एक ओर वह छोटा-सा समाचार छपा था। मैं मन-ही-मन सोचने लगा—'कहाँ छाप दिया है ? हम लोग क्या व्यापारी हैं, जो इस पन्ने पर निगाह जाती ?' दूसरे ही क्षण विचार आया—'श्री गुरुजी भी तो व्यापारी नहीं। वे तो कोसों दूर हैं मोल-तोल और भावताव से। फिर उनकी निगाह कैसे गयी ? और फिर अखबार भी मेरी तरह पूरा नहीं पढ़ा। सुर्खियाँ ही इतनी थी कि जितनी देर वह पत्र उनके हाथ में रहा, पूरी नहीं पढ़ी जा सकती थी।'
मैंने अपनी शंका रखी भी नहीं, पर शायद वे समझ गये। उन्होंने इतना ही कहा—भीड़ में भी माँ को अपना बच्चा दीख जाता है और कोलाहल में भी अपने आत्मीय जनों के शब्द साफ समझ में आते हैं।

मेरी समझ में आ गया। ध्येय के साथ उनका यह तादात्म्य है जिसके कारण वे उस समाचार को देख सके। और देशों के ऐसे कितने ही समाचार उनकी निगाह में आ जाते हैं। हम लोग नेताओं के वक्तव्य पढ़ते-पढ़ते ही समाचार पत्रों को पी जाने की कोशिश तो करते हैं किन्तु अनेक महत्वपूर्ण समाचारों को छोड़ जाते हैं। श्री गुरुजी अवसर कहा करते थे कि 'मैं तो समाचार पत्र नहीं पढ़ता।' पर मैं कहूंगा कि वे (श्री गुरुजी) ही समाचार पत्र पढ़ते हैं और हम लोग तो उन्हें देखते हैं और बहुत देर तक देखते रहते हैं।

(पाँच)

जेल में रहकर देश-भर का प्रवास

संघ पर प्रतिबंध लगने पर श्री गुरुजी को भी बंद कर दिया गया। वे काफी समय तक जेल में रहे, किन्तु जेल-जीवन भी उनको संघ-कार्य से वंचित नहीं कर पाया। जेल से छूटने के बाद कुछ लोगों ने उनसे पूछा—जेल में आपका समय कैसे कटता था ? बड़ा कष्ट होता रहा होगा ?

श्री गुरुजी मुस्कुराकर बोले—कोई कष्ट नहीं। मैंने अपना काम बन्द नहीं किया। मेरे प्रवास का कार्य और शाखाओं की देख-रेख का काम बराबर चलता रहा। एक-एक प्रान्त, उसके एक-एक जिले, वहाँ की एक-एक शाखा का स्मरण करता था। फिर शाखाओं के एक-एक स्वयं सेवक का विचार करता और उनके चेहरे अपने मानसिक आँखों के सामने लाता। इस तरह पूरे भारत वर्ष का प्रवास और सारी शाखाओं की देख-रेख मैंने कर डाली।

: ५ :

शरीर पर नियंत्रण

(एक)

दांतों की चिकित्सा

सन् ४३ या ४४ के आस-पास की बात है। श्री गुरुजी के दाहिने हाथ में अत्यन्त कष्ट दायी पीड़ा होने लगी। एलोपैथ डाक्टरों ने सलाह दी कि दर्द का कारण दाँत है, अतः उन्हें उखड़वा देना चाहिये। होमयोपैथ्स ने कहा कि दाँत उखड़वाने की आवश्यकता नहीं। इसी झंझट में दो वर्ष व्यतीत हो गये और श्री गुरुजी को उसी प्रकार कष्ट सहते रहना पड़ा।

इधर कुछ दिन पश्चात उनके दांत में भी पीड़ा होने लगी। अन्त में दाँत निकलवा देना ही उचित समझा गया। इसके लिये वे काशी गये। पीड़ा एक दाँत में थी, किन्तु डाक्टरों ने समस्त दांत निकालने का निश्चय किया। डाक्टरों ने इन्जंक्शन लगाकर मशूड़ों को सुन्न करने का प्रस्ताव रखा किन्तु श्री गुरुजी ने कहा—सुन्न करने के लिये इन्जंक्शन लगाने की जरूरत नहीं।

उन्होंने बिना इन्जंक्शन लगवाये ही समस्त दांत उखड़वाये कल्पना कीजिये, कितनी वेदना हुई होगी। परन्तु उनके मुख पर किंचित भी विषाद की रेखा दिखायी नहीं पड़ी। इतना ही नहीं, जबलपुर के समीप गाड़खारा शिविर में भी वे पधारे और सबकी आशा के विपरीत दो घन्टे तक लगातार भाषण दिया।

श्री गुरुजी का उद्याम मनोबल समय-समय पर प्रकट होकर लोगों को आश्चर्य में डाल दिया करता था।

(दो)

शरीर पर अधिकार

श्री गुरुजी का अपने शरीर पर विलक्षण अधिकार था। वे उससे कितना भी कार्य ले सकते थे। संघ शिक्षा वर्ग में एक बार दोपहर के बौद्धिक वर्ग के लिये आते समय उन्होंने कहा—चलो तुम्हारा चिकित्सा-विभाग देखा जाये।

मैंने प्रसन्नता से कहा—चलिये। अस्वस्थ स्वयंसेवकों को भी आपका दर्शन मिल जायेगा।

वहां सभी को देखकर उन्होंने डाक्टर से थर्मामीटर देखने के लिये माँगा और स्वयं को लगाया। मैं उसे कौतुक समझकर देखने लगा, पर अरे यह क्या ? गुरुजी को तो १०२ डिग्री का ज्वर निकला। मैं सोचने लगा कि अब क्या होगा। मेरे चेहरे पर चिन्ता की छाया देखकर वे बोले—अरे ! चिन्ता कैसी ? बौद्धिक वर्ग होगा। बौद्धिक से ज्वर का क्या मतलब ?

इतना कहकर श्री गुरुजी सीधे मण्डप में चले गये। एक बार भी माथे पर हाथ नहीं गया और न किसी इंगित से कोई जान सका कि यह बौद्धिक वर्ग १०२ डिग्री ज्वर में हो रहा है। मैं तो इसी को व्यवहारिक आध्यात्म समझता हूँ।

(तीन)

चाँदी की तप्त शलाका

श्री गुरुजी के दाहिने हाथ में सतत दर्द रहा करता था। अनेक उपायों के बावजूद वह थोड़ा भी कम नहीं हुआ। अन्ततः वैद्यों की सलाह के अनुसार यह उपचार निश्चित किया गया कि चाँदी की तप्त शलाका से दाग दिया जाये। यह उपाय कुछ कठोर था, किन्तु लाभकारी होने के कारण एतदर्थ एक दिन निश्चित किया गया। यह घटना होगी सन् १९५२ की। यात्रा एवं विविध कार्यक्रमों से कुछ समय निकाल कर श्री गुरुजी पुणे आये और उस तप्त-शलाका-प्रयोग के लिये तैयार हो गये।

श्री गुरुजी के कन्धे को जब तप्त-शलाका से दागना शुरु हुआ, तब हर

बार चमड़ी जलने की चर्र-चर्र आवाज से देखने वालों का दिल ही दहल उठता था। चमड़ी झुलसती और उसकी गन्ध से रोंगटे खड़े हो जाते थे। किन्तु इस दिव्य अग्नि-प्रयोग में श्री गुरुजी पूर्ण रूप से शान्त थे और प्रसन्न भी थे। उनकी बातों से फ़ुहारे छूट रहे थे व्यंग-विनोद के। दागने की उस प्रक्रिया की ओर किसी का ध्यान नहीं जाये, इसीलिये मानो श्री गुरुजी ने हास्य-विनोद का अपना भण्डार ही खोल रखा था।

एक या दो नहीं, बत्तीस बार शलाका-कर्म करने के पश्चात वह भयंकर प्रयोग समाप्त हुआ। घाव पड़ रहे थे शरीर पर, उससे मेरा क्या सम्बन्ध, इस प्रकार की अलिप्तता श्री गुरुजी के उस व्यवहार में थी। सब काम हँसी मजाक में सहज ही हो रहा था। विदेह-वृत्ति का अनुभव करने के लिये मैंने भी एक बार जलती अगरबत्ती को अपनी हथेली पर रखकर देखा, किन्तु क्या बताऊँ? उसके सम्बन्ध में कुछ न कहना ही अच्छा है।

(चार)

बिच्छू का दंश

१६२८ में श्री गुरुजी बी० एस० सी० की अन्तिम परीक्षा की तैयारी कर रहे थे। एक दिन रात्रि को उनके पैर में बिच्छू ने डंक मार दिया। तब एक बाल्टी गरम पानी में अपना पैर डालकर वे अपनी पढ़ाई करने लगे। पड़ोस के मित्रों ने इसके बारे में पूछताछ की। उन्होंने कहा—बिच्छू ने पैर में दंश किया है दिमाग में नहीं अतः मेरे अध्ययन में बाधा उपस्थित होने का कोई कारण नहीं।

ऐसे ही एक बार वे तीव्र ज्वर में पढ़ रहे थे, तब पूछताछ करने वालों से उन्होंने कहा था—बुखार अपना कार्य कर रहा है और मैं अपना कार्य कर रहा हूँ

(पाँच)

अपना शरीर बात मानता है

गोरखपुर विभाग के एक शिविर में श्री गुरुजी उपस्थित थे। दोपहर का भोजन कर चुकने के उपरान्त वे एक स्थान पर खड़े हुए थे। हम कुछ स्वयंसेवकों का एक झुण्ड उनको घेर कर खड़ा था उनकी मधुर वाणी और मधुर विनोद से आकृष्ट होकर। तभी अपने एक कार्यकर्ता आये उनको मधुमेह हो गया था। ज्यों ही वे आकर श्री गुरुजी के पास खड़े हुए, श्री गुरुजी ने विनोद किया—ऐसा सुना है, तुमने शुगर-फैक्ट्री लगा ली है।

हँसी का ठहाका गूंज उठा। फिर श्री गुरुजी ने बतलाया—स्वस्थ चिन्तन और इच्छा शक्ति से रोग भी ठीक हो सकते हैं।

इसके बाद श्री गुरुजी ने अपनी आप बीती सुनानी आरम्भ कर दी। उन्होंने बतलाया कि विजयादशमी के कार्यक्रम पर उन्हें एक दिन गणवेश पहनना पड़ता है। एक बार जब उनका नेकर छोटा हो गया तो उन्होंने अपने पेट से कहा कि भई, संघ का सरसंघचालक गरीब है। अगर तुम बढ़ोगे तो मैं प्रतिवर्ष कहां से नया नेकर सिलाऊँगा ? और फिर गुरुजी का नेकर कभी छोटा नहीं हुआ।

इसी प्रकार श्री गुरुजी के हाथ में कष्ट था। बाँह उठाने में पीड़ा होती थी। वह पीड़ा इस सीमा तक बढ़ी कि कुर्ता भी दूसरे को पहनाना पड़ता था। श्री गुरुजी ने अपनी बाँह से कहा कि यदि तुम ऐसा करोगे तो फिर एक स्वयंसेवक कुर्ता पहनाने के लिये चाहिये और आश्चर्य की बात है कि उस दिन से कुर्ता दूसरे को नही पहनाना पड़ा।

श्री गुरुजी ने बताया—यदि हृदय से बात कही जाय तो अपना शरीर भी उसे मानता है।

तप-त्याग-तत्परता

(एक)

जीवन था आहुति

सभी जानते हैं कि कई वर्षों से श्री गुरुजी का स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता था परन्तु उनका परिश्रम अविश्रान्त और अथक बना रहा। सभी कार्यकर्ताओं को उनके स्वास्थ्य की चिन्ता परेशान किया करती थी इसीलिये उन्हें विश्राम देने का प्रयत्न किया जाता रहा। समय-समय पर औषधि और पथ्य सेवन के लिये आग्रह किया जाता था। लेकिन सब व्यर्थ एक बार जब आग्रह बहुत ही बढ़ गया तो श्री गुरुजी ने कहा—इस नश्वर शरीर के बारे में तुम सब लोग क्यों इतनी चिन्ता करते हो? यह जब तक रहेगा, इसी प्रकार रहेगा। डाक्टर जी की यज्ञ-पीठ पर मैं बैठा हूं न? जब तक समाज दुःख-ग्रस्त है, पीड़ित है, तब तक सरसंघचालक के स्थान पर स्थित शरीर को नींद और आराम मिलना असम्भव है।

राष्ट्रार्पित जीवन का इससे बढ़कर ज्वलंत उदाहरण और कहाँ मिलेगा? उनका जीवन था आहुति, राष्ट्र-यज्ञ की पवित्र ज्वाला में आहुति।

[दो]

सुविधा की माँग नहीं

श्री गाँधी जी की हत्या के बाद भण्डारा जाते ही पुलिस ने मुझे गिरफ्तार कर लिया और एक महीने के बाद मुझे नागपुर जेल में भेज दिया। जेल में भी एक मास अलग रखने के बाद श्री गुरुजी के कमरे में मुझे भेज दिया गया। पहले से ही तीन-चार संघ-अधिकारी वहीं पर थे। वहाँ पहुंचते ही स्नान-चाय-भोजन-विश्राम आदि की व्यवस्था मैं देखने लगा।

दिन भर आपस में बातचीत होती थी। स्वर कभी ऊँचा और कभी नीचा भी होता था। अपना मत प्रस्तुत करते समय और उसका प्रतिपादन करते समय अभिनिवेश और आग्रह भी जाग पड़ता था। परन्तु श्री गुरुजी हर समय शान्त और शान्त ही रहते थे। विचार-विनिमय के समय भी वे कहा करते थे—अपने ही अधिकारी हैं, संघ का भला चाहते हैं, मत-प्रदर्शन ठीक ही है।

श्री गुरुजी के पास पहले वही बिस्तर था, जो उनको जेल से मिला था, दो कम्बल और एक चादर। श्री गुरुजी ने कभी किसी चीज की न माँग की और न बाहर से मँगवायी।

मैंने बाहर से बिस्तर मँगवाया। संध्या-वन्दन का सामान भी मँगवाया। यह सारा सामान आ गया तो श्री गुरुजी नाराज हो गये और बोले—ये सब चीजें तुमने क्यों मँगवायी ?

मैंने धीरे से बताया—बाहर जाने के बाद श्री बाला साहब मुझसे कुछ पूछते तो मैं उनको क्या उत्तर देता।

तब शान्त होकर श्री गुरुजी ने कहा—अच्छा ! यह बात है !

●

[तीन]

स्वास्थ्य और संघ-कार्य

कई वर्ष पहले की बात है। अजमेर में प्रान्तीय शिविर था। श्री गुरुजी शिविर में पधारे थे। लगभग साढ़े-दस बजे जब वे अपने नित्य-नियम से

निवृत्त हुए तो वहाँ आकर बैठ गये, जहाँ हम कई लोग एक साथ बैठे हुए थे। उनके बैठ जाने पर मैंने अनायास ही उनसे पूछ लिया—गुरुजी ! आपका स्वास्थ्य कैसा है ?

वे तुरन्त बोले—अरे ! स्वास्थ्य के लिये क्या पूछते हो ? स्वास्थ्य तो ठीक ही है। अपने लोगों को स्वास्थ्य का विचार नहीं करना चाहिये। स्वास्थ्य का ध्यान रखने वाला संघ-कार्य नहीं कर सकता।

[चार]

उन स्थितप्रज्ञ की सत्योक्ति

एक प्रवास के प्रस्वेद-कण अभी सूख भी नहीं पाते थे कि दूसरे प्रवास के लिये श्री गुरुजी के पवित्र चरण रेल के डिब्बे में पहुंच जाते थे। किसी ने अज्ञानतावश एक बार उनसे पूछ लिया था—आपका निवास-स्थान कहाँ है ?

श्री गुरुजी ने सहज भाव से कह दिया था—रेल का डिब्बा।

यह उक्ति किसी दिन भी झुठलायी नहीं जा सकी, जीवनान्त में भी नहीं। काल उनकी काया को शनैः-शनैः अपने कुण्डली-चक्र में ग्रसता चला जा रहा था, फिर भी यह उक्ति सदैव सत्योक्ति ही रही। तुच्छ काल उनकी ध्येय-निष्ठा की परीक्षा लेने आया और उसे पराजित होना पड़ा। कैंसर का जिन्दगी की डोर से कौन-सा नाता है, इसे कौन नहीं जानता ? उस प्रतीति की भीति किसका मन दुर्निवार चिन्ताओं से आक्रान्त नहीं कर देती ? किन्तु वे सम्मुख आसन्न मृत्यु की काली छाया को देखकर भी अविचल रहे, उनकी स्थितप्रज्ञता डोली नहीं। क्या श्री गुरुजी जानते नहीं थे कि कैंसर ने उनके शरीर में जो स्थिति प्राप्त कर ली है, उसकी चरम परिणति का अर्थ सिवाय दीप- निर्वाण के और कुछ नहीं, तब भी देश के दूरस्थ प्रदेशों का उनका प्रवास-क्रम अभंग रहा। ऐसी उन स्थितप्रज्ञ की वह सत्योक्ति !

(पांच)

आयु घट रही है

अपनी इक्कावनवीं वर्षगाँठ के अवसर पर एक अभिनन्दन पत्र का श्री

गुरुजी ने जो उत्तर भेजा था, वह उनके जीवन की विशेषता का परिचायक है।

अत्यन्त सबल शब्दों में श्री गुरुजी ने लिखा—प्रत्येक जन्म दिवस के अवसर पर मुझे स्मरण होता है कि ईश्वर ने जो आयु दी है, उसमें से एक वर्ष आज घट गया है, परन्तु अभी तक ध्येयपूर्ति नहीं हुई है। अभी तो कितना ही काम करना शेष है।

अपने देश की सेवा में ध्येय प्राप्ति के लिये आविश्रान्त परिश्रम करते हुए एक तपस्वी की भाँति वे अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे।

●

(छः)

प्रवास और ज्वर

सन् १९६६ का प्रसंग है। श्री गुरुजी का इकसठवाँ वर्ष प्रारम्भ हुआ था। नागपुर में अनेकों वरिष्ठ अधिकारियों ने महाराष्ट्र की परम्परा के अनुसार श्री गुरुजी के इकसठवीं वर्षगाँठ के अवसर पर देशभर के कार्यकर्ताओं को एकत्र बुलाकर कोई कार्यक्रम रखने का आग्रह किया। इस प्रस्ताव के आते ही श्री गुरुजी ने सर्वथा निषेध कर दिया। जब लोग लम्बे समय तक आग्रह करते ही रहे तो वर्ष-गाँठ के आठ-दस दिन पहले उन्होंने कहा—इस वर्ष-गाँठ के अवसर पर भी मैं अपना प्रवास-कार्यक्रम यथावत रखूंगा। मैं उस समय जहाँ भी रहूं, वहीं यदि सभी प्रान्तों से एक-एक व्यक्ति आवें तो आ सकते हैं।

श्री गुरुजी उस दिन उड़ीसा-प्रान्त के मयूरगंज नगर में थे। वहाँ जिले का त्रि-दिवसीय शिविर था। देशभर के सभी प्रान्तों से एक-एक कार्यकर्ता मयूरगंज पहुंचे। राजस्थान से मुझे जाने के लिये आदेश हुआ था। मैं भी वहाँ उनके वर्ष-गाँठ के दिन पहुंच गया था।

हम लोग श्री गुरुजी के पास प्रातः काल एक-डेढ़ घण्टा बैठे होंगे। खूब प्रसन्नतापूर्वक वे बातचीत कर रहे थे। नौ बजे के लगभग वे जिले के कार्यकर्ताओं की बैठक लेने गये। वहाँ से आकर स्नान-संध्या करके हम सब लोगों के साथ एक स्थान पर भोजन किया। भोजनोपरान्त कुछ विश्राम करके

फिर हम लोगों के साथ वार्तालाप करने बठ गये। तदनन्तर वहाँ के प्रौढ़ लोगों की बैठक थी, वे उसमें भाग लेने के लिये चले गये। सायंकाल नगर के स्वयंसेवकों का एकत्रीकरण था, जिसमें साधारण जनता भी निमन्त्रित थी। उनके बीच भी श्री गुरुजी ने भाषण दिया।

रेलगाड़ी का जंक्शन-स्टेशन मयूरगंज से अट्ठारह-बीस मील की दूरी पर है। सार्वजनिक कार्यक्रम होने के बाद अपनी संध्या करके श्री गुरुजी और हम सब लोग स्टेशन पहुंचे। गाड़ी आने में घण्टा भर का विलम्ब था। स्टेशन पर हम सब लोग बातचीत कर रहे थे कि अचानक श्री काशीनाथजी पन्त लिमए का हाथ श्री गुरुजी के हाथ से छू गया तो उनको ऐसा लगा मानो उनका (श्री गुरुजी का) हाथ गरम है। वैद्य श्री काशीनाथ राव ने श्री गुरुजी की नाड़ी को अच्छी प्रकार से देखा और आश्चर्यपूर्वक कहने लगे–गुरुजी ! आपको बहुत तेज ज्वर है। मुझे लगता है कि आपको लगभग १०३ डिग्री तापमान है।

इस पर श्री गुरुजी हँसे और बोले–अरे ! आज तो कुछ कम है। कल तो इससे भी २ डिग्री अधिक था।

यह सुनकर श्री काशीनाथ राव बहुत क्षुब्ध होकर कहने लगे–गुरुजी ! आपका शरीर देश की धरोहर है। आपको इसे पूर्ण स्वस्थ और रोग-मुक्त रखना चाहिये।

श्री गुरुजी ने समझाने का प्रयास किया–देखो, मेरा कार्यक्रम लगभग आठ-दस मासपूर्व बन जाता है। चिर प्रतीक्षा के पश्चात् अपने कार्यक्रम के निमित्त मैं भिन्न-भिन्न स्थानों पर जाता हूं। वहाँ अनेकों प्रकार के कार्यक्रम पहले से बने रहते हैं। अब यदि मैं अपने शारीरिक कष्ट के कारण कार्यक्रम का निषेध कर दूं तो कार्यकर्ताओं को, स्वयंसेवकों को तथा संघ-प्रेमी-सज्जनों को कितना बुरा लगेगा ? इतना ही नहीं, ये सब लोग अपने कार्य से सम्बन्धित बातचीत करके तथा एतद्विषयक बातें सुनकरके संघ-कार्य करने-हेतु प्रवृत्त होने का विचार करते हैं, मेरे नहीं जाने से यह सब नहीं हो पायेगा और उन स्थानों का कार्य प्रगति करने से रुक जायेगा।

इस पर हम सब लोग चुप हो गये। सभी गम्भीर विचारों में निमग्न हो गये। मेरे मन में यह भी विचार आया कि देखो, श्री गुरुजी ने १०३ डिग्री ज्वर के तापमान में अपने पूर्व निश्चित कार्यक्रम तो निभाया ही, हम लोग भी जो बीच में आ धमके, उनके साथ दिन भर में तीन-चार घण्टे परम प्रस-

नम्रता की मुद्रा में अनेक प्रसंगों पर वार्तालाप करते रहे। अद्भुत संयम और कर्तव्यपरायणता थी उनमें।

●

(सात)

आत्मिक-बल के सहारे

सन् १९५६ में प्रयाग के संघ शिक्षा शिविर में श्री गुरुजी आये हुए थे। उनको बहुत थका हुआ देखकर हम लोगों का जी नहीं माना। रात्रि में शयन के पूर्व लगभग साढ़े ग्यारह बजे की बात है। उनके पैरों में मालिश करने के लिये उन्हें किसी प्रकार से मना लिया गया। हम दो लोग एक-एक पैर में तेल लगाकर मालिश करने लगे। सम्भवत: आधा छटाँक तेल एक ही पैर के तलवे में और आस-पास के भाग में लगाते ही सूख गया। इस पर हम लोग आश्चर्य प्रकट कर रहे थे।

हम लोगों को आश्चर्योक्ति को सुनकर श्री गुरुजी ने कहा—इस शरीर में बचा ही क्या है ? लकड़ी के समान हड्डियां शुष्क हो गयी हैं।

दिन भर अविश्राम श्रम और रात्रि में अनिद्रा। निरन्तर कार्य करते रहने से शरीर का खून तो कभी का सूख चुका था, केवल आत्मिक बल के सहारे ही बाद के १७ वर्ष निकाले हैं।

●

(आठ)

घर नहीं गये

श्री गुरुजी जब नागपुर में रहते थे, तब शाम के बाद घर जाते थे। वे घर जाते थे अपनी पूज्या माताजी के दर्शन के लिये। माता जी को सब लोग ताईजी कहते थे। नागपुर पहुंचने पर श्री गुरुजी के साथ मुझे भी श्री ताईजी के दर्शन का सौभाग्य मिलता था।

कुछ वर्षों के पश्चात् श्री ताईजी का देहान्त हो गया। उन्हें श्मशान-भूमि में पहुंचाकर श्री गुरुजी वापस आये, किन्तु वे घर नही गये। आगे भी वे कभी घर नहीं गये। घर जाने का उनका उद्देश्य था केवल श्री माता जी का दर्शन। अब श्री गुरुजी कार्यालय में ही रहने लग गये। घर के प्रति उनके मोह की ऐसी स्थिति थी।

●

(नौ)

अब विश्राम कहां

१९४३ का प्रसंग है। पूना में प्रान्तीय कार्यकार्ताओं की बैठक थी। श्री गुरुजी भी उस बैठक में उपस्थित थे। सरसंघचालक बनने के बाद से उनका देशव्यापी अखंड प्रवास जारी था। कहीं विराम नहीं, कहीं विश्राम नहीं। सहयोगी कार्यकर्ता स्नेह से उन्हें कभी-कभी विश्राम करने की सलाह देते। उक्त बैठक में ऐसी ही सलाह का उल्लेख उन्होंने अपने भाषण में किया और कहा—विश्राम ? अब कहां विश्राम ? अब विश्राम तो तब ही संभव है जब हाथ में लिया कार्य पूर्ण होगा अथवा चिता पर।

●

(दस)

नींद नहीं चाहिये

मद्रास की बात है। स्वर्गीय श्री राजगोपालाचारीजी (प्रांत संघ चालक) श्री गुरुजी के स्वास्थ्य के बारे में चिन्तित थे। एक बार एक वैद्य महोदय श्री गुरुजी के साथ चाय-पान के लिये बैठे हुए थे। श्री राजगोपाला-चारीजी ने उन वैद्य महोदय से अनुरोध किया—श्री गुरुजी को नींद नहीं आती आप कुछ उपाय बता सकते हैं, क्यों ?

श्री वैद्य जी ने श्री गुरुजी से पूछा—आप रात्रि के समय नींद आने के लिये पुस्तक क्यों नहीं पढ़ते ?

श्री गुरुजी—एक बार पुस्तक हाथ में ली तो उसे पढ़कर पूरी समाप्त करने तक नींद ही नहीं आती।

श्री वैद्यजी—तत्वज्ञान की पुस्तक पढ़ा कीजिये।

श्री गुरुजी—वह तो मेरी पसन्द का विषय है।

श्री वैद्यजी—फिर गणित की पुस्तक लीजिये।

श्री गुरुजी—गणित हल किये बिना नींद ही नहीं आयेगी।

हारकर श्री वैद्यजी बोले—ऐसा लगता है कि इन्हें नींद चाहिये ही नहीं।

●

(ग्यारह)

मोटर राह में मिली पर....

श्री गुरुजी को किसी स्वयंसेवक के विवाह में महाल से धंतोली जाना था। महाल से धन्तोली लगभग ढाई मील है। जिस मोटर की आशा थी वह आ न सकी। इधर-उधर अन्य किसी सवारी की तलाश की गई। रिक्शे में गुरुजी चढ़ते नहीं और अधिक रात्रि होने के कारण साइकिल उपलब्ध न हो सकी। अतः वे पैदल ही गन्तव्य स्थान की ओर चल पड़े।

इधर काफी देर प्रतीक्षा करने के पश्चात् उक्त स्वयसेवक ने अपनी मोटर भेजी, जो श्री गुरुजी को रास्ते में मिली, किन्तु जल्दी के कारण ड्राइवर उन्हें देख न सका। विवाह-स्थल पर पहुंचने पर स्वयंसेवक ने पूछा-कार कहाँ है ?

श्री गुरुजी ने विनोद पूर्वक उत्तर दिया—मुझे लेने गई है।

स्वतः कष्ट सहकर दूसरे को सुखी देखने की वृत्ति का कैसा सुन्दर उदाहरण है।

●

(बारह)

पुस्तक तैयार थी

सन् १६३७ की बात है। आद्य सरसंघचालक डाक्टर हेडगेवारजी ने इच्छा व्यक्त की कि उनके द्वारा प्रतिपादित शुद्ध राष्ट्रीयता की विचार-धारा लिपिबद्ध हो जाये तो कितना सुन्दर हो।

श्री गुरुजी पुस्तक लिखने का आश्वासन प्रदान करके रामटेक चले गये, जहाँ उनके माता-पिता रहा करते थे। इस घटना के तीन दिन पश्चात् मुझे रामटेक जाना पड़ा। वहाँ यह देखकर मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि उक्त विषय से सम्बन्धित सौ पृष्ठों की पुस्तक लिखी जा चुकी है।

यही पुस्तक बाद में We or our Nationhood Defined (हमारी राष्ट्रीयता) के नाम से प्रकाशित हुई। राष्ट्रीय स्वयंसेवक-संघ के संगठन में और भारत के राष्ट्रीयता-दर्शन-साहित्य में इस पुस्तक का कितना महत्त्व है, यह किसी से छिपा नहीं।

इतनी महत्त्वपूर्ण पुस्तक का लिखना केवल तीन दिन में और वह भी दैनिक कार्य करते हुए, कितने आश्चर्य का विषय है।

(तेरह)

निर्धारित कार्यक्रम के प्रति आग्रह

श्री गुरुजी ने सरसंघचालक बनते ही भारत की चारों दिशाओं में भ्रमण प्रारम्भ कर दिया। कम-से-कम वर्ष भर में दो बार काश्मीर से कन्याकुमारी और कच्छ से कामरूप तक वे जाते थे। उनका अन्तिम अखिल भारतीय प्रवास १२ मार्च १६७३ को समाप्त हुआ। कैंसर जैसे कठिन रोग की अढ़ाई वर्ष पूर्व ही शल्य-चिकित्सा होने पर भी उनका भ्रमण पूर्ववत् चालू था, किन्तु १२ मार्च को अन्तिम प्रवास के उपरान्त वे नागपुर लौटे, पर लौटे रुग्ण होकर ही। थोड़े-से परिश्रम से भी श्वास फूलने लगता था। बड़ी कठिनाई से वे अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा के समारोप-अवसर पर बोल सके थे। इस अवसर पर बोला गया भाषण ही उनके जीवन का अन्तिम भाषण है। शरीर की ऐसी रुग्णावस्था में भी उनकी हार्दिक इच्छा थी कि

भारत के विभिन्न भागों में लगने वाले संघ-शिक्षा-शिविरों में मैं जाऊँ। उन्होंने डा० थत्ते को प्रवास का कार्यक्रम बनाने के लिये कहा भी, किन्तु हम लोगों के आग्रह पर उन्होंने वह विचार छोड़ दिया।

जिस कार्य का बीजारोपण परम पूजनीय श्री डाक्टर जी ने किया था, उसको एक वट-वृक्ष के समान देशव्यापी श्री गुरुजी ने बनाया। सभी प्रान्तों के सभी जिलों में, तहसीलों में और तहसीलों के अन्दर छोटे-छोटे कस्बों और ग्रामों तक संघ-शाखाओं का जाल फैल पाया तो वह श्री गुरुजी के ३३ वर्षों के अखण्ड अविश्रान्त प्रयत्नों के परिणाम स्वरूप ही। इस कार्य को उन्होंने साधना के रूप में देखा और साधन की तन्मयता से किया। श्री गुरुजी के प्रवास कार्यक्रम छः मास पूर्व बनते थे और सर्वत्र सूचनाएं भेजी जाती थीं। सूचना मिलते ही सारे कार्यकर्ता पूरे मनोयोग से तैयारी करते थे और सहस्रों स्वयंसेवक तथा लक्ष-लक्ष संघ प्रेमी श्री गुरुजी की बाट जोहते थे। श्रीगुरुजी भी निर्धारित कार्यक्रमों को बहुत सतर्कता पूर्वक निभाते थे। इसके परिणाम स्वरूप साधारण जनता में यह पक्की धारणा बन गयी थी कि संघ का कार्यक्रम है तो वह निश्चित तिथि को होगा ही। इतना ही नहीं, वह नियत समय पर भी शुरू होगा। इसलिये जनता संघ के कार्यक्रमों में ठीक समय पर जाती थी।

श्री गुरुजी के पंजाब प्रान्त के प्रवास में सन् १९४० से लेकर १९६२ तक प्रान्त प्रचारक के नाते उनके साथ रहने का मुझे अवसर प्राप्त हुआ और प्रवास की अनेक घटनाएँ स्मृति-पटल पर अंकित हैं। श्री गुरुजी का सदा आग्रह रहा करता था कि किसी भी परिस्थिति में पूर्व-निश्चित कार्यक्रम रद्द न हों। शरीर में एक सौ पाँच डिग्री ज्वर होने पर भी उन्होंने भाषण तथा बैठकों के कार्यक्रम निभाये हैं। फिर सर्दी-गर्मी-वर्षा की तो उन्होंने कभी परवाह ही नहीं की।

सन् १९४७ के सितम्बर मास की बात है। भारत का विभाजन हुआ-ही-हुआ था। सिन्ध और पंजाब के हिन्दुओं पर भीषण विपत्तियाँ आयी थीं। विस्थापित चले आ रहे थे। उनकी दुर्दशा सुनकर श्री गुरुजी पंजाब के दौरे पर आये। जोरदार वर्षा हो रही थी। नदी-नाले उफन रहे थे। प्रवास के क्रम में श्री गुरुजी को जालन्धर का कार्यक्रम सम्पन्न कर अब लुधियाना जाना था, किन्तु तेज वर्षा के कारण रास्ते रुके हुए थे। जालन्धर से लुधियाना जाने वाले मार्ग पर पानी भरा हुआ था, अतः कार द्वारा

जाना सम्भव नहीं था, किन्तु श्री गुरुजी का आग्रह था कि निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार लुधियाना पहुंचना ही चाहिये।

रेलवे वालों से पूछताछ की तो पता लगा कि एक ट्राली का प्रबन्ध हो जायेगा। श्री गुरुजी के साथ मैं और श्री धर्म वीर जी उस ट्राली पर बैठे। ट्राली ढकेलने वाले बड़ी फुर्ती और सावधानी से लुधियाना की ओर रेल पटरियों पर दौड़ने लगे। फिर भी हम ट्राली से चेहड़ू तक पहुंचे। चेहड़ू में एक बड़ा नाला था, जो लबालब भरा था और पानी बहुत तेज गति से बह रहा था। बाढ़ के पानी ने चेहड़ू के रेलवे-पुल का एक खम्भा बहा दिया था। पुल का ऊपरी भाग (ढाँचा) तो ज्यों-का-त्यों खड़ा था, किन्तु रेल-पटरी के नीचे की भूमि बह जाने से रेल-पटरी सलीपरों के आधार से झूलते पुल की तरह लटक रही थी। ट्राली वाले ने आगे जाने से अस्वीकार कर दिया। समीप ही साधारण यातायात की सड़क थी, परन्तु उसके पुल पर से पानी तेज गति से बह रहा था। कई यात्री चेहड़ू के इस पुल पर रुके हुए थे।

हम सोचने लगे कि अब क्या किया जाये। कुछ उपाय सूझ नहीं रहा था। हम लोग सोच-विचार में उलझे हुए थे कि इतने में हमारे देखते श्री गुरुजी ने झूलती हुई उस रेल-पटरी और सलीपरों पर अपने कदम आगे बढ़ा दिये। वे फूर्ती से आगे बढ़ने लगे। हमारे दिल धड़कने लगे। हमें भी साहस करके पीछे चल देना पड़ा। झूलती हुई रेल-पटरियों के दो-तीन फुट नीचे से ही पानी का प्रवाह तेज गति से बह रहा था। वह दृश्य बड़ा ही भयावह था, फिर भी श्री गुरुजी ने पुल पार कर लिया और हम भी उनके पीछे पार हो गये।

हम लोग चेहड़ू रेलवे-स्टेशन पर पहुंचे। रेलवे के लोगों को पुल पार करने की सारी गाथा सुनायी। वहाँ एक इंजन खड़ा था। श्री गुरुजी का नाम सुनते ही इंजन-ड्राइवर उन्हें ले जाने के लिये तैयार हो गया। इंजन गुराया स्टेशन तक जाने वाला था। इंजन में बैठकर श्री गुरुजी और हम लोग गुराया पहुंचे। भाग्य की बात, गुराया में एक मालगाड़ी लुधियाना जाने के लिये तैयार खड़ी थी। गार्ड ने श्री गुरुजी सहित हम सभी को अपने डिब्बे में एक स्थान दिया। तीन घण्टे में हम लोग गुराया से लुधियाना पहुंच गये। इस प्रकार प्रातः काल सात बजे चलकर सायंकाल पाँच बजे हम लोग लुधियाना पहुंचे और लुधियाना का कार्यक्रम ठीक प्रकार से सम्पन्न हो पाया।

ऐसे कठोर निश्चय के थे हमारे श्री गुरुजी। निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार आगे बढ़ने की उनकी दृढ़ इच्छा-शक्ति और साहस का यह उदाहरण

था। इसी प्रकार की एक और घटना होशियारपुर से जालन्धर पहुंचने की भी है। सन् १६५६ की बात है। पंजाब के प्रवास में जब वे होशियारपुर पहुंचे तो वर्षा ने बड़ा भीषण रूप धारण कर रखा था होशियारपुर में पानी ही-पानी था। वर्षा में ही शाम का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। श्री गुरुजी होशियारपुर में श्री कुठियालाजी के घर पर ठहरे हुए थे। शहर के दोनों ओर बाढ़ के कारण अनेक घरों में पानी घुस चुका था। स्वयंसेवक स्थान-स्थान पर नागरिकों की सहायता कर रहे थे। श्री गुरुजी को आगे जालन्धर और लुधियाना के कार्यक्रमों हेतु जाना था, किन्तु बाढ़ के पानी से रास्ते इस प्रकार लबालब भरे हुए थे कि होशियारपुर से जालन्धर के बीच रेल की पटरियाँ कुछ स्थानों पर बह गयी थीं। इस कारण रेलगाड़ियाँ भी बन्द थी। श्री गुरुजी आगे जाने के लिये कुछ-न-कुछ प्रबन्ध करने के लिये कह रहे थे। दो दिन बीत गये। तीसरे दिन वर्षा का जोर कुछ कम हुआ। श्री गुरुजी बोले—अब कल हम पैदल ही यहाँ से जालन्धर के लिये निकल पड़ेंगे।

प्रातः काल श्री कुठियालाजी की स्टेशन-वैगन तैयार की गयी। उस पर दो साइकिलें भी रख ली गयीं। उन्होंने भोजन भी साथ दे दिया। इस प्रकार श्री गुरुजी के साथ हम पाँच छः कार्यकर्ता आगे बढ़े। रास्ते में वृक्ष टूटे हुए थे। वृक्षों को हटा-हटा कर स्टेशन-वैगन आगे ले जाना पड़ा। होशियारपुर से जालन्धर की दूरी २७ मील है, परन्तु स्टेशन-वैगन से हम एक घण्टे में केवल सात मील आगे ही पहुंचे। अब बीच में नसराला नदी आ गयी। रास्ते के पुल पर से नदी का पानी बह रहा था, परन्तु रेलवे-पुल पर पानी नहीं था। श्री गुरुजी ने कहा—'स्टेशन-वैगन यहीं छोड़ दो, सामान उठा लो, और अब पैदल ही आगे बढ़ेंगे'—ऐसा कह कर उन्होंने चट स्वयं एक झोला उठा लिया। हम लोगों ने भी सामान हाथ में उठा लिया। साइकिलें ले लीं और रेलवे का पुल पैदल पार कर गये।

वर्षा थमी हुई थी। हम लोग पैदल ही आगे चल पड़े। तीन मील पर एक गाँव में पहुंचे। यहाँ एक टाँगा मिला। श्री गुरुजी, मैं और एक अन्य कार्यकर्ता टाँगे में सवार हुए। शेष साइकिलों पर सामान लटकाये साथ हो लिये। परन्तु छः मील चलने के बाद टाँगे के घोड़े के बन्द टूट गये। टाँगा छोड़ देना पड़ा। श्री गुरुजी फिर पैदल ही आगे चल पड़े। पाँच मील चलने के बाद जालन्धर के वैद्य श्री अमरनाथजी डोंगरा और तीन कार्यकर्ता जीप के सहित हमें मिले। वे लोग श्री गुरुजी के जालन्धर ठीक समय पर न पहुं-

चने के कारण चिन्तित थे, इसलिये जीप लेकर होशियारपुर आने के लिये निकले थे। इस प्रकार जीप से हम लोग दो बजे जालन्धर पहुंच पाये।

राष्ट्र-व्यापी संघ-कार्य के इन छोटे-बड़े कार्यक्रमों को इतनी तत्परता से सम्पन्न करने का आग्रह श्री गुरुजी का रहा करता था। मार्ग में आने वाली प्रत्येक बाधा को लाँघ कर बढ़ने का उनका अपूर्व साहस था।

(चौदह)

अनन्य ध्येय-निष्ठा

अब मुझे श्री गुरुजी नजर आये। श्री गुरुजी ने डिब्बे से नीचे पाँव नहीं रखा था कि मेरा शरीर नमस्कार करने के लिये झुका। उन्होंने अपनी दोनों बाँहों से मेरी बाजुओं को पकड़ लिया और कहा—यह क्या वीर जी ?

मेरी बाजुओं को पकड़े-पकड़े वे नीचे प्लेट फार्म पर आ गये। यों तो उनके मुख पर मुस्कान थी, परन्तु मुझे कुछ ऐसा आभास हुआ कि उनकी आँखों में वह तेज नहीं, जो सुस्वास्थ्य के कारण उनके चेहरे पर प्रायः खेला करता है। शायद गाड़ी में नींद न आयी हो। मैंने पूछ ही तो लिया—रात में नींद तो ठीक से आयी थी ?

श्री गुरुजी—क्यों? नींद को क्या हुआ है ? जैसे पहले आती रही है, वैसी ही आज आयी।

मैं—तो पूरी नहीं हुई?

श्री गुरुजी—कभी भी नहीं होती।

मैं—क्या मतलब ?

श्री गुरुजी—अरे, डाक्टर कहते हैं, इसीलिये बिस्तर पर पड़ा रहता हूं।

मुझे कुछ चिन्ता लगी। एक सुझाव मन में आया। मैंने उसे व्यक्त किया—परन्तु आपको शारीरिक श्रम भी तो नहीं मिलता। नींद कैसे आये ?

श्री गुरुजी—वीर जी ! आप क्या कह रहे हैं ? मैं दिन भर इधर-से उधर भागता रहता हूं। यह क्या कम शारीरिक श्रम है ?

मैं—भागते तो आप हैं, लेकिन मोटर पर। शरीर आपका थकता नहीं, अत: नींद आती नहीं।

श्री गुरुजी–तो ?

मैं–आप एक घंटे सैर क्यों न किया करें ? सुबह नहीं तो शाम को।

श्री गुरुजी—तब शाम को सायं-शाखाओं में कैसे जा सकता हूं ?

उनका कहना ठीक था। शारीरिक श्रम के न होने से नींद नहीं आती, न आये। नींद नहीं आने से स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता, न रहे। परन्तु संघ-कार्य तो होना ही चाहिये। ध्येय-देव के प्रति कितनी अनन्य भक्ति थी ? मैं चुप हो गया। मेरी आँखें खुली-की-खुली रह गयीं। इतनी ध्येय-निष्ठा ! अजमेर की बात याद आ गयी। वहाँ पर श्री गुरुजी से प्रान्त के कार्यवाह ने पूछा था कि आपका स्वास्थ्य कैसा है। यह सुनकर श्री गुरुजी तुरन्त बोले कि अपने लोगों को स्वास्थ्य का विचार नहीं करना चाहिये। स्वास्थ्य का ध्यान रखने वाला संघ-कार्य कर नहीं सकता।

हम चलते चले जा रहे थे। प्लेट फार्म से निकलकर वेटिंग-हाल में प्रविष्ट हुए। उसे भी पार करके स्टेशन के बाहर आ गये। श्री गुरुजी का मौन बना रहा। उसे भंग करने के लिये मैंने बातचीत का विषय बदला··· आपको बद्री-केदार की तीर्थ-यात्रा का ध्यान कैसे आ गया ?

उन्होंने उत्तर दिया–मैं कहाँ जाना चाहता था ? मैं तो इस यात्रा के लिये बाध्य कर दिया गया हूं।

मैंने पूछा–आप जाना क्यों नहीं चाहते ?

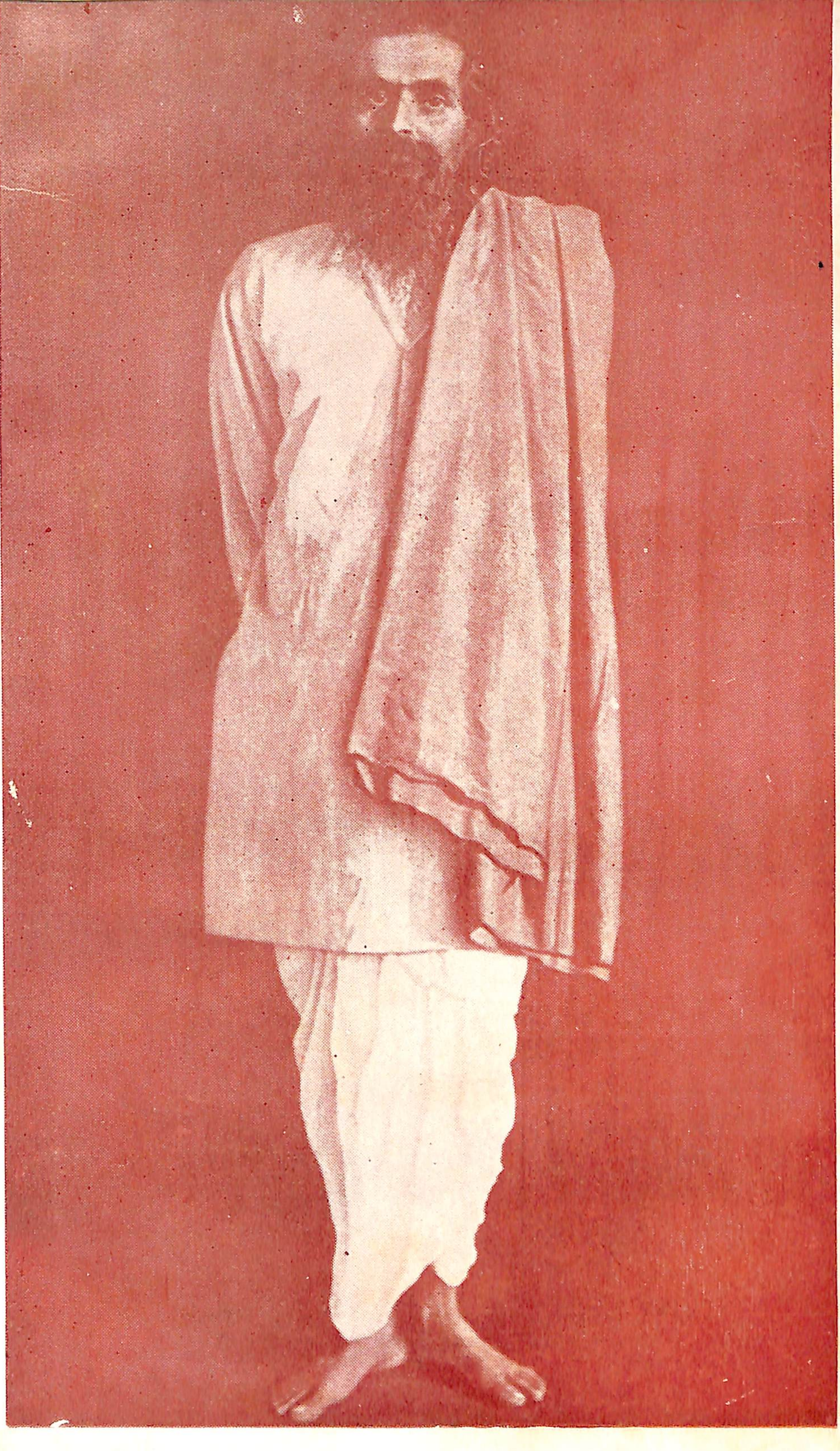
श्री गुरुजी–इसीलिये कि इस जीवन का उद्देश्य एक ही है और वह है संघ-कार्य। तीर्थ-यात्रा में जितने दिन लगेंगे, उतने दिन संघ-कार्य से छिन जायेंगे। इसका मुझे खेद है।

मुझे एक प्रकार से धक्का-सा लगा। श्री गुरुजी के हृदय में कर्तव्य की भावना कितनी प्रबल है ? वह तीव्र भावना इनको तीर्थ पर जाकर प्रभु के दर्शन करने की भी इजाजत नहीं देती। मुझे याद है, कुछ वर्ष पूर्व जब श्री गुरुजी की पूज्य माता जी के देहांत का समाचार मिला था तब मैंने सहानुभूति का पत्र लिखा था। उसका जो उत्तर आया, उस पत्र में इसी कर्तव्य भावना की व्याख्या है। उस चिट्ठी में श्री गुरुजी ने लिखा–

"आपका १६-८-६२ का स्नेह-भरा पत्र मिला। भगवत्स्मरण करते-करते शरीर-त्याग करने के कारण सद्गति निश्चित मिलती है। अतः पूज्या माता जी के परलोक के सम्बन्ध में चिन्ता नहीं है। मेरा वही एक अतीव प्रबल स्नेह का बन्धन मुझे सांसारिक जीवन से बाँध रखने वाला था, सो अब नहीं है। जीवन में कुछ रिक्तता कुछ सूनापन आया है। उसे कार्य से भरने

का प्रयत्न कर रहा हूं। अब यही एक आकर्षण है। इसके लिये ही मातृ-सुलभ इच्छा-आशा-आकांक्षाओं को हृदय से सर्वथा हटाकर पूज्या ताई ने मेरा मार्ग प्रशस्त किया था, उसमें आशीर्वाद पूर्वक प्रोत्साहन दिया था। इसी कार्य में रमकर मन शांत हो सकता है, प्रसन्न रह सकता है।"

●



: ७ :

ताई जी और भाऊ जी

(एक)

पूज्य माता-पिता से बातचीत

नागपुर में अखिल भारतीय बैठक थी। अन्तिम दिन श्री गुरुजी ने भोजन के लिये अपने घर पर बुलाया। श्री गुरुजी के पूज्य पिताजी, श्री गुरुजी और माननीय श्री भैयाजी दाणी खाने के लिये बैठे। श्री गुरुजी की एक रिश्तेदार महिला भोजन परोस रही थीं। महाराष्ट्रीय घरों में ऐसे अवसर पर प्रायः मीठी चीज अवश्य बनायी जाती है और उसे बार-बार आग्रह करके खिलायी जाती है। उस रोज घी में पूरी को खस्ता तलकर चीनी की चाशनी में डुबोकर लाया जाने लगा। परन्तु सबसे अधिक आग्रह तो श्री भैयाजी दाणी के साथ होना था, सो हुआ। दो, तीन, चार, पाँच, छः......सिलसिला चलता गया। उनकी सहायता करने अर्थात् उनका उत्साह बढ़ाने के लिये पूज्य माताजी अन्दर से बाहर आ गयीं। उन्हें देखकर श्री दाणीजी हँसकर कहने लगे–अच्छा, ताई भी आ गयी।

मैंने तो एक–दो ही ली। महिला ने जब आग्रह करने का यत्न किया तब श्री गुरुजी मेरी सहायता को पहुंचे। वे कहने लगे–'इन्हें उतना ही देना, जितना ये कहें।' वे जानते थे कि यह खा नहीं सकता। यदि खा जायेगा तो तबीयत की दृष्टि

से अनर्थ की पूरी-पूरी सम्भावना है। पूज्य पिताजी बूढ़े थे, तो भी उन्होंने इन पूरियों के साथ न्याय किया।

उस दिन पारिवारिक जीवन का वह आनन्द प्राप्त करके अपने को धन्य माना। परन्तु बाद में एक बार गुरुजी के पूज्य माताजी और पूज्य पिताजी तीर्थों की यात्रा के लिये निकले। तब कई-एक बातें करने का अवसर मिला। माताजी की साड़ी शायद दस बरस की पुरानी होगी। पिताजी की अवस्था देखकर कोई यह न कह सकता था कि ये कौन हैं। तीन जगह से फटी हुई धोती, साधारण कमीज और ऊपर कोट।

ये दोनों कमरे में बैठे थे कि एक स्वयंसेवक ने प्रश्न कर दिया—क्या आप हमें श्री गुरुजी के जीवन के सम्बन्ध में कुछ बताने की कृपा करेंगी ?

माता जी ने टाल दिया। परन्तु वहाँ इस प्रकार टलने वाला कोई न था। अन्त में इस प्रश्न के छोटे-छोटे टुकड़े कर दिये गये। उनके उत्तर माता जी ने देना स्वीकार कर लिया।

प्रश्न—गुरुजी ने संघ में कब और कैसे जाना आरम्भ किया ?

माताजी—हम नहीं जानते, क्योंकि उस समय ये काशी में पढ़ते थे। भैयाजी इनके मित्र थे। शायद उनके द्वारा ही यह सब कुछ हुआ।

प्रश्न—जब आपको इनके संघ में जाने के विषय में पता चला, तब क्या आपने इन्हें रोका ?

माताजी—नहीं, हमें इनको रोकने की क्यों जरूरत पड़ती ? संघ कोई बुरा थोड़े ही है। उस समय और अब भी हम यही सोचते हैं कि यह देश-सेवा का कार्य है।

प्रश्न—डाक्टर हेडगेवार से गुरुजी की जो बातें होतीं, उनके विषय में ये आपसे कुछ कहते थे क्या ?

माताजी—नहीं। ये तो दो-तीन बार उनके साथ प्रवास पर भी गये, परन्तु हमें मालूम नहीं हुआ।

प्रश्न—क्या आपको ऐसी आशा थी ?

माताजी—नहीं, हमने कभी ऐसा सोचा भी न था। हम कोई ज्योतिषी थोड़े ही हैं।

प्रश्न—यदि आपको ऐसा मालूम होता कि ये डाक्टर साहब के साथ दौरे पर गये हैं, तब आप क्या करती ?

माताजी—हाँ, फिर देखते।

प्रश्न—क्या गुरुजी छुटपन में शरारती थे ?

माताजी–ये कभी भी किसी से लड़े नहीं। कभी कोई विशेष शरारत नहीं की। कभी किसी ने आकर इनके विषय में मुझसे कुछ न कहा। हाँ, घर में इनका झगड़ा बड़े भाई से कभी-कभी हो जाता था। वह भी इस बात पर कि वह अपनी पुस्तकों को अच्छी प्रकार से सजाकर रखता और एक जगह आराम से बैठकर पढ़ता। लेकिन जब ये वहाँ पर पढ़ने के लिये बैठते तब किताबों की दुकान लगा लेते। बहुत जगह घेर लेते ओर कपड़ों पर किताबों पर कई जगह स्याही गिरा देते। इस पर वह इनको भगा देता–'चलो, मेरे यहाँ मत आया करो। अपना अलग पढ़ो।' तब ये नाराज होकर मेरे पास आकर कहते। मैं इनके बड़े भाई से कह देती–'भई, यह तुम्हारा छोटा भाई है।' बस ये इतने-से खुश हो जाते।

प्रश्न–आपने विवाह के विषय में तो इनसे कहा होगा ?

माताजी–हाँ, मैंने भी कहा और इन्होंने (पिताजी की ओर संकेत करके) भी कहा। सबने कहकर अपने-अपने चाव पूरे कर लिये हैं। परन्तु......(इसके बाद वे चुप हो गयीं।)

प्रश्न–आप क्या सोचा करती थीं ?

माताजी–हम सोचा करते थे कि सरसंघचालक बन जाने के पश्चात् ये इस कार्य को पूरा कर सकेंगे क्या?

प्रश्न–आप इनकी निगरानी तो करते होंगे?

माताजी–हाँ, थोड़ी-बहुत।

प्रश्न–आप अब भी करते हैं ?

पिताजी–अब तो प्रश्न ही नहीं उठता। डाक्टर साहब ने इनकी निगरानी करके बिल्कुल ठीक कर दिया है। अब उसकी आवश्यकता ही नहीं। फिर जब आप इतने लोग निगरानी करते हैं, तब हमारी निगरानी की क्या आवश्यकता है ?

प्रश्न–क्या गुरुजी घर पर रहते हैं ?

माताजी–नहीं, जब कभी नागपुर आते हैं, तब दिन में तीन बार घर पर आते हैं। एक बार प्रातः नहाने, फिर भोजन करने। शाम को तो दर्शन मात्र ही होता है।

प्रश्न–जब गुरुजी जेल गये थे, तब आप क्या सोचते थे ?

माताजी–पहले तो हम बहुत घबराये क्योंकि ये और शेष अधिकारी, जो इनके साथ नागपुर से गिरफ्तार किये गये थे, कत्ल के केस में जेल में

डाल दिये गये थे। हम सोचते थे कि अब क्या बनेगा? परन्तु जब यह मामला टल गया, तब कुछ न लगा।

प्रश्न—क्या लोगों ने आपके घर पर भी आक्रमण किये?

माताजी—हाँ, कई बार। एक बार तो वे अपने साथ-साथ कुछ लाल लाल भी लाये थे।

प्रश्न—तब आपने किया क्या?

माताजी—कुछ नहीं। पहले तो हम घबराये कि अब क्या होगा। (कुछ देर चुप रहने के बाद) हाँ, एक बार और भी। उन्होंने डाक्टर साहब की समाधि को तोड़ा और बड़ा हल्ला-गुल्ला करते रहे। परन्तु पाँच–छः दिन बाद ही जो उनके नेता थे, वे हमारे घर आकर हमसे क्षमा माँगने लगे। उन्होंने कहा—'हम समाधि को भी बनवा देंगे।' परन्तु भैयाजी नहीं माने। भैयाजी ने कह दिया—'अब कोई समाधि को हाथ न लगाये। हम खुद ही बनवा लेंगे।'

पिताजी और माताजी गंगोत्री और यमुनोत्री की और बदरीनाथजी की यात्रा करके लौट रहे थे। अब दिल्ली से कुरुक्षेत्र जाने का कार्यक्रम था।

●

(दो)

जा बाबा!

उस दिन अपराह्न में श्री गुरुजी को नागपुर से दौरे के लिये प्रस्थान करना था। सुबह आठ बजे एक स्वयंसेवक दौड़ता-दौड़ता कार्यालय आया और उसने श्री गुरुजी को सूचित किया—पूजनीया ताई को पक्षाघात का झटका लगा है।

सब लोग नागोबा की गली में स्थित ताईजी के मकान की ओर दौड़ पड़े। पूजनीया ताईजी ने स्नान समाप्त किया था और नित्यक्रम के अनुसार पार्थिव पूजा करने जा रही थीं, इसी बीच उन्हें यह झटका आया। प्राथमिक उपचार के पश्चात डाक्टर श्री ब० पाण्डे ने कहा—अब थोड़ी गर्म कॉफी लेकर ताई को लेटे रहना चाहिये। कुछ-न-कुछ गर्म पेय पेट में जाना आवश्यक है।

किन्तु ताई ने संकेत मात्र से इंकार कर दिया और सूचित किया कि उस अवस्था में भी पार्थिव-पूजा किये बगैर वे कुछ भी ग्रहण नहीं कर सकतीं। पहले ही दुर्बलता बहुत आ गयी थी और फिर पक्षाघात से पीड़ित हाथ से अधिक देर तक पार्थिव–पूजा की विधि सम्पन्न करवाना बहुत ही कठिन था, किन्तु ताई के आग्रह के कारण श्री मधु टिकेकर शुचिर्भूत होकर सामने आये। उन्होंने सारा कार्य कष्टपूर्वक सम्पन्न किया, फिर ताई ने थोड़ी कॉफी ली। किन्तु उनकी स्थिति गम्भीर ही थी। कार्यालय में चर्चा चल पड़ी। इस गम्भीर स्थिति में नागपुर छोड़ना श्री गुरुजी के लिये उचित नहीं रहेगा। पता नहीं, अकस्मात् कब क्या हो जाये? ट्रेन के समय से थोड़े समय पूर्व श्री गुरुजी ताई के पास जाकर खड़े हुए और पूछा–ताई! मैं जाऊँ?

उस अवस्था में भी ताई ने अति स्पष्ट स्वर में तुरन्त उत्तर दिया–जा! बाबा जा!

'और ताई! मैं जाऊँ?' यह सदैव पूछते रहने के लिये ही तो इस महा-पुरुष ने ताई की गोद में जन्म लिया था। और 'जा बाबा' ऐसा प्रसाद जीवन भर देते रहने के लिये ही उस महासाध्वी ने नौ मास तक गर्भधारणा के कष्ट सहन किये थे।

●

(तीन)

चिन्ता स्वास्थ्य की या काम की?

सन् १९४१ में नागपुर का संघ-कार्यालय माननीय श्री मनोहरराव ओक के घर (श्री मार्तण्डराव जोग के बाड़े नये शुक्रवारी) में था। श्री गुरुजी वहीं बैठते थे। टेकड़ी शाखा के कुछ स्वयंसेवक बन्धुओं के साथ नित्य क्रमानुसार हम लोग वहाँ गये हुए थे। दोपहर के दो बजे का समय था। श्री गुरुजी हम लोगों के साथ बैठे हुए थे। सम्भवत: माननीय श्री दत्तोपन्तजी देशपाण्डे भी वहीं पर थे और उन्हीं के साथ श्री गुरुजी को कहीं जाना था।

इतने में श्रद्धेया ताईजी (श्री गुरुजी की माताजी) वहाँ आयीं। उन्होंने श्री गुरुजी का हाथ अपने हाथ में लेकर उनकी नाड़ी की गति देखी। एक

छोटी-सी कटोरी में वे मधु ले आयीं थीं। उसमें उन्होंने औषधि की पुड़िया डाली और श्री गुरुजी से कहा—इसे ले लो और ओढ़कर पड़े रहो। शाम तक बुखार ठीक हो जायेगा। पर एक बात है कि दवा लेने के बाद कहीं जाना नहीं।

श्री गुरुजी बोले—दवा लेने के बाद कहीं नहीं जाना है न? ठीक है, तू यहाँ बैठी रह। मैं अभी जाकर आता हूं। ये दत्तोपन्तजी आये हैं, ये साथ में रहेंगे ही।

ताईजी के प्रति इस प्रकार कह कर और बिना किंचित् समय दिये श्री गुरुजी ने तुरन्त कोट पहन लिया तथा श्री दत्तोपन्तजी के साथ सीढ़ियों से नीचे उतर गये।

श्री गुरुजी ने अपने सारे जीवन भर काम की तुलना में अपने स्वास्थ्य की कभी चिन्ता की ही नहीं।

(चार)

सब कष्ट स्वीकार हैं

अपनी जिद पर अड़ी और परिस्थितियों से चिढ़ी सरकार ने श्री गुरुजी को सिवनी जेल से बेतूल जेल भेज दिया। यह स्थानान्तर कुएँ से निकालकर खाईं में ढकेलने के समान था। इसी बेतूल जेल में श्री गुरुजी के माता-पिता-श्री १८ जून को उनसे भेंट करने गये थे। तब श्री गुरुजी की दशा देखकर उनका हृदय रो पड़ा था। बाहर आने के बाद श्री ताईजी ने बतलाया—संघ-कार्य की प्रचण्ड व्याप्ति तथा अखण्ड-प्रचार के परिश्रम के कारण भी उसका स्वास्थ्य इतना खराब नहीं हुआ, जितना अब इस जेल में हो गया है।

रोटियाँ ऐसी दी जाती थीं कि जिन्हें पानी में भिगो देने के बाद ही पेट में उतारी जा सकती थीं। सुविधाओं के अभाव में जेल के कष्टों के कारण श्री गुरुजी का स्वास्थ्य यद्यपि गिर गया था, इस पर भी अपने स्वभाव के अनुसार उन्होंने न कभी कुछ कहा और न कभी कोई माँग की। वे सब कष्टों को चुपचाप स्वीकार करते रहे; चुपचाप सहन करते रहे।

श्री गुरुजी के गिरते स्वास्थ्य पर जब समाचार पत्रों में चिन्ता व्यक्त की

जाने लगी और सरकार के पास ढेर-के-ढेर पत्र तथा तार पहुंचने लगे तो मध्य-प्रदेश सरकार ने उनके स्वास्थ्य की स्थिति को देखने के लिये न्यायमूर्ति श्री मंगलमूर्ति को नियुक्त किया।

बाद में जेल से बाहर आने पर श्री गुरुजी ने विनोद की भाषा में कहा था—मेरा स्वास्थ्य देखने के लिये उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश को भेजा गया था। पहली बार मैंने जाना कि न्यायाधीश भी स्वास्थ्य की परीक्षा कर सकता है।

●

(पाँच)

'मधु' की माँ

तृतीय वर्ष की संघ-शिक्षा हेतु हम सभी नागपुर गये थे। शिक्षण के अन्त में पूज्य ताईजी (श्री गुरुजी की माताजी) के दर्शनार्थ उनके घर गये। ताईजी एक चटाई पर बैठी हुई आगत स्वयंसेवकों का अभिवादन स्वीकार करके उन्हें आशीष दे रही थीं। जब हमारी टोली उनके पास पहुंची तो उन्होंने पूछा कि तुम में से प्रचारक कितने हैं और कितने प्रचारक बनने वाले हैं ? नये-पुरानों का हिसाब लगाकर उन्होंने पहिले एक पुराने प्रचारक से एक प्रश्न पूछा—घर पर माँ है ?

उसने उत्तर दिया—जी, हाँ।

ताईजी ने फिर उससे पूछा—घर पर कभी जाते हो कि नहीं ?

एक सज्जन इसी बीच में बोल उठे—ताईजी ! गत आठ वर्षों से यह घर नहीं गया।

यह सुनते ही ताईजी कुछ अस्थिर-सी हो उठीं और बोलीं—माँ की सेवा करने निकले हो, लेकिन माता का दर्द उसकी ममता को नहीं पहिचान पाये। माँ का आशीष रहेगा, तभी भारत माता भी तुम्हारी सेवा स्वीकार करेगी। डरो मत। कोई भी माँ अपने बेटे को बड़ा बनाने वाले मार्ग में बाधक नहीं बनती। उसे क्या चाहिये—केवल बेटा और बेटे का सुख। जिस कार्य से बेटा सुखी होता होगा, उसके निमित्त वह आशीष अवश्य देगी। 'माँ' स्वार्थी नहीं

होती। अतएव बीच-बीच में उसके दर्शन करते रहा करो। उसकी हँसी में ही नहीं, उसके आँसुओं में भी बल होता है।

फिर नवीन प्रचारक बनने वालों से ताईजी बोलीं—तुममे से कोई बिना बताये भागकर तो प्रचारक नहीं बन रहा है ?

जब कोई कुछ नहीं बोला तो वे स्वयं कहने लगीं—भागकर मत जाना संघ-कार्य करने। इससे पलायन की प्रवृत्ति बढ़ती है। अपनी निष्ठा और श्रद्धा को इतनी बलवती बनाओ कि सबकी अनुमति मिल जाये। जानते हो, जब बेटा भागकर बिना बताये कहीं चला जाता है तो माँ पर कैसी बीतती है ? एक बार मधु (तुम्हारे सरसंघचालक गुरुजी) बिना बताये घर से चला गया। तीन-चार महीने घर वापस नहीं आया। मेरे अन्दर एक ऐसी बेचैनी जन्म लेने लगी कि मैं गम्भीर रूप से बीमार हो गयी। डाक्टर लोग हृदय रोग हो जाने की आशंका व्यक्त करने लगे। कोई भी औषधि लाभदायक सिद्ध नहीं हो रही थी। इसी बीच एक दिन अचानक मधु आ गया। उसे देखते ही मुझ में न जाने कहाँ से अपार शक्ति आ गयी। मैं बिस्तर से एकदम उठ खड़ी हुई। उसके लिये खाने-पीने का प्रबन्ध करने लगी। मधु मना करता रहा लेकिन मेरा जी मानता ही नहीं था। उसने कहा कि ताई तू बीमार है, इतनी दौड़-धूप न कर लेकिन मुझे बीमारी का आभास तक नहीं लग रहा था। सायंकाल उसने पूछा कि दवा-पानी सब ठीक है कि नहीं ? इस पर मैंने कहा कि सब ठीक है। अब तो तू ही दवा देगा तो मैं स्वस्थ हो सकूँगी।

इतना कह कर ताईजी कुछ क्षणों के लिये चुप हो गयी। थोड़ी देर बाद वे फिर बोलीं—वह डाक्टर नहीं है, लेकिन न जाने कौन-सी दवा लाकर उसने दी कि मैं तीन दिन के अन्दर चंगी हो गयी। जैसे मुझे कोई बीमारी ही नहीं थी। माँ की ममता ही उसकी शक्ति और बीमारी होती है, बेटे ! उसे दुखाना नहीं चाहिये। माँ भी बेटे का दिल कभी नहीं दुखाती। मैंने मधु को कभी अपने पास बैठे रहने के लिये नहीं कहा। इस गंगाजल जैसे पवित्र कार्य में जिस-जिस माँ का बेटा लगा होगा, वे सभी माताएँ धन्य हैं, उनकी कोख पवित्र हो गयी। माता की चरण-रज लेकर भारत माता की सेवा में चलो, सिद्धि अवश्य मिलेगी।

इतने में दूसरी टोली आयी तो हम लोग बाहर आ गये। रास्ते भर मैं सोचता रहा कि यदि माँ ऐसी देवी है तो बेटा देवता क्या नहीं होगा ?

(छः)

माँ के 'मधु'

श्री माधवराव सदाशिव गोलवलकर भले ही राष्ट्रीय-स्वयंसेवक-संघ के सर-संघचालक हों, भले ही जन-जन उन्हें श्री गुरुजी कहकर सम्बोधित करता हो और भले ही अनेकानेक व्यक्ति अपने हृदय में उन्हें गुरुवत् स्थान भी देते हों, कुछ भी हो, पर वे माधवराव अपनी माँ के 'मधु' ही हैं। संघीय विचार-धारा के व्याख्याता, राष्ट्र-भक्ति-मन्त्र के उद्‌गाता, व्यक्ति-व्यक्ति के हृदय-निधि और पवित्र ऋषि-जीवन के धनी होकर भी श्री गुरुजी का व्यवहार अपनी माताजी के प्रति बालकवत् ही होता था। श्री गुरुजी की गम्भीरता सर्व-विदित है, इसके बाद भी कई बार माताजी के सामने उनके व्यवहार में सुत-सुलभ-चापल्य की झाँकी मिल जाया करती थी।

श्री गुरुजी अपनी माताजी को ताईजी कहा करते थे। ताईजी के पास हम लोग बैठे हुए थे। वहीं पर श्री गुरुजी भी थे। ताईजी उठकर हम लोगों के मध्य प्रसाद का वितरण करने लगीं। हम लोग अपना-अपना हाथ फैला-कर प्रसाद ले रहे थे। प्रसाद का वितरण करते-करते थोड़-सा प्रसाद भूमि पर गिर पड़ा। तुरन्त श्री गुरुजी ने वह प्रसाद उठाकर ताईजी को दे दिया। प्रसाद देते हुए वे बोले—देख ! मैंने प्रसाद उठाकर तुमको दिया है। ला, अब मुझे भी प्रसाद दे।—इतना कह कर उन्होंने भी अपना हाथ सहज प्रकार से ताईजी के समक्ष फैला दिया।

इसे चपलता कहें अथवा वात्सल्य-रस का उद्रेक कहें ? श्री गुरुजी के व्यक्तित्व की एक छवि वह है जो मैं संघ-कार्य करते हुए जन-जन के बीच देखा करता हूं और उनके व्यक्तित्व की एक छवि यह है जो घर की चार-दीवालों के भीतर ताईजी के समीप देख रहा हूं। माता-पुत्र के मध्य प्रीति की इस सहज, छलकी छवि को देखकर हम सभी का अन्तर भीतर-ही-भीतर पुलकित हो रहा था।

एक छवि और देखने का सुन्दर अवसर मिला। एक बार ऐसा हुआ कि ताईजी ने मौन व्रत ले रखा था। श्री गुरुजी उनके पास बैठे हुए थे। मैं भी वहीं था, कुछ और लोग भी बैठे हुए थे। ऐसा लगा कि ताईजी कुछ बोलने वाली हैं। मौन का अभ्यास न रहने के कारण ही ऐसा हो जाया करता है। ज्यों ही श्री गुरुजी को इसका आभास मिला, त्यों ही उन्होंने कहा—बोलना नहीं है, बस, 'श्री हरिः शरणम्' 'श्री हरिः शरणम्' का जप

करती रहो। श्री गुरुजी के ऐसा कहते ही ताईजी मुस्कुरा पड़ी और उनकी बोलने की प्रवृत्ति शान्त हो गयी। फिर थोड़ी देर बाद ऐसा लगा कि वे कुछ बोलना ही चाहती हैं, तभी अँगुली से पुनः वर्जित करते हुए श्री गुरुजी ने कहा—'श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेव'। ताईजी पुनः मुस्कुराते हुए शान्त हो गयीं और जप करने लगी।

श्री गुरुजी सदैव ही अपनी ताईजी का बड़ा ध्यान रखते थे। नागपुर आने पर श्री ताईजी के दर्शनार्थ श्री गुरुजी प्रतिदिन जाया करते थे। ताईजी की बड़ी इच्छा थी कि चारोंधाम की यात्रा कर आऊँ। श्री गुरुजी ने ताईजी से कहा—'तुम चारों धाम जा करके क्या करोगी ? तू तो चारों धाम जाने की बात कहती है और देख, चारों धाम के लोग तेरे पास यहाँ ही आ जाते हैं।' इधर ताईजी से तो उन्होंने ऐसे कहा और वैसे उनके चारों धाम की यात्रा की सारी व्यवस्था श्री गुरुजी ने अत्यधिक श्रद्धा-पूरित-पुत्र की भाँति की।

●

(सात)

श्री गुरुजी का घर

नागपुर में मैं उनके घर गया हूं। एक टूटा-फूटा-सा निर्धनों का-सा छोटा-सा किराये का घर था। केवल माता-पिता थे, न भाई, न बहिन, न कोई सगा, न सम्बन्धी। माता-पिता के सन्तोषार्थ प्रवास से लौटते तो वे एक-दो बार घर पर जाते। माता-पिता परम सात्त्विक भोले-भाले। उस घर को देखकर कोई नहीं कह सकता था कि वह इतने ख्यातनामा महापुरुष का घर है। माता-पिता जब तक जीवित रहे, उस घर से सम्बन्धर्ता बना रहा। उनके देहान्त के पश्चात् संघ-कार्यालय का एक कोना—यही उनका निवास, कार्यालय तथा सब कुछ था। त्याग की वे सजीव मूर्ति थे।

तृष्णा उनके समीप फटकने नहीं पाती थी। न घर की कामना, न परिवार की कामना, न धन की कामना, न लोकेषणा की कामना। पद-प्रतिष्ठा पैसा, प्रमदा तथा कीर्ति जो लोक धर्म तथा जैव धर्म हैं, उन से वे बड़ी सावधानी से बचे रहते थे।

●

(आठ)

तब आँखों का बाँध टूट गया

पं० श्री मौलिचन्द्रजी से श्री गुरुजी के बारे में चर्चा चल रही थी। वे कुछ ऐतिहासिक घड़ियों का पुनरावलोकन कर रहे थे और अपनी श्रद्धाञ्जलि मुझसे लिखवा रहे थे। वे शब्द बोलते जाते और उस महापुरुष का स्मरण करके बीच-बीच में उनकी आँखें डबडबा जातीं, कभी-कभी वे फफक पड़ते थे।

तीन बार रूमाल निकालकर उन अश्रुकणों को उसमें समेटने का प्रयास किया, किन्तु जब जेल से रिहा होने के बाद गुरुजी के नागपुर पहुंचने पर उनकी माताजी के दर्शनों की स्मृति उन्हें आयी और उन्होंने उनके टूटे-फूटे मकान की चर्चा प्रारम्भ की तब नेत्रों काबाँध टूट पड़ा। वे बोले—श्री गुरुजी आदमी नहीं, देवता थे, ऋषि थे, भारतीयता की प्रतिमूर्ति थे। लोकमान्य तिलक ने मकान बनवाया, मालवीयजी भी अच्छे मकान में रहते थे, किन्तु उस महापुरुष के पूज्य माता-पिता उस टूटे-फूटे मकान में ही… उन्होंने राष्ट्र को ही अपना घर समझा।

(नौ)

आप धन्य हैं

सम्भवतः सन् १९५३-५४ की बात होगी। श्री गुरुजी के पूज्य माता-पिताजी श्रृंगेरी क्षेत्र की यात्रा पर गये थे। वहाँ श्रृंगेरीपीठाधिपति शंकराचार्य श्रीस्वामीजी महाराज के दर्शन करने की उनके मन में बड़ी इच्छा थी, किन्तु एक बहुत बड़ी बाधा उपस्थित हो गयी। पूज्य श्री स्वामीजी महाराज भगवच्चिन्तन तथा ध्यान-धारणा के लिये अर्न्तमुख रहते हुए अत्याधिक ऐकान्तिक जीवन तीन-चार मास से व्यतीत कर रहे थे। इस प्रकार की जानकारी मिलने के बाद एक प्रकार से यह निश्चित-सा हो गया कि उनके दर्शन नहीं मिल पायेंगे। फिर यह तय किया गया कि उनके दर्शन का तो सौभाग्य नहीं मिल सका तो कम-से-कम उनके निवास-स्थान का ही दर्शन

करके उसे प्रणाम कर लिया जाये। इसके लिए वे लोग 'नरसिंहवन' की ओर गये।

उनके साथ एक कार्यकर्ता भी था। उसने उस स्थान का दर्शन कराया, स्थान सम्बन्धी कई बातें बतलायी तथा कहा—पिछले चार मास से श्री स्वामीजी के निवास का द्वार नहीं खुला है। सौ० ताईजी और आदरणीय भाऊजी (श्री गुरुजी के माता-पिताजी) बन्द द्वार को ही प्रणिपात करके लौटने के लिये मन-ही-मन विचार कर ही रहे थे कि इसी बीच अचानक द्वार खुल गया और दोनों के सौभाग्य से स्वतः स्वामी श्रीशंकराचार्य जी महाराज द्वार पर खड़े दिखलायी दिये।

स्वामीजी ने कहा—आप गोलवलकर जी के माता-पिता हैं न? आइये, अन्दर आइये।

अचानक द्वार खुल जाने पर सबके आश्चर्य की सीमा नहीं रही। सब लोगों ने भक्तिभाव से साष्टांग प्रणाम किया और भीतर गये। श्री स्वामीजी महाराज ने ताईजी और भाऊजी से कहा—आपने देश को एक महापुरुष प्रदान किया है। आप धन्य हैं।

इस भाँति श्रीचन्द्रमौलीश्वरजी का प्रसाद अकस्मात प्राप्त हो जाने से सभी लोग प्रसन्न होकर वहाँ से लौटे।

: ८ :

मातृत्व की प्रतीक नारी

(एक)

मातृवत् परदारेषु

अपनी माँ के प्रति श्री गुरुजी के हृदय में बहुत ही स्नेह और आदर का भाव था। माँ के नाते से ही वे सभी महिलाओं को सम्बोधित किया करते थे। वे कहा करते थे—यही अपनी संस्कृति है।

सब महिलाओं के प्रति 'मातृवत् परदारेषु' के रूप में उनका व्यवहार होता था। ऐसा उनका स्वभाव ही बन गया था। कभी भी भाषण के समय प्रारम्भ में उन्होंने 'भाइयों और बहनों' कहा नहीं; सदैव 'भाइयों और माताओं' कहकर अपना भाषण प्रारम्भ किया।

मन पर संयम भी उनका उतना ही था। जब माता जी का देहान्त हुआ तो कार्यालय से घर गये। इन्होंने देखा कि प्राण-पखेरू तो उड़ चुके हैं। उन्होंने तुरन्त आवश्क निर्देश दिये कि नीचे उतारो, स्नान करवाओ। वे हर रोज पार्थिव पूजन किया करती थीं। इन्होंने वह पूजा भी करवायी पूरा सन्तुलन रखकर वे दुःखी तो बहुत हुए, पर उसमें बहे नहीं।

कांची कामकोटि पीठ के पूज्यपाद स्वामी श्री शंकराचार्यजी महाराज ने माँ की मृत्यु के बाद अपना आशीर्वाद भेजा। उन्होंने लिखा था—जिसने मातृभूमि को माता मान लिया है और जो उसकी सेवा करता है, उसे मातृ-वियोग हो ही नहीं सकता।

(दो)

नारी भगवती का रूप है

मैं एक स्थान पर एक विभाग का संघ-कार्य देखता था। श्री गुरुजी हमारे विभाग के कार्यकर्ताओं की एक बैठक ले रहे थे। बात-चीत के दौरान एक प्रमुख कार्यकर्ता के द्वारा वहाँ के संघ कार्यालय की समस्या की चर्चा निकल आयी, जिसमें उन्होंने यह कहा—कार्यालय की मालकिन एक महिला है, जिसका चरित्र ठीक नहीं है।

इतना सुनते ही श्री गुरुजी नाराज हो गये और बोले—इस प्रकार का विचार तुम्हारे मन में क्यों आया ?

कार्यकर्ता ने उत्तर दिया—यह उसका अपना निजी विचार नहीं है। जो बात पास-पड़ोस के मोहल्ले वाले जानते हैं, कहते हैं और जो सच्ची है, उसी को मैंने कहा है।

श्री गुरुजी ने बड़े आग्रह से कहा—तुम संघ के उत्तरदायित्व को लिये हुए एक अधिकारी हो। तुम्हारे मुँह से कौन से विचार एवं शब्द निकलने चाहिये, यह विवेक तुम्हें रखना होगा। इस विवेक की दृष्टि से देखोगे तो पता चलेगा कि मोहल्ले के लोग क्या कहते हैं, वह बात हमारे लिये इतने महत्व की नहीं है, जितनी यह बात कि अपने कार्य क्षेत्र के व्यक्तियों के बारे मेंऔर विशेष कर नारी-मात्र के बारे में तुम्हें किस प्रकार से सोचना चाहिए और क्या बोलना चाहिये ? यदि मोहल्ले वालों के ही स्तर पर उतर कर चलना है तो इस ईश्वरीय कार्य के सम्पादन में तुम्हें कैसे सफलता मिलेगी ?

उस समय तो मुझे यही लगता रहा कि कुछ भी सही, सच्चाई तो सच्चाई है। उसे भला कैसे नहीं कहा जाये ? किन्तु कुछ वर्षों के बाद स्वत: अनुभव होने लगा कि संघ-कार्य का सम्पादन हमसे कुछ असाधारण गुणों के विकास की अपेक्षा करता है और उनमें से यह एक दूरगामी परिणाम वाली बात श्री गुरुजी ने कही थी।

●

(तीन)

मातृशक्ति के उपासक

'कौन कहता है कि संघ में महिलाओं को स्थान नहीं ?'—श्री गुरुजी ने ज्यों ही प्रश्नकर्ता से यह प्रश्न उलटकर किया, वे तो अवाक् रह गये। यह

प्रसंग बम्बई में श्री भाई सेठ के यहाँ कई वर्ष पहले का है। वहीं एक सज्जन ने श्री गुरुजी से पूछा था—'संघ में महिलाओं को स्थान क्यों नहीं है ?' इस प्रश्न को सुनकर उल्टे उन्हीं से श्री गुरुजी ने प्रश्न किया था। प्रश्नकर्ता कुछ सोच नहीं पा रहे थे कि प्रखर वाणी में पूछे गये इस प्रश्न का उत्तर क्या दूँ।

प्रश्नकर्ता को हतप्रभ देखकर पहले तो श्री गुरुजी बहुत खुलकर हँसे और फिर बोले—'घबरा गया रे, घबरा गया यह तो।' इसके बाद वे प्रश्नकर्ता का समाधान करने लगे—प्रतिदिन शाखा में जाना, ध्वज-प्रणाम करना, संघ-स्थान पर खेलना, प्रार्थना करना ही क्या एकमेव संघ-कार्य है और यही एक मात्र संघ की कार्य-सीमा है ? शाखा में जाना तो संघ-कार्य के विशाल स्वरूप का एक अंग मात्र है। शाखा में महिलाओं के नहीं जाने से यह कैसे सिद्ध हो जाता है कि महिलाओं को संघ में स्थान नहीं है। वास्तविकता तो यह है कि संघ के कार्य का शुभारम्भ माताओं से ही होता है।

यह विषय ही ऐसा था कि मुझमें इस चर्चा को सुनने की रुचि उत्पन्न हो गयी। मैं तो वहाँ थी ही, मेरी तरह और भी कई बहिनें वहाँ थीं। उन सबमें भी उत्सुकता जाग उठी और हम सब एकाग्र चित्त से सुनने लगीं। श्री गुरुजी ने अपने भावों का और अधिक स्पष्टीकरण किया—छत्रपति श्री शिवाजी महाराज ने स्वराज्य संस्थापन किया था। इस स्वराज्य संस्थापन में प्रमुख भूमिका थी श्री जीजा बाई की, श्री शिवाजी की मातुश्री की। जब तक हमारी माताएँ जीजाबाई मातुश्री की तरह सुन्दर शिक्षा देकर और सुन्दर संस्कार डालकर शिवाजी के रूप में अपने बालकों का निर्माण नहीं करतीं, तब तक कैसे हिन्दू धर्म, हिन्दू समाज, हिन्दू राष्ट्र की रक्षा हो सकेगी और कैसे अपना समाज गौरवशाली और समृद्धशाली बन पायेगा ? सभी माताएँ अपने बच्चों का लाड़-प्यार करना चाहती हैं और यह स्वाभाविक भी है, पर अपने बच्चों को खिलाना-पिलाना-पहनाना और स्कूली शिक्षा दिलवाना, क्या इतना ही माताओं का कर्तव्य है ? फिर कैसे धर्म-प्रेम, देश-भक्ति, आत्मोत्सर्ग की भावनाएँ इन बालकों में उत्पन्न होंगी ? श्री जीजा बाई ने अपने बालक शिवा को इन सभी सद्‌गुणों से सम्पन्न बनाया था और इसी का सुन्दर परिणाम था स्वराज्य-संस्थापन। घर-घर में शिवाजी को उत्पन्न करने का कार्य अपनी माताओं को ही करना है। इस कार्य के सम्पन्न होने से संघ का वट-वृक्ष हरा-भरा सघन और अमर रहेगा। अपनी प्रत्येक जननी श्री जीजाबाई है और संघ-कार्य की सुदृढ़ नींव है। जिस-जिस माता के जीवन में श्री जीजाबाई जैसा मातृत्व जाग उठा है, उसका

घर ही संघ-स्थान है और संस्कार सम्पन्न सद्‌गुणी पुत्र का निर्माण करते समय उसके द्वारा संघ-कार्य ही हो रहा है।

यह सब मैं बैठी-बैठी सुन रही थी और मन-ही-मन सोच रही थी—श्री गुरुजी की माता जी, श्री ताईजी भी कैसी होंगी, जिन्होंने सच-मुच श्री जीजाबाई का नया उदाहरण प्रस्तुत कर दिया। श्री गुरुजी एक-एक महिला में शिवाजी की मातुश्री को नारी की मातृशक्ति को उद्‌बुद्ध रूप में देखना चाहते थे। प्रश्नकर्ता के मुँह को बन्द करने के लिये श्री गुरुजी ने ये सब बातें नहीं कही थीं, अपितु उन्होंने व्यक्त की थी अपनी सच्ची आकांक्षा, जो उनके हृदय में गहरे पैठी हुई थी। उनके अन्तर में एक आग थी—कैसे घर-घर की प्रत्येक माता श्री जीजाबाई बन जाये। श्री गुरुजी की बातों से कई बार ऐसा संकेत मिलता था कि आज की पुरुष-प्रधान-राजनीति में तथा राजनैतिक भ्रष्टाचार में महिलाओं के दुरुपयोग के बारे में वे बहुत चिन्तित रहते थे। श्री गुरुजी की मान्यता थी कि महिलाएँ अपने वास्त-विक स्वरूप मातृशक्ति को जाग्रत करके ही इससे बच सकती हैं। वे नारी मात्र को माता के रूप में देखते थे। स्वामी श्री विवेकानन्द के गुरुदेव श्री रामकृष्ण परमहंस की परम्परा में दीक्षित होने के कारण श्री गुरुजी स्वयं जगज्जननी माँ के अनन्य भक्त थे और वे महिला मात्र को मातृशक्ति का प्रतीक मानते थे, इतना ही नहीं, वे उस मातृशक्ति को महिला-महिला में जाग्रत देखना चाहते थे। एतदर्थ उनका प्रयास कम नहीं था। श्री गुरुजी का लाखों स्वयंसेवकों से परिचय था, परन्तु इस मातृशक्ति को जगाने के लिये, जगाने की विधि सिखलाने के लिये उनका हजारों-हजारों परिवारों से घनिष्ट सम्पर्क था। उन हजारों-हजारों परिवारों की छोटी-बड़ी सभी प्रकार की बातों से श्री गुरुजी परिचित रहा करते थे। उनके बच्चों के विवाह, लड़की की ससुराल, नये शिशु का जन्म, बालकों की बीमारी और उनकी शिक्षा, आय के लिये व्यवसाय आदि-आदि की जानकारी श्री गुरुजी को रहा करती थी तथा वे सबको समयोचित सुझाव तथा सहयोग दिया करते थे। उनके सम्पर्क में आने वाले परिवार की महिलाओं को उनसे सदा ही नयी प्रेरणा मिलती थी और उस प्रेरणा में ही संघ-कार्य का सन्देश रहता था। स्थान-स्थान के परिवार, परिवारों के एक-एक सदस्य यही मानते थे कि श्री गुरुजी हमारे कितने निकट हैं, मेरे कितने आत्मीय हैं। श्री गुरुजी के प्रति परिवार-परिवार में व्याप्त यह आत्मीय-भावना प्रकारान्तर से संघ-कार्य के विस्तार में सहायक ही होती थी।

श्री गुरुजी के महाप्रस्थान के बाद अनेकानेक परिवारों से श्री गुरुजी की वत्सलता-आत्मीयता-स्नेहिलता-पारिवारिकता आदि के कई मधुर प्रसंग मुझे सुनने को मिले। इन प्रसंगों को सुनकर यह बात मेरे मन में बार-बार आती थी कि केवल एक ही व्यक्ति का सम्पर्क इतने सारे परिवारों से कैसे हो सकता है। श्री गुरुजी में अवश्य ही कोई अदृश्य शक्ति रही होगी, जिसके बल पर वे अनेकों रूप धारण करके इतने सारे परिवारों से सम्बन्ध रखते होंगे। मधुर व्यवहार और प्यार वितरण के मूर्तिमान स्वरूप थे श्री गुरुजी। वे अनोखे थे मातृशक्ति के उपासक और उनकी उपासना का स्वरूप भी अद्वितीय था।

(चार)

उनकी मातृ-दृष्टि

उत्तर प्रदेश के एक बड़े नगर की बात। एक प्रमुख संघ-अधिकारी के पुत्र का यज्ञोपवीत था। बहुत-से स्वयंसेवक मौजूद थे। श्री गुरुजी भी पधारे थे। काम-काज में महिलाएँ भी रहती ही हैं। पर्दा आदि का झंझट नहीं था प्रसंगवशात् या स्वभाव की दुर्बलतावशात्, एक स्वयंसेवक की नजर किसी महिला की तरफ उठ गयी होगी, श्री गुरुजी ने उसे किस तरह देख लिया, पता नहीं। भीड़-भाड़ काफी थी, किन्तु बीच में चलते-फिरते पाँच-छः स्वयंसेवकों की एक टोली जब श्री गुरुजी के सामने पड़ गयी तो उन्होंने उस टोली को रोककर कहा—'महिलाओं के मुख की ओर नहीं, चरणों की ओर देखना चाहिये—इतना कहकर श्री गुरुजी आगे बढ़ गये। कोई संदर्भ नहीं, किसी व्यक्ति-विशेष की ओर इंगित भी नहीं। कोई जान ही नहीं सका कि श्री गुरुजी ने किसके लिये कहा है, यद्यपि उस टोली में वह स्वयंसेवक भी अवश्य रहा होगा और वह समझ भी गया होगा कि श्री गुरुजी ने उसे देख लिया है। सबकी दृष्टि में उसकी फजीहत भी बच गयी और सदा के लिये एक शिक्षा भी हो गयी।

कालान्तर में कई वर्षों के बाद उन्हीं सज्जन के यहाँ बेटी के विवाह का आयोजन हुआ। आमन्त्रण में श्री गुरुजी पधारे। महिलाओं से घर बाहर

भरा था। वर-वधू को आशिर्वचन के समय बड़े-बुजुर्ग पुष्पाक्षत डालकर आशीष देते हैं। पुरोहितजी मन्त्र-पाठ करते जाते हैं। आशिर्वचन के लिये श्री गुरुजी भी खड़े थे। बीच में वर-वधू। पुरोहितजी के मन्त्र-पाठ के समय श्री गुरुजी हाथ में पुष्पाक्षत लेकर निरन्तर नीचे दृष्टि गड़ाये हैं, सामने तमाम महिलाएँ खड़ी हैं। वर-वधू पर पुष्पाक्षत डालते समय भी श्री गुरुजी की दृष्टि पृथ्वी की ओर ही स्थिर रही। यह थी उनकी मातृ-दृष्टि !

(पाँच)

नारी : साक्षात् 'माँ'

सन् १९४९ की घटना है राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर लगाया गया अन्यायी प्रतिवन्ध दूर हो जा चुका था तथा श्री गुरुजी कारावास-मुक्त हो चुके थे। एक महिला अपनी आठ वर्षीय बालिका को लेकर श्री गुरुजी के दर्शनार्थ आयी और उनको सामने ही बैठा देखकर अपनी बालिका से बोली—गुरुजी के गले में पुष्पहार डालकर उनका अभिवादन करो।

पुष्पहार लेकर ज्यों ही बालिका श्री गुरुजी की ओर बढ़ी, त्यों ही गुरुजी ने जल्दी से खड़े होकर पुष्पहार गले पहनने के बजाय उसे हाथों-ही-हाथों विनम्रभाव से ले लिया और उसी क्षण उन्होंने बालिका के चरणों का स्पर्श किया।

श्री गुरुजी द्वारा ऐसा किये जाने पर महिला को तो बहुत ही आश्चर्य हुआ और कहने लगी—यह क्या किया आपने ? मैं तो अपनी बच्ची को आप से आशीर्वाद दिलाने लाई थी और एक आप हैं कि उसके चरण स्पर्श कर रहे हैं।

श्री गुरुजी ने विनम्र भाव से उत्तर दिया—आपके लिये वह बच्ची होगी, किन्तु मेरे लिये तो वह साक्षात् 'माँ' है।

उपर्युक्त घटना के कुछ ही दिनों के बाद की ही यह दूसरी घटना है। उस समय नागपुर की महिलाएँ जिनमें प्राय: तरुणियाँ ही बहुसंख्या में थीं, श्री गुरुजी के सम्मान में एक सभा के रूप में उपस्थित थीं। श्री गुरुजी भी वहाँ उपस्थित थे। जब श्री गुरुजी उनके समक्ष भाषण करने के लिये खड़े हुए तब उन्होंने उनको सम्बोधित किया—'आदरणीय माताओं'।

(छः)

महिलाओं के प्रति अगाध श्रद्धा

पूना के तिलक मन्दिर में महिलाओं ने श्री गुरुजी का स्वागत सत्कार किया। सम्मान प्रदर्शित करने की दृष्टि से उनको पहनाने के लिये एक पुष्पमाला का प्रबन्ध महिलाओं ने कर रखा था। अपने लिये लायी गयी पुष्पमाला को गुरुजी ने लोकमान्य तिलक की मूर्ति को पहना दिया और कहा—आज के समारोह को मैं माता द्वारा की गयी पुत्र की प्रशंसा मात्र मानता हूं।

महिलाओं के सम्बन्ध में वे कहते थे—मैं स्त्री और पुरुष को समान नहीं मानता। पुत्र माँ की समानता कैसे कर सकता है? मैं माता के रूप में परमात्मा को देखता हूँ।

महिलाओं के विषय में उनकी भावना अत्यन्त उदार एवं विशाल थी।

(सात)

माताएँ कुलाचार की रक्षा करें

श्री गुरुजी का जीवन महान योगी और तपस्वी का जीवन था। पूज्या श्री ताईजी (श्री गुरुजी की माता जी) के पास मैं अनेक बार गयी हूँ। एक बार मैंने सहज रूप से पूज्य श्रीताईजी से पूछा—अच्छा बताओ ताई! श्री रामदास स्वामी की माता जी श्री राणूबाई ने अपने पुत्र के रूप में रामदास को पाने के लिये भगवान सूर्य नारायण का व्रत किया था, पर आपने कौन सा व्रत किया था जो श्री गुरुजी जैसा पुत्र मिला।

पूज्या श्री ताईजी ने मुक्त हास्य किया, पर कुछ बोली नहीं। उनके न बोलने पर भी यह सही है कि उनके पवित्र परोपकारी एवं ईश्वर-भक्ति-पूर्ण जीवन की तपस्या का ही यह सुफल था।

एक बार मैं बहुत अस्वस्थ हो गयी। मुझे नागपुर लाये जाने के बाद मेरे मनमें बार-बार यही भाव उठता था कि श्री गुरुजी के दर्शन हो जायें तो मैं ठीक हो जाऊँगी, मेरी बीमारी भाग जायेगी। अस्वस्थता के कारण मैं स्वयं नहीं जा सकती थी। मैं विवश थी, किन्तु अन्तःकरण में इतनी तीव्र भावना थी कि एक दिन अकस्मात् ही स्वयं गुरुजी मुझे देखने के लिये

मेरे घर आये । श्री गुरुजी का दर्शन-लाभ मिलते ही मेरा स्वास्थ्य क्रमशः सुधरने लगा ।

एक बार संघ-शिक्षा-शिविर में मैं अपने पुत्र से मिलने गयी । स्मृति-मन्दिर की ऊपरी मंजिल पर श्री गुरुजी बैठे हुए थे । उनके पास कुछ अन्य लोग भी बैठे हुये थे । मुझे कुछ आवश्यक कार्य से अन्यत्र भी शीघ्र ही जाना था, अतः मैं अपने पुत्र से मिलकर नीचे से ही वापस जाने लगी । श्री गुरुजी ने मुझे देख लिया और बुलावा भेजा । मैं उनके पास पहुंची तो वे बोले—जिन स्वयंसेवकों की माताएँ हैं, वे अपने पुत्र से मिलने चली आती हैं, किन्तु मेरी माँ तो अब रही नहीं, फिर भला मुझसे मिलने कौन आयेगा ?

श्री गुरुजी यह बात अपने विनोदी स्वभावानुसार ही बोल गये थे, किन्तु मुझे अपनी भूल पर बड़ी आत्मग्लानि हो रही थी । फिर वे काफी देर तक पूज्या श्री ताईजी के बारे में अनेक संस्मरण सुनाते रहे ।

उन्होंने मुझसे पूछा—आप तो राजनीति के क्षेत्र में कार्य करती रहती हैं, क्या कभी घर में त्योहार पर्व कुलाचार आदि का पालन करती हैं या नहीं ? घर में आयी हुई नयी बहुओं को इन सभी बातों की शिक्षा देती हैं अथवा नहीं ।

मैं कुछ कहती, इसके पूर्व ही उन्होंने स्वयं कहा—राजनीति में सक्रिय भाग लेने के बाद भी अपने त्योहारों, पर्वों कुलाचारों को टिकाये रखना चाहिये ।

अनेक बार प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से वे मेरी सराहना करते रहे हैं । अहोरात्र राष्ट्र-चिन्तन करने वाले इन तपस्वी से सदा मार्ग-दर्शन मिलता रहे, उनके भाषण सुनने को मिले, यह अभिलाषा मनमें सदा बनी रहती । संघ के स्वयंसेवकों को तो यह अवसर सदा उपलब्ध होता रहता है, किन्तु मुझ जैसी महिला को भला वह कैसे मिले ? आखिरकार एक बार सन् १९६८ में नागपुर में अखिल-भारतीय-महिला-अध्ययन शिविर के अवसर पर श्री गुरुजी के नागपुर-वास्तव्य का लाभ उठाने की दृष्टि से मैंने उनसे आग्रह-पूर्वक यह अनुरोध किया कि वे हमारा मार्ग-दर्शन करें । श्री गुरुजी अपने व्यस्त कार्यक्रमों के बाद भी मेरा अनुरोध अस्वीकार नहीं कर पाये । वे महिलाओं के शिविर में आये और अपने भाषण की अत्यन्त स्पष्ट सुलझी हुई ओजपूर्ण वाणी के द्वारा सारी महिलाओं के लिये भावी जीवन की निश्चित दिशा बतला गये ।

(आठ)

मैं किसी भी महिला से नहीं मिलता

सन् १९७१ की घटना है। मदरास में संघ-शिक्षा-शिविर लगा हुआ था। इस शिविर में श्री गुरुजी का आगमन हुआ था। सरकारी सेवा से निवृत्त एक सज्जन उनसे मिलने के लिये गये। उनकी पत्नी की भी श्री गुरुजी के दर्शन करने की बड़ी इच्छा थी, परन्तु स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण वे न आ सकीं। उन सज्जन की पत्नी की धारणा ऐसी थी कि गुरुजी न तो महिलाओं से मिलते हैं और न वे किसी स्त्री से बातचीत करते हैं। मेरा उनके साथ परिचय होने से मैंने उनको बताया—उनकी वह धारणा सही नहीं है।

दोपहर विश्राम के बाद हम श्री गुरुजी से मिलने गये। वे सज्जन भी मेरे साथ थे उन सज्जन की पत्नी की जैसी धारणा थी, उसकी चर्चा मैंने श्री गुरुजी सामने चला दी। उस समय श्री गुरुजी ने उत्तर दिया, उसकी स्मृति आज भी मुझे होती रहती है। वे बोले—उनका कहना सही है। मैं तो किसी भी महिला से न मिलता हूं, न बोलता हूँ।यह वस्तुस्थिति है। मैं तो उनके भीतर से अभिव्यक्त होने वाले मातृत्व से मिलता और बोलता हूँ अतः उन्होंने आपसे जो कहा वह सही है।

इस वाक्य का एक-एक शब्द उनके अन्त करण की निर्मलता का परिचायक है। अपनी संस्कृति को जीवन में साकार करने वाले उस महापुरुष के उपयुक्त उद्गारों के माध्यम से अभिव्यक्त होने वाला उनका व्यक्तितव, मुझे दिव्य और अलौकिक प्रतीत हुआ।

●

(नौ)

बड़ों के प्रति आदर

सन् १९७१ की बात है। श्री गुरुजी इन्दौर आये हुये थे। अपने नये मकान में उन्हें भोजन के लिये मैंने आमन्त्रित किया था और वे आये भी। प्रथम मंजिल में बैठक थी, दूसरी पर रसोई बनाने की और तीसरी मंजिल

पर भोजन करने की व्यवस्था की गयी थी। अत्यन्त आनन्ददायक वातावरण में भोजन का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। लौटते समय नीचे उतरने के बाद श्री गुरुजी को स्मरण हो आया कि पूज्य माताजी को प्रणाम करना वे भूल ही गये। मैंने कहा—मैं अभी उन्हें यहीं बुलवाये देता हूँ।

गुरुजी ने मेरे अनुरोध को अस्वीकार करते हुए कहा—अरे, जिन्हें नमस्कार करना है, जिनके चरण छूने हैं, उन्हें नीचे बुलवा करके वन्दन करना कहाँ की बुद्धिमानी है?

और यह कहते ही वे स्वयं तेजी से तीसरी मन्जिल तक पुनः चढ़कर माताजी के चरण छु आये।

(दस)

सहज स्फूर्तिवान

जो लोग श्री गुरुजी के दर्शन करने के लिये नागपुर में आ रहे थे, उन्हें सख्ती के साथ सूचित कर दिया जाता था कि वे ऐसा कुछ न करें अथवा कहें, जिससे श्री गुरुजी को बोलना पड़ सकता हो, लेकिन श्री गुरुजी सहज रूप से सक्रिय एवं स्फूर्तिवान ही रहते थे। सात अप्रैल को मिलने के लिये आनेवाले में प्रमुख थे सतारा के श्री केलकरजी शास्त्री और नागपुर टाइम्स के सम्पादक श्री अनन्तराव शेवड़े। मिलने के लिये आनेवाले संघ-परिवार के अनगिनत लोगों से श्री गुरुजी का परिचय बहुत ही घनिष्ठ था। वर्धा जिला के संघचालक की वृद्धा माताजी श्री गुरुजी के दर्शन के लिये आयीं। वृद्धावस्था के कारण उनकी नजर धुंधली हो गयी थी। वे श्री गुरुजी को स्पष्ट रूप से देख नहीं सकती थीं। लेकिन इसकी आवश्यकता भी नहीं थी। स्वयं श्री गुरुजी अपनी कुर्सी से उठ खड़े हुए और उनका आशीर्वाद लेने के लिये उन्होंने उनके चरण-स्पर्श किये। इससे पूर्व कि वे वृद्धा माताजी श्री गुरुजी के स्वास्थ्य के बारे में कुछ पूछना आरम्भ करें, स्वयं श्री गुरुजी ने अपने आत्मीय ढंग से उनवृद्धा के और उनके परिवार के अन्य सभी सदस्यों के बारे में पूछताछ प्रारम्भ कर दी।

: ९ :

प्रीति की प्रतिमा

[एक]

वाई के क्षय-चिकित्सालय में

एक सज्जन को क्षयरोग हो गया। डाक्टरों के परामर्श से वे वाई (जिला सतारा) के क्षय-चिकित्सालय में भरती हो गये। उक्त सज्जन किसी समय संघ के साधारण स्वयं-सेवक रहे थे और संघ-कार्य में विशेष रुचि न होने के कारण धीरे-धीरे संघ से उनका संबंध विच्छेद हो गया था। श्री गुरुजी से उनका सामान्य-सा परिचय था।

संयोगवश इसी बीच श्री गुरुजी का सतारा में कार्यक्रम निश्चित हुआ। उन्हें स्मरण हो आया कि अमुक सज्जन क्षय-रोग से ग्रस्त होकर वाई के चिकित्सालय में आ गये हैं। तत्काल श्री गुरुजी ने वाई होकर आगे के दौरे पर जाने का निश्चय किया। वहाँ जाकर वे उक्त सज्जन से मिले तथा पूछ-ताछ के पश्चात् उन्हें आवश्यक हिदायतें दी और तब कहीं आगे बढ़े। सामान्य-से-सामान्य व्यक्ति के प्रति भी श्री गुरुजी के अन्तर में कितना प्रेम भरा था और उसके सुख-दु:ख की वे कितनी चिन्ता करते थे।

भगवान् की कृपा से उक्त सज्जन स्वस्थ होकर जब मुझसे मिले और उक्त घटना का वर्णन किया, उस समय उनकी आँखें भर आयीं।

(दो)

आत्मीयता

मैंने अपने पुत्र दिलीप को पढ़ाई के लिये बम्बई में एक रिश्तेदार के यहाँ रखा था। वे महोदय सरकारी नौकर थे। उन्होंने शाखा में न जाने की शर्त पर ही उसे अपने घर पर रखना स्वीकार किया था। दिलीप के मन में बड़ी उथल-पुथल मचने लग गयी। एक दिन वह बिना किसी को कुछ पूछे–बताये वहाँ से चल दिया। रिश्तेदार ने मुझे तार भेजा। मैं दौड़ा-दौड़ा बम्बई पहुंचा। खोजबीन शुरू हो गयी। उन दिनों श्री गुरुजी बम्बई में थे। मैंने उन्हें सब बातें बतायीं। उन्होंने कहा–घबड़ाइये नहीं। सब ठीक हो जायेगा, दिलीप वापस आ जायेगा।

कुछ दिन बाद दिलीप वापस आ गया और उसने एअरफोर्स में नौकरी कर ली।

श्री गुरुजी जब पूना के संघ-शिक्षा-वर्ग में आते हैं तब मैं उनसे मिलने जाया करता हूं। प्रति वर्ष के अनुसार श्री गुरुजी से मिलने के लिये मैं पूना गया। बौद्धिक के समय में कुछ परिवर्तन कर दिया गया था। अतः मुझे देरी हो गयी। परिणामस्वरूप मुझे भीतर प्रवेश नहीं मिला और मैं बाहर ही बैठा रहा।

बौद्धिक समाप्त करके श्री गुरुजी सरसराते हुए मेरे सामने से निकले, वे मोटर में बैठे और स्टार्ट होकर मोटर वेग से चलने लगी। मैं देखता-का-देखता ही रह गया। भेंट नहीं हो सकने का दुःख तो मेरे मन में था ही। थोड़ी दूर आगे जाने पर, न मालूम क्यों, वह मोटर रुकी। श्री गुरुजी मोटर से नीचे उतरे और द्रुतिगति से मेरी ओर आने लगे। मैं भी कौतूहलवश आगे बढ़ा। मेरे निकट पहुंचते ही श्री गुरुजी ने कहा–देखिये, दिलीप मुझे बंगलोर में मिला था। भोजन के लिये वह मेरे पास बैठा था। उसका स्वास्थ्य ठीक है। शीघ्र ही उसका तबादला हैदराबाद होने वाला है। उसने मुझे कहा है कि वह आपसे हैदराबाद में मिलेगा।

तब तक मोटर आ गयी थी। श्री गुरुजी उसमें बैठे और मोटर वेग से चली गयी। दूसरे प्रान्त के संघ-शिक्षा-वर्ग में उन्हें पहुंचना जो था। इतनी सब दौड़ धूप के होते हुए भी उन्होंने मुझे भीड़ में देख लिया, गाड़ी रोककर तत्परता से वे उतरे, मेरे पास आये, स्मरणपूर्वक उन्होंने मेरे पुत्र के बारे में चार शब्द कहे, यह सब आत्मीयता देखकर मैं भाव-विभोर हो उठा।

(तीन)

जन-जन के प्रति निजत्व

एक सन्त सज्जन का श्री गुरुजी से घनिष्ट परिचय था। उन्होंने एक धार्मिक पुस्तक लिखी थी और वे चाहते थे कि इसका प्रकाशन गोरखपुर के गीता प्रेस से हो जाये। उन्होंने अपनी मन की इच्छा श्री गुरुजी के समक्ष व्यक्त की। श्री गुरुजी ने उनके पुस्तक की हस्तलिखित प्रति श्री पोद्दारजी के पास गीतावाटिका (गोरखपुर) भेज दी। श्री गुरुजी के द्वारा भेजी जाने के कारण श्री पोद्दारजी यह चाहते थे कि वह पुस्तक अवश्य प्रकाशित हो जाये, परन्तु अनेक प्रकार की बाधाओं के कारण वह पुस्तक मुद्रित नहीं हो पायी। वे सज्जन भी बहुत दिनों तक धीरज सँजोये-सँजोये सोचते रहे कि कभी तो पुस्तक छपेगी ही, पर क्रमशः उनकी आशा समाप्त हो गयी। निराश होने के बाद खिन्न वाणी में उन्होंने श्री गुरुजी से कहा—पुस्तक तो छप नहीं पायी, अब वह पाण्डुलिपि ही वापस मँगवा दें।

श्री गुरुजी ने स्वयं पत्र लिखा कि वह हस्तलिखित प्रति वापस भेज दी जाये। उसकी वापसी के लिये स्मरण-पत्र भी लिखा, मानो उन्हीं का कार्य हो, परन्तु पत्रिका-सम्पादन तथा साहित्य-प्रकाशन के कार्य की अधिकता के कारण वापसी का कार्य नहीं हो सका। मैं संघ-शिक्षा-शिविर में गया हुआ था। दर्शन करने की भावना से जब मैं श्री गुरुजी के पास गया तो उन्होंने मुझसे कहा—आप गीतावाटिका जा करके वह हस्तलिखित प्रति वापस भिजवा दें। मैं जानता हूं कि गीता प्रेस के पास कार्य और समस्याएँ कम नहीं हैं और इसी कारण उसकी वापसी का काम नहीं हो पा रहा है। आप स्वयं जायेंगे तो कार्य शीघ्र हो जायेगा। पुस्तक-लेखक के मन में पाण्डुलिपि की प्राप्ति के लिये त्वरा का होना स्वाभाविक ही है।

न जाने कैसे इन छोटी-छोटी बातों को, संघ-कार्य से अतिरिक्त ऐसी-ऐसी अनेक बातों को श्री गुरुजी अपने ध्यान में रख पाते थे? कुछ भी हो, श्री गुरुजी ने विशेष रूप से कहा था, अतः मैंने भी इस कार्य में विशेष रूप से रुचि ली। संघ-शिक्षा-शिविर से गोरखपुर लौटने पर मैं गीतावाटिका गया। श्री पोद्दारजी के साथ काम करने वाले एक-दो व्यक्तियों से मैं मिला। किञ्चित् प्रयास के उपरान्त खोजते-खोजते वह हस्तलिखित प्रति मिल गयी। 'कल्याण' पत्रिका के सम्पादकीय विभाग ने वह हस्तलिखित प्रति श्री गुरुजी के पास नागपुर वापस भेज दी।

मैं सोच रहा था कि श्री गुरुजी को हस्तलिखित प्रति के भेज दिये जाने

की सूचना पत्र लिख कर दूंगा, पर मैं तो सोचता ही रह गया और दस दिन के अन्दर श्री गुरुजी के हाथ का लिखा पत्र मुझे मिल गया था। पत्र में हस्तलिखित प्रति की प्राप्ति की सूचना थी तथा मेरे प्रयास के प्रति साधुवाद व्यक्त किया गया था। मुझे अपने प्रमाद पर थोड़ी शर्म आयी, पर साथ ही मैं विस्मय करने लगा कि इतना व्यस्त जीवन, फिर इस साधारण-से कार्य के लिये अपने हाथ से पत्र-लेखन, और फिर बिना विलम्ब साधुवाद-ज्ञापन। अपने निजी सचिव श्री आबाजी थत्ते को प्राप्ति सूचना दे देने के लिये वे कह सकते थे, परन्तु इतना भी उनको अभिप्रेत नहीं था। श्री गुरुजी का आजीवन आग्रह बना रहा स्वतः पत्र लिखने का। एक बार श्री गुरुजी से कहा भी गया–इस प्रकार की छोटी-छोटी बातों से सम्बन्धित पत्र तो आप दूसरों से भी लिखवा सकते हैं।

श्री गुरुजी ने बड़े मधुर ढंग से समझाया–अरे भाई! दूसरों से पत्र लिखवाने पर पत्र के अक्षर तो सुन्दर अवश्य होंगे पर प्रथम बात तो यह है कि दूसरों से लिखवाने से सामने वाले को पूर्ण परितोष नहीं होता। और इससे भी बढ़कर विशेष बात यह है कि निजत्व की भावना हाथ से लिखने के लिये विवश कर देती है। अब मैं क्या करूँ?

●

(चार)

बात छोटी, पर आदर्श

विवेकानन्द शताब्दि समारोह की समारोपात्मक सभा चिटनिस पार्क में हो रही थी। उस विशाल सभा के मंच पर विराजित थे श्री के० बी० एल० सेठ, जो मध्य-प्रदेश-शासन में पहले मुख्य सचिव रह चुके थे। उनकी रुग्ण धर्मपत्नी नीचे कुर्सी पर बैठी हुई थी। बीमार होने के कारण चढ़ना उतरना-उठना-बैठना उनके द्वारा अधिक सम्भव नहीं था। सभा समाप्त होने के बाद श्री सेठजी ने श्री गुरुजी से प्रार्थना की कि उनकी पत्नी आपके दर्शन एवं आशीर्वाद के लिये उत्सुक हैं। श्री गुरुजी उनकी पत्नी के पास गये और उनसे उनके स्वास्थ्यादि के बारे में पूछताछ की। इसके बाद श्री गुरुजी ने श्री सेठजी से इनके जाने की व्यवस्था के बारे में पूछा। श्री सेठजी की कार

दूर खड़ी थी। श्री गुरुजी की कार सामने खड़ी थी। श्री गुरुजी ने अपनी कार को हटवाया और श्री सेठजी की कार को वहाँ लाने के लिये कहा। इस प्रबन्ध में बहुत ज्यादा समय लग गया, पर अन्त तक श्री गुरुजी वहीं खड़े रहे। कार के आ जाने पर श्री गुरुजी ने बड़े स्नेह और सम्मान के साथ श्री सेठजी की पत्नी को कार में बैठाया।

श्री गुरुजी के इस मधुर व्यवहार से श्री सेठजी का मन अत्यधिक प्रभावित हुआ। श्री सेठजी इतने प्रभावित थे कि एक बार एक सभा में भाषण देते हुए उन्होंने कहा—मैंने ऐसें-ऐसे मन्त्री भी देखे हैं कि राजभवन से निकलते समय यदि उनकी कार मेरी कार के पीछे रह जाये तो उनका क्रोध सातवें आसमान पर चढ़ जाता था, पर यहाँ श्री गुरुजी का उदाहरण न्यारा ही है कि उन्होंने मेरी पत्नी के आराम के लिये अपनी कार हटवा दी और मेरी कार निकटतम स्थान पर बुलवा ली। छोटी-छोटी बातों से किसी का हृदय कैसे जीता जाता है, इसका यह अनुपम आदर्श है।

●

(पाँच)

व्यवहार में आत्मीयता

श्री गुरुजी का हर-शब्द हर-कृति हर-व्यवहार उनकी महानता को अभिव्यक्त करता था। मुझ जैसे सामान्य व्यक्ति के साथ भी उनका व्यवहार कितना आत्मीयतापूर्ण था, इसका एक ही प्रसंग उनके सम्पूर्ण जीवन की झलक प्रस्तुत करने में समर्थ है। बात कुछ वर्ष पहले की है। अपने भाई का दुःखद समाचार पाकर मैं अपने ग्राम बँधावा चला गया, जो रींवा जिले में पड़ता है। वहाँ मुझे श्री गुरुजी का एक सान्त्वनापूर्ण पत्र मिला। 'परम मित्र मंगल प्रसाद, के सम्बोधन से पत्र की शुरुआत देखकर ही मैं उस व्यक्ति की महानता का रहस्य समझ सका। मुझ जैसा सामान्य रसोइया भी उनका 'परम मित्र' बने, इससे बढ़कर और कौन-सा सौभाग्य हो सकता है?

इतना कहते-कहते श्री मंगल प्रसाद का गला रुँध आया। श्री मंगल प्रसादजी मिश्र नागपुर संघ कार्यालय में प्रमुख रसोइया के रूप में कई वर्षों से कार्य कर रहे हैं। कार्यालय में रहने वालों को तथा समय-समय पर

आने वाले संघ के विभिन्न पदाधिकारियों को आहार में किन-किन पदार्थों की आवश्यकता है और किस-किस की रुचि किस-किस में है, इन सभी बातों का वे सावधानीपूर्वक ध्यान रखते हैं। श्री गुरुजी की बीमारी के दिनों में चिकित्सकों के निर्देशानुसार उनके लिये विशिष्ट प्रकार का आहार तैयार करने का दायित्व भी श्री मंगल प्रसाद पर ही था। वे स्वयं विशेष सावधानी के साथ श्री गुरुजी के लिये आहार तैयार करते और उनके कमरे में ले जाते। श्री गुरुजी ने कभी उस आहार के बारे में कोई शिकायत नहीं की अपितु सदा ही श्री मंगल प्रसादजी की भावनाओं को सम्मान देते। सन् १९७१ की एक घटना श्री मंगल प्रसादजी ने स्वयं ही बतायी।

'कैन्सर की शल्य-चिकित्सा के बाद श्री गुरुजी नागपुर लौटे। उन दिनों मैं नित्य ही दवाई तैयार करके उन्हें दिया करता था। एक दिन श्री गुरुजी ने कहा—'बस, अब दवाई देना बन्द करो।' श्री गुरुजी द्वारा मना किये जाने के बाद भी मैं दूसरे दिन पुनः दवाई लेकर पहुंचा। दवाई देखते ही उन्होंने कहा—'क्यों, आबा ने ही कहा होगा, जाओ, उनको ही दे दो।' 'यह सुनकर मैंने कहा—नहीं मैं स्वयं हा तैयार करके लाया हूं। ऐसा कहते ही उन्होंने तुरन्त दवाई ले ली।'

(छः)

वह प्रेम मिलन

पूज्य श्री गुरुजी के इक्यावनवें जन्म-दिवस का अभिनन्दन-समारोह कानपुर में मनाया जा रहा था। इस विशाल कार्यक्रम के अध्यक्ष पूज्य श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी महाराज थे। श्री महाराजजी को प्रयाग से पहुंचने में देर हो गयी। संघ का कार्यक्रम समय से प्रारम्भ हो जाना चाहिये, इसलिये श्री महाराजजी के न पहुंचने पर भी समारोह का कार्यक्रम समय से ही प्रारम्भ कर दिया गया। इधर मंच पर श्री गुरुजी के स्वागत में भाषण हो रहा था और उधर श्री महाराजजी अपनी कार से उतर कर मंच की ओर बढ़ रहे थे। श्री गुरुजी ने श्री महाराजजी को आते हुए देख लिया, वे तेजी से मंच से उतरे और श्री महाराजजी के सामने चरण-स्पर्श के लिये झुके।

श्री महाराजजी ने स्वयं झुक कर उनको बीच में ही रोक लिया और दोनों परस्परालिगन में आबद्ध हो गये। सहस्रों लोगों ने वह प्रेम मिलन देखा और दोनों के जय-जय कार के नारे फूट पड़े।

(सात)

चादर की सुवास

सन् १९६६ में सर्वदलीय-गोरक्षा-महाभियान-समिति ने गो-हत्या-बन्दी के लिये एक बहुत बड़ा आन्दोलन किया था। इस समिति के कार्यों का संचालन-सूत्र 'सर्वोच्च-समिति' के हाथ में था। सर्वोच्च-समिति के सदस्य कई पूज्य जन थे, पुरी के श्री शंकराचार्यजी महाराज, श्रीकरपात्राजी महाराज, श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी महाराज, श्रीगुरुजी, श्री हनुमान प्रसादजी पोद्दार आदि कुल सात व्यक्ति। इस आन्दोलन के अवसर पर श्री ब्रह्मचारी जी ने गो-रक्षा के लिये आमरण अनशन के कठोर व्रत का संकल्प कर लिया और व्रत की घोषणा भी कर दी। श्री गुरुजी को यह समाचार मिला तो वे बड़े चिन्तित हुए तथा कहा—'महाराजजी ने हमें बतलाया तक नहीं और बिना सलाह किये ही इतना कठिन पग उठा लिया'। परन्तु सार्वजनिक घोषणा के बाद निर्णय-परिवर्तन का कोई प्रश्न रहा ही नहीं। श्री ब्रह्मचारीजी के साथ-साथ पुरी के श्री शंकराचार्य जी महाराज ने भी आमरण अनशन का व्रत ले लिया। श्री ब्रह्मचारीजी ने अपने व्रत को आरम्भ किया वृन्दावन में और पुरी के श्री शंकराचार्य जी महाराज ने दिल्ली में।

एक महीने के अनशन में श्री ब्रह्मचारीजी अतिशय अशक्त हो गये। मैं उस समय प्रयाग विश्वविद्यालय से लगभग पूर्ण अवकाश लेकर कभी श्री ब्रह्मचारीजी के पास, कभी उनका कोई सन्देश लेकर दिल्ली एवं कभी संघ-कार्य के दौरे पर रहा। अनशन के साथ-साथ दिल्ली में सत्याग्रह भी चल रहा था। दिन-प्रति-दिन सत्याग्रहियों की संख्या बढ़-बढ़ कर जाने लगी। कई सहस्र सत्याग्रही तो मथुरा मण्डल से ही गये थे। ज्यों-ज्यों दिन व्यतीत होने लगे, त्यों-त्यों मथुरा के आस-पास का वातावरण बड़ा उग्र होने लग गया।

श्री ब्रह्मचारीजी के शरीर के दुर्बल होने के साथ-साथ अब अनशन का प्रभाव मस्तिष्क पर भी पड़ने लगा। नींद प्रायः लुप्त हो गयी। कोई विषय दिमाग में बैठ जाता तो घण्टों उसकी ही चर्चा करते रहते। सर्दी के कारण शरीर को अत्यधिक कष्ट होता क्योंकि अन्दर गर्मी देने वाला कोई पदार्थ था ही नहीं। कमरे को गर्म करने के लिये और सेकने के लिये अँगीठी रखी जाती तो उसका धुंआ कमरे के वायुमण्डल को और भी विचित्र बना देता। श्री गुरुजी का नाम बराबर उनकी जिह्वा पर रहता।

इसी बीच सर्वदलीय-गोरक्षा-महाभियान-समिति की एक बैठक दिल्ली में हुई थी। बैठक में भाग लेने के लिये श्री गुरुजी आये थे और अपना परामर्श देकर चले भी गये, परन्तु श्री ब्रह्मचारीजी की स्थिति अतिशय खराब हो जाने पर श्री गुरुजी को फोन किया गया। श्री गुरुजी उन दिनों केरल के प्रवास पर थे। प्रवास को तुरन्त स्थगित करके वे वृन्दावन आये। इसी अवसर पर सर्वोच्च-समिति की एक बैठक भी वृन्दावन में श्री ब्रह्मचारीजी के आश्रम पर रखी ली गयी। श्री ब्रह्मचारीजी की स्थिति को देखकर श्री गुरुजी अत्यधिक चिन्तित हुए।

मथुरा के कलक्टर तथा पुलिस अधिकारी भी बहुत परेशान थे। सरकारी अधिकारियों को ऐसा लग रहा था कि यदि श्री ब्रह्मचारीजी को 'कुछ' हो गया तो बहुत बड़े स्तर पर हिंसा आरम्भ हो सकती है। श्री गुरुजी को तो लगा कि अब वह स्थिति आ गयी है कि सर्वोच्च-समिति श्री ब्रह्मचारीजी से अनशन त्यागने के लिये आग्रह करे। परन्तु समिति के लोग तथा कुछ प्रमुख जन हिचक रहे थे। स्वामी श्री करपात्रीजी महाराज, प्रो० रामसिंह आदि अभी अनशन चलाने के पक्ष में थे। उनका कहना था कि यदि अनशन तोड़ दिया तो हम लोग जनता को क्या मुंह दिखलायेंगे। इस पर श्री गुरुजी ने जोरदार शब्दों में कहा—'अनशन-विसर्जन का सारा दोष आप लोग मेरे ऊपर डाल दें। मुझे जनता का कोई भय नहीं है और मुझे कभी वोट माँगने उसके पास जाना नहीं है।' श्री गुरुजी ने व्यक्तिगत रूप से श्री ब्रह्मचारीजी से भी कहा—'अनशन से गोरक्षा हो सकती तो मैं कब का अनशन करके प्राण त्याग कर देता। हम लोग यदि जीते रहेंगे तो इसके लिये पुनः पुनः प्रयत्न करते रहेंगे। आप रस लीजिये'।

परन्तु उस समय अनशन का परित्याग नहीं हुआ। श्री गुरुजी के अनुरोध से श्री ब्रह्मचारीजी ने देर तक उबाला हुआ जल अधिक मात्रा में लेना स्वीकार कर लिया, जिसमें स्वाभाविक लवणों की मात्रा कुछ अधिक हो

जाती है। श्री गुरुजी के जाते समय प्रीति का एक अनोखा दृश्य देखने को मिला। जब श्रीगुरुजी जाने लगे तो श्री ब्रह्मचारीजी ने श्री गुरुजी से उनकी शाल माँगी और कहा—तुम तो यहाँ जल्दी आ न पाओगे, परन्तु इस चादर में तुम्हारी सुवास से मैं तुम्हारा स्मरण कर लिया करूँगा और तुम्हारी निकटता का अनुभव कर लूंगा।

अश्रुपूर्ण नेत्रों से शाल देते हुए श्री गुरुजी ने विदायी ली। जाते समय श्री गुरुजी ने मुझसे कहा—दौरा और कार्यक्रम है, उसे पूरा करना है, पर मेरा मन यहीं लगा रहेगा।

●

(आठ)

ऐसे क्षमाशील ऐसे आत्मीय

दिल्ली में संघ के कार्य-विस्तार का श्रेय मुख्यतः श्री वसंतराव ओक को है। मेरा श्री वसंतराव से बड़ा निकट सम्पर्क था। मैं जब भी दिल्ली जाता तो वे सदा मेरे पास स्नेहवशात् आते। कई एक बार वे मेरे साथ भिक्षा में भी जाते। आगे चलकर संघ और भारतीय-जन-संघ को लेकर उनका संघ से मतभेद हो गया। उन्होंने संघ से अपना सम्बन्ध संकुचित कर लिया। फिर गृहस्थ जीवन अंगीकार करके अन्य-अन्य सामाजिक कार्यों को करने लगे। यद्यपि संघ से उनका सम्बन्ध सिमट गया था, फिर भी मुझसे सम्पर्क बना रहा। बीच-बीच में वे मेरे पास वृन्दावन आया करते थे और जब मैं दिल्ली जाता तो वे मुझसे मिला करते थे।

गोरक्षा के प्रश्न को लेकर वृन्दावन में मेरा कठोर अनशन व्रत चल रहा था। इससे मेरे सभी स्नेही बड़े चिन्तित थे। श्री वसंतराव भी अत्यन्त दुखी थे। वृन्दावन में वे एक दिन मेरे पास बैठे हुए थे। तभी अचानक श्री गुरुजी मुझसे मिलने आ गये। मेरे अनशन के कारण श्री गुरुजी भी बड़े व्यग्र बने रहते थे। वे भी मेरे पास आकर बैठ गये।

मैं बहुत दिनों से सोच रहा था कि श्री वसंतराव के लिये श्री गुरुजी से कुछ कहूं, किन्तु ऐसा कोई उपयुक्त अवसर मिल ही नहीं पा रहा था। आज

समुचित अवसर देखकर मैंने बात छेड़ दी। श्री गुरुजी से मैंने कहा—ये श्री वसन्तराव ओक हैं, दिल्ली के नेता हैं। आप इन्हें जानते हैं क्या ?

तब श्री गुरुजी हँसकर बोले–'हाँ, कुछ-कुछ तो जानता हूं।' इतना कह कर वे खिलखिलाकर हँस पड़े।

मैंने श्री गुरुजी से कहा—'आप इन्हें क्षमा कर दीजिये।' इसके बाद मैंने फिर श्री वसंतराव से कहा—'गुरुजी के पैर छुओ।'

श्री वसंतराव ने तुरन्त आज्ञा का पालन किया और उठकर साश्रु नेत्रों से बड़ी श्रद्धा-भक्ति-सहित श्री गुरुजी के पर छुए।

श्री गुरुजी ने अत्यन्त स्नेह पूर्वक उन्हें गोदी में भर लिया और गद्‌गद् वाणी से बोले—महाराज! अपना ही बच्चा है।

मैंने कहा—इन्हें कोई काम दीजिये।

श्री गुरुजी ने कहा—अच्छी बात है, सोचूंगा।

पीछे श्री गुरुजी ने उन्हें वनवासियों का काम दिया, श्री शिवाजी के राज्याभिषेक की तीन सौ वर्ष की त्रिशताब्दी एक वर्ष तक मनायी जाने वाली थी, उसका कार्य श्री वसंतराव को सौंपा गया, और भी कई कार्य बताये गये। ऐसे क्षमाशील, ऐसे आत्मीय थे श्री गुरुजी। एक बार जिसे अपना लिया, फिर जीवन भर वे उसे छोड़ना जानते ही नहीं थे।

(नौ)

छोटे आग्रहों का भी आदर

एक बार एक स्वयंसेवक ने साम्यवाद के विरोध में एक छोटी-सी पुस्तक लिखी। उसका आग्रह था कि यह पुस्तिका श्री गुरुजी अवश्य पढ़ें। इसलिये मैंने उस स्वयंसेवक का श्री गुरुजी से परिचय करा दिया था। उस स्वयंसेवक ने अपनी पुस्तक श्री गुरुजी को भेंट स्वरूप प्रदान की।

इसके तीसरे दिन मेरे पास श्री गुरुजी का एक पत्र उस पुस्तिका के सम्बन्ध में आया। पत्र में लिखा था कि जाते समय ट्रेन में ही उन्होंने वह पुस्तक पढ़ ली थी। पुस्तक में दिये गये तर्कों के बारे में उनका जो अभिमत था, उसे भी श्री गुरुजी ने अपने पत्र में लिखा था उस स्वयंसेवक को बता

देने के लिये। छोटे-से-छोटे स्वयंसेवक की छोटी-से-छोटी बात की भी श्री गुरुजी बड़ी चिन्ता किया करते थे।

(दस)

संकोच की दीवाल क्यों ?

संघ-शिक्षा-शिविर के एक शिक्षार्थी स्वयंसेवक बन्धु ने एक दिन श्री गुरुजी को एक पुस्तक भेंटस्वरूप प्रदान की। लेकिन यह भेंट उसने स्वयं न देकर अपने मित्र-स्वयंसेवक द्वारा भिजवायी। श्री गुरुजी को इस बात का पता चला। इससे वे अप्रसन्न हुए। उन्होंने उस स्वयंसेवक को बुलाकर उससे एक सवाल पूछा—क्या हम आपके दर्शन के काबिल नहीं हैं ?

अपने आस-पास संकोच अथवा और किसी कारण से उत्पन्न होने वाली दीवाल श्री गुरुजी पसन्द नहीं करते थे। परन्तु न जाने क्यों, यह सवाल सुनते ही उस स्वयंसेवक की आँखों में आँसू भर आये। मैंने देखा—कुछ ही क्षणों के पश्चात् श्री गुरुजी उस स्वयंसेवक की पीठ पर हाथ रखे हुए थे।

(ग्यारह)

गणवेष ठीक कर दिया

वर्ष १९७१ की घटना है। प्रोद्दत्तूर में श्री गुरुजी के आगमन पर एक कार्यक्रम रखा गया था। इसमें सभी स्वयंसेवकों को गणवेष में उपस्थित होना था। संघ का गणवेष मेरे लिए नया ही था, अतः में उसे ठीक ढंग से पहनने का प्रयास कर रहा था। बार-बार ठीक करने के बाद भी कुछ-न-कुछ भूल रह ही जाती थी।

मेरी परेशानी श्री गुरुजी के ध्यान में आ गयी। वे तुरन्त मेरे पास आये

और उन्होंने स्वयं ही मेरी भूल सुधार दी। मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था कि सरसंघचालक स्वयं मेरे गणवेष के प्रति इतनी दिलचस्पी लेंगें।

(बारह)

भावना का भाव भराआदर

श्री गुरुजी स्वयंसेवकों की भावनाओं का बहुत ध्यान रखते थे। एक बार श्री गुरुजी अजमेर से इन्दौर ट्रेन द्वारा जा रहे थे। रास्ते में ट्रेन लगभग दो घण्टा रतलाम में खड़ी रहती है। वह समय भोजन का भी रहता है। स्टेशन के पास ही रहने वाले एक स्वयंसेवक श्री गोपालराव के घर श्री गुरुजी का भोजन था। समय काफी था इसलिये यह विचार किया गया कि रतलाम शाखा के स्वयंसेवकों की एक बैठक भी बुला ली जाये।

उस दिन ट्रेन देरी से आयी। अब समय इतना नहीं था कि भोजन और बैठक दोनों कार्यक्रम हो सकें। श्री गुरुजी ने भोजन का कार्यक्रम छोड़कर बैठक में ही जाने का निश्चय किया। बैठक का कार्यक्रम पूर्ण होने पर श्री गुरुजी स्टेशन पर वापस आ गये। स्वाभाविक रुप से श्री गोपालराव को दुःख हुआ और ट्रेन के छूटते समय उसकी आँखों में आँसू झलकने लगे। यह बात तत्काल श्री गुरुजी के ध्यान में आ गयी। उन्होंने तुरन्त श्री गोपालराव से कहा—मैं परसों पुनः इधर से ही निकल रहा हूं। जाते समय भोजन तुम्हारे ही यहाँ करूँगा।

श्री गुरुजी केवल एक समय दोपहर में भोजन किया करते थे। जिस दिन श्री गुरुजी को इन्दौर से चलना था, उस दिन इन्दौर में दोपहर का भोजन करने से उन्होंने इंकार कर दिया। भोजन किया, दोपहर को नहीं, शाम को रतलाम आ करके श्री गोपालराव के घर। कितना ध्यान रखते थे वे स्वयंसेवकों की भावनाओं का?

श्री गुरुजी के व्यक्तित्व का बड़ा लुभावना पहलू था अनगिनत परिवारों तथा स्वयंसेवकों से घरेलू आत्मीयता का निर्माण। सबको स्मरण रखने की उनमें विलक्षण शक्ति थी। एक बार जिस किसी से उनकी पहचान हो गयी, फिर वे उसे भूलते नहीं थे। प्रवास के निमित्त उन्हें हजारों घरों में ठहरने

का अवसर मिलता था। इन सभी परिवारों में वे आत्मीयता की सुगन्ध फैला देते थे। देश के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में इतने अधिक लोगों को नाम से जानने वाला और अगणित घरों में अपने पत्र तथा प्रसन्नता से घुलने मिलने वाला कोई दूसरा अखिल भारतीय नेता दृष्टिगोचर नहीं होता। यही कारण है कि श्री गुरुजी की प्राण-ज्योति के अस्त हो जाने के बाद लाखों लाखों आबाल-वृद्धों को अपने निकटवर्ती जन के चल बसने का-सा दुःख हुआ।

●

(तेरह)

वे पुरानी बातें

नागपुर में एक दिन श्री गुरुजी रुईकर पथ के दायीं ओर के फुटपाथ से जा रहे थे। हम लोग भी साथ ही थे। श्री परशुरामपंत बढिये का मकान उसी फुटपाथ से सटा हुआ है। श्री बढियेजी अपने घर के बाहर ही खड़े हुए थे। श्री गुरुजी ने उनसे तीन-चार मिनट तक बातचीत की और फिर आगे बढ़े।

कुछ ही दूरी पर सिलाई की एक दूकान थी। उसके मालिक दूकान के सामने खड़े थे। मेरी उनसे पहिचान थी। वे उत्कृष्ट मल्लखम्भ-पटु थे। हम दोनों ने एक-दूसरे को अभिवन्दन किया। मैं आगे बढ़ा ही था कि अपने पीछे हँसी का ठहाका सुनकर मैं ठिठक गया। मैंने पीछे मुड़कर देखा कि श्री गुरुजी सिलाई-दूकान के मालिक से गले लगकर मिल रहे थे। चकित मन से मैं सोच रहा था कि श्री गुरुजी की इस व्यक्ति के साथ मित्रता कैसी? मैं निकट गया। मैंने देखा कि दूकान के मालिक श्री नामपल्लीवार संकोच में पड़े हुए कह रहे थे—गुरुजी। आप क्या कर रहे हैं? कहाँ आप और कहाँ मैं, क्या कोई बराबरी है?

प्रसन्न वदन श्री गुरुजी ने कहा—कितने वर्षों के बाद हम दोनों मिल रहे हैं? क्या तुम्हें याद है, जब हम दोनों नागपुर व्यायामशाला में मल्लखम्भ का अभ्यास किया करते थे? मुझे तुम्हारी मल्लखम्भ की छलांगें अब भी स्मरण होती हैं। तुमसे मिलते ही वे सब पुरानी बातें याद हो आयीं।

श्री नामपल्लीवार ने गद्‌गद्‌ स्वर में कहा–गुरुजी ! आप जैसे बड़े व्यक्ति मुझ जसे साधारण व्यक्ति को नहीं भूले, यह मेरा सौभाग्य है ।

●

(चौदह)

स्नेह कभी न तोड़ें

जबलपुर के वकील श्री केकरे और उनका संपूर्ण परिवार कम्युनिस्ट विचारधारा का था । मुझे आश्चर्य यह था कि श्री गुरुजी जब भी जबलपुर जाते, श्री केकरे वकील के यहाँ ठहरते । मुझसे रहा नहीं गया और एक बार मैंने श्री गुरुजी से पूछ ही लिया–वह परिवार तो कम्युनिस्ट है, फिर भी आप उन्हीं के यहाँ ठहरते हैं ?

श्री गुरुजी ने कहा–वह मेरा पुराना मित्र है । जब मैं संघ में नहीं था और वह भी कम्युनिस्ट नहीं था, तब से मेरा और उसका प्रगाढ़ सम्बन्ध है । स्नेह कभी तोड़ना नहीं चाहिये । इसके अतिरिक्त मनुष्य को किसी भी समय सत्य की अनुभूति हो सकती है । भविष्य में वह भी संघ की चिन्तन-पद्धति के अनुसार ही विचार करने लगेगा, इसमें मुझे संदेह नहीं है ।

●

(पन्द्रह)

मेरे लँगोटिया दोस्त

जिन्हें आज सारा भारत श्रीगुरुजी कहता है, उन्हें मैं बचपन में 'मधु' कहा करता था । हम दोनों एक कक्षा में साथ-साथ पढ़ा करते थे । खण्डवा के राजकीय हाई स्कूल के हम दोनों छात्र थे ।

एक बार नगर में प्रोफेसर कारलेकर का ग्रैण्ड सर्कस आया । हम दोनों की सर्कस देखने में बड़ी रुचि थी । सर्कस के वन्य पशुओं को देखने के लिये हम दोनों गये । सिंह-चीता आदि हिंस्र पशु पिंजरों में इधर से उधर घूम रहे थे । उस सर्कस में एक पिंजरे के अन्दर दो बन्दर थे, एक काले मुंह का और

दूसरा लाल मुँह का। हम दोनों ही उनके पिंजरे के सामने जा करके खड़े हो गये और उनकी उछल–कूद देखने लगे। देखने में बड़ा मजा आ रहा था। दर्शकों की भीड़ में दो-तीन अँगरेज सैनिक भी खड़े थे। बन्दरों की उछल-कूद देख करके मधु भी उसी तरह उछल-कूद रहा था।

मधु की उछल-कूद देखकर उनमें-से एक अँगरेज सैनिक ने व्यंग्य स्वर में मधु से चिल्लाकर कहा–अरे ओ, कल-मुंहे बन्दर !

मधु ने उस अंगरेज सैनिक की ओर देखा और तुरन्त उसी स्वर में तपाक से जवाब दिया—अरे ओ, लल-मुंहे बन्दर !

सैनिक लपककर मधु को पड़कना चाहा, पर मधु उस अँगरेज सैनिक के हाथ नहीं आया। फिर उसने मधु का पीछा किया, पर मधु तो भीड़ में गुम हो चुका था।

बचपन के दिनों की उन बातों को एक जमाना गुजर गया। ३५ साल बाद मैंने मधु को इन्दौर में देखा संघ के सरसंघचालक के रूप में। बचपन में मुझे इस बात की एक क्षण के लिये भी कल्पना नहीं आयी थी कि भविष्य में मधु का व्यक्तित्व इस प्रकार निखर उठेगा और वह लाखों स्वयंसेवकों का श्रीगुरुजी बन जायेगा। मेरे मन में बड़ा संकोच था कि अब उससे मिलूं अथवा नहीं मिलूं। पता नहीं मधु मुझे पहचानेगा या नहीं। मेरी इच्छा के विपरीत मेरा एक मित्र मुझे घसीटकर जबरदस्ती वहाँ ले गया, जहाँ वे ठहरे हुए थे। उस कमरे में वे संघ के कार्यकर्ताओं से बातचीत कर रहे थे। कमरे में जाकर मैं एक किनारे बैठ गया। पर यह क्या हुआ? मुझे बैठे-बैठे एक-दो मिनट ही बीते होंगे कि वह 'मधु' अपने उच्च आसन से उठकर, उतरकर धीरे से सीधे मेरे पास आया और मुझे अपनी बाँहों में कस लिया। बाँहों में भींचे-भींचे ही उन्होंने उपस्थित लोगों से कहा–यह है मेरा प्रिय मित्र बाबू, मेरे लँगोटिया दोस्त।

मेरा हृदय भर आया था, मैं कुछ बोल नहीं सका। बस, हृदय की उमड़न आँखों की राह से बहने लगी, बरसने लगी।

: १० :

पारिवारिक आत्मीयता

(एक)

मैं अपने घर जाऊंगा

मदरास में जबसे संघ-कार्य का प्रारम्भ हुआ, तबसे उसके प्रति सहानुभूति रखने वालों में से श्री परशराम जी भी एक थे। उनके पुत्र कुछ वर्षों तक संघ के प्रचारक भी रह चुके थे एक बार वे श्री गुरुजी को अपने घर आमन्त्रित करने के लिये उनके पास आये और बोले—गुरुजी ! आज दोपहर के समय आपको मेरे घर पर आना चाहिये।

गम्भीरता पूर्वक श्री गुरुजी बोले—हम आपके घर नहीं आयेंगे।

यह उत्तर बड़ा अटपटा लगा और लोग सोचने लगे कि श्री गुरुजी ऐसा क्यों कह रहे हैं। लोग कुछ अन्यथा प्रकार से सोचने लगें, इसके पहले ही श्री गुरुजी ने तुरन्त स्पष्ट किया—वह घर मेरा है। मैं अपने घर अवश्य जाऊँगा। अतः आपके घर जाने का सवाल ही नहीं उठता।

सब लोग यह बात सुनकर हँस पड़े।

(दो)

आत्मीय का अन्न परान्न कैसे

पूजनीय श्री गुरुजी एक स्थान पर किसी प्रतिष्ठित सज्जन से मिलने गये। उनके साथ स्थानीय कार्यकर्ता भी थे। बातचीत जब समाप्त होने वाली थी, तब प्रमुख कार्यकर्ता ने उन सज्जन से कहा—श्री गुरुजी कल मेरे यहाँ भोजन करने के लिये पधारेंगे, आप भी मेरे यहाँ आवें और उनके साथ भोजन ग्रहण करें। यह आपसे मेरी नम्र प्रार्थना है।

तब वे सज्जन बोले—आपके इस निमन्त्रण को मैं एक शुभ अवसर मानता हूँ, परन्तु यह मेरे भाग्य में नहीं है। मैं भोजन नहीं कर पाऊँगा। परान्न ग्रहण न करने का मेरा नियम है।

तब श्री गुरुजी ने तत्काल कहा—परान्न ग्रहण न करने का मेरा भी नियम है। मैं इस नियम का तत्परता से पालन करता हूं।

सब लोग अचम्भित होकर देखने लगे। उन सज्जन ने भी साश्चर्य स्वर में पूछा—यह कैसे हो सकता है? आप तो कल इनके यहाँ भोजन करने जा रहे हैं।

श्री गुरुजी ने कहा—इनके यहाँ का अन्न परान्न कैसे हो सकता है? क्या ये पराये हैं? नहीं। ये अपने हैं। स्वकीय हैं। ये पूर्णतया आत्मीय हैं।

●

(तीन)

व्यावहारिक जीवन में सहयोग

उनकी आत्मीयता का वर्णन किन शब्दों में करूँ? हमारे घरेलू तथा व्यावहारिक जीवन में भी घर के वरिष्ठ व्यक्तियों की भाँति श्री गुरुजी से ही मार्गदर्शन की हम अपेक्षा करते थे। अड़चनों के समय वे हमें रास्ता दिखाया करते थे, इतना ही नहीं, यथावसर सहयोग देकर वे उन अड़चनों को दूर भी किया करते थे।

एक बार एक जटिल समस्या सामने आ गयी। मैंने अपने घर की एक

लड़की का विवाह संघ के एक अच्छे कार्यकर्ता से तय किया था। किन्तु पिशुन लोगों को विघ्न डाले बिना चैन नहीं पड़ती। कुछ विघ्नकर्ता लोगों ने मेरी माता जी को यह बताया कि जिससे लड़की का विवाह होना है, वह वर जाति से ब्राह्मण नहीं, तेली है। इससे मेरी माता जी का मन क्षुब्ध हो उठा। वे श्री गुरुजी के घर गयीं और श्री ताईजी (श्री गुरुजी की पूज्य माताजी) से मिलीं। माताजी ने अपने मन का आक्रोश श्री ताईजी के सामने व्यक्त किया। श्री गुरुजी पास ही बैठे हुए अपनी आह्निक पूजा कर रहे थे। श्री गुरुजी ने भी वह आक्रोश सुना। आह्निक पूजा सम्पन्न होने पर श्री गुरुजी ने मेरी माता जी से पूछा—वर तेली है, यह बात किसने कही?

माँ ने बताया--उस व्यक्ति के पिता की तेल-घानी है और वे लोग तेली हैं, ऐसा मुझे पता चला है।

श्री गुरुजी ने हँसते हुए कहा—'वे सज्जन तो तेल घानी के व्यवस्थापक हैं और जाति से ब्राह्मण हैं।' मेरी माताजी से इतना कह कर और मुड़ कर वे श्री ताईजी से कहने लगे—मैं तो ब्रह्मचारी हूं, मुझे तो लड़की है नहीं, किन्तु यदि मेरी कोई बहिन होती तो उसका विवाह उस कार्यकर्ता से करने में तुम्हें कोई आपत्ति होती क्या?

श्री ताईजी ने प्रसन्न स्वर में कहा—बिल्कुल नहीं। मैं तो बड़े उत्साह से यह कार्य सम्पन्न कराती।

बस, मेरी माताजी के मन का सारा कल्मष निकल गया। फिर आगे सब बातें ठीक प्रकार से हुईं।

(चार)

परिवार में रुकने के अभ्यासी

संघ पर से प्रतिबन्ध उठने के बाद एक बार श्री गुरुजी मैनपुरी आये थे। सभी स्वयंसेवकों में बड़ा उत्साह था। इस छोटे से नगर में हम किस प्रकार उनका योग्य स्वागत कर सकें, यह हमारी प्रबल इच्छा थी। एक सुन्दर कोठी माँग कर हमने उनके ठहरने की व्यवस्था की थी। जिसकी

कोठी में श्री गुरुजी के ठहरने की व्यवस्था की गयी थी, वह व्यक्ति स्वयं-सेवक नहीं था।

नगर से बाहर ही हमने श्री गुरुजी का स्वागत किया। बातचीत में ही यह जानकर कि आवास की व्यवस्था किसी स्वयंसेवक के परिवार में नहीं है, उन्होंने कहा—क्या तुम्हारे पास मकान नहीं है ? मैं वहीं ठहरूँगा।

मेरा मकान पुराना तथा जैसा-तैसा ही था। मैं बड़े संकोच में पड़ गया। उन्होंने फिर कहा—क्या अपने परिवार में ठहराना नहीं चाहते ?

विनय-पूर्वक मैंने कहा—वह स्थान आपके लिये उपयुक्त नहीं है इसलिये हमने आपकी आवास व्यवस्था अलग की है।

श्री गुरुजी मुक्त कण्ठ से हँसे और कहा— चलो, अब तो वहीं रुकूंगा।

घर में प्रवेश करते ही उन्होंने कहा—कितना साफ सुथरा है ? अरे, मैं धर्मशाला में नहीं, परिवार में ही रुकने का अभ्यासी हूँ।

हम सभी गद्‌गद् हो गये थे।

●

(पाँच)

मेरे परिवार के सदस्य

सन् १६३६ की गरमियों की बात है, जब श्री गुरुजी के निकट सम्पर्क का अवसर पहली बार प्राप्त हुआ। मैं अपने परिवार के साथ देव-लाली गया हुआ था। मैंने श्री डाक्टर साहब से अनुरोध किया था कि वे भी विश्रान्ति हेतु वहाँ आवें। नागपुर का संघ-शिक्षा-शिविर समाप्त होने के बाद श्री डाक्टर साहब, श्री गुरुजी के साथ देवलाली आये और लगभग एक मास तक वहाँ रहे।

देवलाली में ही श्री डाक्टर साहब को डबल निमोनिया हो गया। श्री गुरुजी दिन-रात उनकी सेवा- सुश्रुषा में जुटे रहते थे। उस समय की एक बात मुझे याद आ रही है। श्री डाक्टर साहब का स्वास्थ्य देखने के लिये नागपुर से श्री कृष्णराव मोहरील आये। उनसे श्री डाक्टर साहब ने कहा था---कृष्णा ! इस बीमारी में भी मेरा समय नष्ट नहीं हुआ है। संघ

को एक मूल्यवान निधि प्राप्त हुई है। मैंने तय कर लिया है कि माधवराव को सरकार्यवाह बनाया जाये। गुरु-पूर्णिमा-उत्सव के समय मैं इसकी घोषणा करूँगा।

श्री गुरुजी को श्री डाक्टर साहब माधवराव ही कहा करते थे। श्री गुरुजी को सरकार्यवाह और उसी दिन मुझे भी नागपुर का संघचालक बनाया गया। उस दिन से मैं श्री गुरुजी के निर्देशन में कार्य करता रहा और दिन-प्रति-दिन संघ कार्य बढ़ता रहा। हम लोगों के बीच सम्बन्ध दृढ़-तर और घनिष्टतर होते चले गये। उस समय तो श्री डाक्टर साहब के शब्दों का अर्थ समझ में नहीं आ पाया था कि ऐसी कौन सी मूल्यवान निधि उन्हें प्राप्त हुई है, पर उनके निधन के बाद श्री गुरुजी ने कभी श्री डाक्टर साहब का अभाव हमें खटकने नहीं दिया। श्री डाक्टर साहब के देहान्त से जो रिक्तता हुई, उसकी पूर्णरूप से पूर्ति श्री गुरुजी ने अपने कार्य के द्वारा कर दी।

श्री गुरुजी अनुशासन का कड़ाई से पालन करने में विश्वास रखते थे। उनकी इस कड़ाई के कारण कई बार बड़ी विचित्र स्थिति उत्पन्न हो जाती थी तो कई बार मनोरंजक प्रसंग भी घटित हो जाया करते थे। मेरे ज्येष्ठ पुत्र का व्रतबन्ध था। श्री डाक्टर साहब ने उसमें उपस्थित रहने के लिये अपनी स्वीकृति दे दी थी। श्री डाक्टर साहब विश्राम हेतु जगीर गये हुए थे। वहाँ से श्री डाक्टर साहब का पत्र मुझे अचानक मिला कि वे उपस्थित नहीं हो पायेंगे। पत्र पढ़कर मैं निराश हो गया। मैं समझ नहीं पा रहा था कि क्या किया जाये। श्री गुरुजी उस समय नागपुर में थे। उन्होंने कहा कि यदि मेरे कथनानुसार तार भेजा जाये तो श्री डाक्टर साहब अवश्य आ जायेंगे। श्री गुरुजी ने स्वयं तार लिखा Your Presence Imperative (आपकी उपस्थिति आवश्यक)। इस तार के जाते ही श्री डाक्टर साहब का उत्तर आया कि वे आ रहे हैं और जबलपुर में यदि कार की व्यवस्था हो जाये तो वे समय पर नागपुर पहुंच सकते हैं।

श्री गुरुजी को श्री डाक्टर साहब का उत्तर दिखलाया गया। वे स्वयं जबलपुर गये और श्री डाक्टर साहब को अपने साथ ले आये। व्रतबन्ध के अवसर पर श्री डाक्टर साहब को अपने बीच पाकर मुझे अतीव प्रसन्नता हुई, पर बाद में एक तथ्य के उद्‌घाटन से मेरी स्थिति बड़ी ही विचित्र हो गयी। रायपुर में श्री डाक्टर साहब ने स्वयंसेवकों को बताया कि परिस्थिति अनु-कूल नहीं थी, फिर भी उन्हें तार केशब्दों को शिरोधार्य करना पड़ा। वे भले

ही सरसंघचालक हैं, पर पहले एक स्वयंसेवक हैं और नागपुर के संघचालक के आदेश का उल्लंघन कैसे सम्भव है ? श्री गुरुजी को श्री डाक्टर साहब के व्यक्तित्व का सही आकलन था। वे अच्छी तरह जानते थे कि इस तार को पाकर श्री डाक्टर साहब पर क्या प्रतिक्रिया होगी। श्री गुरुजी ने अनेक बार अपने भावों को व्यक्त किया है कि श्री डाक्टर साहब ने अपने व्यवहार से अनुशासन का उच्च आदर्श स्वयं प्रस्थापित किया है।

श्री गुरुजी यह कभी अनुभव नहीं होने देते थे कि वे एक साधारण व्यक्ति से कुछ अलग हैं अथवा अधिक हैं। वास्तविकता तो यह है कि साधारण व्यक्ति के स्तर से उनका स्तर बहुत ऊँचा था, पर यह उनके व्यवहार की विशेषता थी, अपितु यह उनके स्वभाव का अंग बन चुका था कि असाधारण होकर भी वे साधारण व्यक्ति के समान ही व्यवहार किया करते थे। जब हम दोनों जेल में थे तब मैं उनके पूर्व स्नान कर लिया करता था। पहले दिन स्नान के बाद मैंने अपने गीले कपड़े पड़े रहने दिये। मैंने यही सोचा कि पूजा-पाठ से निवृत्त होकर इन गीले कपड़ों को धो लूंगा। पूजा के समाप्त होने पर मैं स्नानगृह में गया तो मैं चकित रह गया। श्री गुरुजी ने मेरे कपड़े धो डाले थे। जब मैंने इसका प्रतिवाद किया तो श्री गुरुजी बोले—'इससे क्या फरक पड़ता है ? हम दोनों को यहाँ काम ही क्या करना पड़ता है ?' यह घटना पहले-पहले दिन की है, इसके बाद तो दूसरे दिन से मैं पूजा के पूर्व ही कपड़े धोने लग गया।

श्री गुरुजी का व्यक्तित्व तो विशेषताओं का आगार था। मुझे आज तक ऐसा व्यक्ति नहीं मिला; जो इतने सारे विषयों में इतनी बारीक जानकारी रखता हो। तत्वज्ञान, धर्म, राजनीति, विज्ञान पर वे साधिकार बोलते थे। परन्तु उनके ज्ञान की नित्य नयी क्षितिज-रेखा देख-देख कर मैं विस्मित रह जाता था। दिसम्बर, १९७२ की घटना है। जनरल करिअप्पा नागपुर आये थे। स्वर्गीय डा० श्री मुंजे की प्रतिमा का अनावरण उनके हाथों ही हुआ था। श्री गुरुजी ने डा० मुंजे के जन्म-शताब्दि समारोह में स्वयं रुचि ली थी।। वे समारोह समिति के अखिल भारतीय अध्यक्ष थे। दोपहर के समय जनरल करिअप्पा का भोजन मेरे यहाँ था, उनके साथ-साथ श्री गुरुजी भी आये थे। श्री करिअप्पा जी को जलेबी बड़ी पसन्द आयी। वे पूछने लगे कि जलेबी कैसे बनती है। श्री गुरुजी करिअप्पा जी को साथ लेकर रसोईघर में ही पहुंच गये। इतना ही नहीं, जलेबी बनाने की सारी प्रक्रिया करिअप्पा जी को समझाने लगे। बनाने की विधि बतला चुकने के बाद वे

मेरी ओर मुड़े और मुझसे पूछा—'क्यों, मैंने ठीक बतलाया है न ?' मैंने अपनी पत्नी की ओर देखा और उसने मन्द मुस्कुराते हुए सिर हिला कर 'हाँ' कह दिया ।

श्री गुरुजी मेरे परिवार के मार्गदर्शक थे, मेरे और मेरे बच्चों के भी । मेरे बच्चे बचपन से ही उन्हें अपना जानते थे और मानते थे । मेरे बच्चे भाँति-भाँति के प्रश्न करके उन्हें परेशान करते, पर वे सदा ही शान्ति के साथ उनका समाधान करते । बच्चों के लिये उनके पास हमेशा ही समय रहता था । मेरा पुत्र पी-एच० डी० के लिए श्री गुलाबराव महाराज पर अपना शोध-प्रबन्ध लिख रहा था । श्री गुरुजी का जीवन बहुत व्यस्त रहता था और अपने अन्तिम दिनों में वे रुग्ण भी बहुत रहे, फिर भी मेरे पुत्र से उन्होंने शोध-प्रबन्ध पढ़ने के लिये माँगा और कई सुझाव भी दिये । यह सही है कि श्री गुरुजी एक महान् कर्मयोगी, एक महान देशभक्त, एक महान सामाजिक कार्यकर्ता थे और थे एक अनुशासित संगठन—राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सर्वोच्च अधिकारी, यह सब होकर भी वे मेरे परिवार के एक अविभाज्य अंग थे, मेरे परिवार के ऐसे सदस्य, जिनकी स्मृति सदा छायी रहती है ।

: ११ :

शील एवं सरलता

(एक)

ठण्डी हवा

श्री गुरुजी के स्वभाव की अनेक विशेषताओं में से एक यह भी थी कि वे प्राय: स्पष्ट बात कहने के स्थान पर संकेत देते थे। स्वयं सुविधा लेने के लिये स्पष्ट बात कहने वाले जनसमाज में वे अपवाद ही थे। एक बार बरेली में शिशिर ऋतु का कार्यकर्ता-शिविर चल रहा था। उन दिनों मैं दिल्ली से घर आया था और कोई आवश्यक संदेश लेकर डा० थट्टे से मिलने शिविर में गया हुआ था।

व्यस्त कार्यक्रमों के कारण उनसे बात नहीं हो पायी। कार्यक्रमों के पश्चात् जब वे श्री गुरुजी के साथ बाहर निकले, तो उस समय भी बात नहीं हो पायी। बस, कार में श्री गुरुजी के साथ वे बैठे तो प्रोफेसर श्री राजेन्द्रसिंहजी के साथ खिड़की के पास मैं भी बैठ गया। हवा बहुत ठण्डी थी। दिसम्बर का महीना था। मुझे ठण्डी हवा अच्छी लगती है, अत: मैं खिड़की के पास आराम से बैठा रहा।

एक मिनट बाद श्री गुरुजी ने कहा—आज बहुत ठण्डी हवा चल रही है।

मैंने कहा—जी हाँ, हवा बहुत ठण्डी है।

श्री गुरुजी चुप हो गये। बाद में प्रोफेसर श्री राजेन्द्रसिंहजी ने कहा— खिड़की पर शीशा चढ़ा दो भाई !

मैं श्री गुरुजी के संकेत को समझ नहीं सका था और यदि श्री रज्जू भैया न रहे होते तो मेरे कारण उस ठण्डी हवा ने श्री गुरुजी को कितना कष्ट पहुंचाया होता।

(दो)

संकोची-स्वभाव, मुक्त-हास्य, सादा-जीवन

जहाँ तक मुझे स्मरण आता है, मैंने पहले-पहल श्री गुरुजी को सन् १६३६ में पटना स्टेशन पर देखा था। गया में संघ-शाखा खुल गयी थी। उस समय संघ में डाक्टर हेडगेवारजी के नाम के बाद कार्यकर्ताओं को जिन तीन व्यक्तियों का नाम बताया जाता था, उसमें माधवराव (श्री गुरुजी) बाबासाहब आप्टे तथा दादा परमार्थ थे। अभी ठंड शुरू नहीं हुई थी। बरसात का अन्त था। उसी समय कहीं से श्री गुरुजी रात की गाड़ी से कलकत्ते जा रहे थे। स्टेशन पर थोड़ा प्रयास करने के बाद मिल गये। दाढ़ी-बाल वाला चेहरा सहज ही पहचान में आ गया। वे थर्ड क्लास में ऊपर के बर्थ पर थे। उस समय से लेकर उनके निधन के ठीक एक मास पूर्व तक, पूरे ३४ वर्ष तक मेरा उनसे घनिष्ठ सम्पर्क रहा है।

श्री गुरुजी स्वभाव से बड़े ही संकोची थे। बड़ी-बड़ी रेलियों तथा बैठकों में घंटों वार्ता या भाषण के बाद भी वे नित्य के व्यवहार में बहुत संकोच करते थे। इस संदर्भ में एक पुराना प्रसंग याद आ रहा है। सन् १६४२ के आरम्भ में बैरिस्टर श्री सावरकर गया सेंट्रल जेल से रिहा होने के बाद मेरे घर पर ठहरे हुए थे। उसी मंजिल के दूसरे कमरे में श्री गुरुजी ठहरे हुए थे। उस समय डा० थट्टे उनके साथ नहीं रहते थे। बैरिस्टर साहब को प्रातः मेल से बम्बई जाना था। श्री गुरुजी उनके कमरे में जाकर प्रातः नमस्कार करना चाहते थे। बैरिस्टर साहब के कमरे में रोशनी जल रही थी। वे शायद जाने की तैयारी करने में लगे हुए थे, लेकिन श्री गुरुजी कमरे में न जाकर बाहर ही तब तक खड़े रहे, जब तक वे स्वयं बाहर न निकल आये।

इसी तरह की एक घटना मुझे सन् १६६६ में देखने को मिली। नालन्दा कालेज बिहार शरीफ में संघ-शिक्षा-शिविर चल रहा था। समारोप के समय श्री गुरुजी का ही कार्यक्रम बना था और उसकी अध्यक्षता करने के लिये बिहार विधानसभा के भूतपूर्व अध्यक्ष डा० लक्ष्मी नारायणजी सुधांशु आये हुए थे। विश्राम के बाद जब लगभग तीन बजे मैं श्री गुरुजी को बुलाने गया तो देखा कि वे दरवाजे तक आकर वापस जा रहे हैं। पूछने पर उन्होंने बतलाया कि बहुत देर से वे मेरी प्रतीक्षा में थे। श्री सुधांशुजी को उन्होंने बगल के कमरे में देखा, लेकिन संकोचवश अन्दर नहीं गये।

उनका मुक्त हास्य तो स्वयंसेवकों को सदैव स्मरण रहेगा। वैसे मैं भी हँसी में उनका थोड़ा साथ शुरू से देता आया हूं। हिन्दू महासभा के अखिल भारतीय अधिवेशन पर बिहार सरकार के तत्कालीन गर्वनर सर सूअर्ट ने भागलपुर में सन् १६४१ में प्रतिबन्ध लगा दिया था। महासभा ने प्रतिबन्ध तोड़कर सम्मेलन करने का निश्चय किया था और सारे भारत से लोग आ-आकर गिरफ्तार हो रहे थे। वैरिस्टर सावरकर का अध्यक्षीय भाषण पढ़ने के कारण वहाँ के लाजपत पार्क में मुझे भी गिरफ्तार किया गया। उस समय श्री गुरुजी जेल में सबसे मिलन के लिये आये। विहार का अग्रणी होने के कारण मुझे ही जेल के द्वार पर उनके सामने जाना पड़ा। जेल के विशाल द्वार के बाहर श्री गुरुजी ने मुझे देखा और देखते ही जोर का ठहाका लगाते हुए हाथ बढ़ाकर कहा—Let me have your laugh—अपनी मुक्त हँसी का आनन्द तो लेनें दीजिये।

ये बातें अभी तक याद आती हैं। भोजन सम्बन्धी किसी विशिष्ट सामग्री को बनाने के लिये कभी उन्होंने कहा हो, ऐसा मुझे याद नहीं आता। परंतु मैं बराबर कुछ-न-कुछ ऐसा आयोजन रखता था, जिससे उन्हें कुछ रुचि का भोजन मिल सके। वे बड़े साफ-सुथरे और अच्छे ढंग से रहते थे, लेकिन उनमें पूरी सादगी थी। फिजूलखर्ची उन्हें बिल्कुल पसन्द नहीं थी। एक बार नागपुर रेशमबाग में प्रतिनिधि सभा की बैठक हो रही थी। पाँच बजे प्रातः काल वैसे हल्का अँधेरा था। सामने वाले बरामदे में हल्के पावर की कई बत्तियाँ जल रही थीं। मैंने देखा कि वे स्वयं उठे और उन्होंने सारी बत्तियों को बुझा दिया।

नागपुर में उनके बैठने वाले कमरे में दरी के अलावा कभी गद्दा नहीं देखा। नागपुर में डाक्टर साहब के समय उनको हमने साइकिल पर चलते

देखा है। सच्चे रूप में साधु होते हुए भी कभी साधु का वस्त्र उन्होंने धारण नहीं किया। वे जनसाधारण की तरह ही रहते थे।

(तीन)

अँगौछा स्वयं धोया

एक बार श्री गुरुजी एक स्वयंसेवक से खड़े बात कर रहे थे। सहसा अपने अंगौछे में उन्हें कोई मिट्टी का दाग दिखाई पड़ा। वे उसे धोने की इच्छा से नल की ओर जाने लगे। स्वयंसेवक ने यह बात भाँपकर धोने के लिये अँगौछा उनसे माँगा। श्री गुरुजी ने मना करते हुए कहा—देखो अधिकतर काम स्वयं ही करना चाहिये।

अंगौछा श्री गुरुजी ने स्वयं धोया।

(चार)

उनका सहज स्वभाव

प्रयाग का संघ-शिक्षा शिविर। दोपहर में भोजन के बाद श्री गुरुजी हाथ धो रहे थे। इतने में वहाँ खड़े एक प्रचारक ने सोचा कि श्री गुरुजी की चप्पल दूर रखी है, नजदीक कर दें। ऐसा करने के लिये वह चप्पलें उठाकर, जहाँ पर गुरुजी हाथ धो रहे थे, पीछे रखने जा रहे थे, उसी समय हाथ धोकर गुरुजी पीछे घूम पड़े और उन्हें चप्पलें रखते हुए देख लिया। वे तुरन्त बोल पड़े अरे, तुमने चप्पलें छू लीं, हाथ गन्दा हो गया।

उन्होंने फिर मुझ से कहा—तुरन्त इसके हाथ धुलाओ।

और गुरुजी हाथ धुलाकर ही पास से हटे। उनका यह सहज स्वभाव आज भी मन को प्रेरणा देता है। मैं सोचता हूं, आज छोटी-मोटी प्रसिद्धि-

वाले व्यक्ति भी यह चाहने लगते हैं कि लोग मेरी सेवा करें, मेरी चिन्ता करें परन्तु लाखों लोगों के मार्ग निदर्शक होने पर भी श्री गुरुजी में इस भाव का लेश भी नहीं था ।

(पाँच)

सहृदयता

परमपूजनीय श्री गुरुजी को हरिद्वार आना था । हम सभी स्वयंसेवक प्रातः काल स्टेशन पर आये हुए थे । मकरसंक्रान्ति पर्व के कारण स्टेशन पर भीड़ बहुत थी । अतः हम लोगों ने पंक्ति बनाकर मार्ग तैयार किया । श्री गुरुजी सामने से आ रहे थे । एक बुजुर्ग सज्जन रुक नहीं रहे थे । धक्का-मुक्की करने लगे । एक स्वयंसेवक उन्हें थोड़ा रुक जाने के लिये प्रार्थना कर रहा था ।

श्री गुरुजी ने यह देख लिया । उन सज्जन की गठरी उठाकर पहिले उन्हें दरवाजे से निकाला, फिर स्वयं निकले ।

हम सब आश्चर्य एवं श्रद्धा से महापुरुष को देखते रह गये ।

(छः)

छोटी-छोटी बातों की चिन्ता

बात १९५३ की है । चन्दौसी में शीत-शिविर लगा था । श्री गुरुजी भी पधारे । मैं व्यवस्था में था । चन्दौसी के एक संभ्रान्त सज्जन श्री गुरुजी से मिलने आये, साथ में एक थाल भरकर फल लाये । थाल पर तौलिया ढका था श्री गुरुजी ने संकोच के साथ वह स्नेह-भेंट स्वीकार की और वहाँ आस-पास के स्वयंसेवकों को फल बाँट दिये ।

अगले दिन दोपहर के बाद गुरुजी अगले कार्यक्रम के लिये जाने वाले

थे। जब चलने लगे तो कहा—अरे गंगाशरण ! वह कलवाला थाल और तौलिया कहाँ है ?

मैं दौड़कर उठा लाया। तब वे बोले—यह उनका वापस कर आओ, भूलना नहीं।

ऐसे थे श्री गुरुजी !

(सात)

वे सहारा दे रहे थे

१९६४ के अप्रैल मास में पूज्य गुरुजी कुमायूँ के प्रवास पर आये। उन के साथ प्रातः पिथौरागढ़ से चलकर हम लोग कोई दस बजे मायावती पहुंचे। आश्रमवासियों का सत्कार-भाव, आश्रम की सुव्यवस्था तथा वहाँ का दैवी भावापन्न वायुमण्डल था ही, ऐसा कि साधारण व्यक्ति के मन में अद्वैत का उद्वेलन उत्पन्न कर दे। तब फिर महर्षि विवेकानन्द और (उनके गुरु भाई) स्वामी अखण्डानन्दजी, एक की शिक्षा और दूसरे की प्रत्यक्ष दीक्षा को जीवन में चरितार्थ करने वाले साधक की अवस्था, उनकी तल्लीनता, उनकी भाव-विभोरता, बस देखते ही बनती थी। गुरुजी की वह तन्मयावस्था, वस्तुतः वाणी का विषय नहीं है।

रात्रि को चम्पावत में पड़ाव किया। उन दिनों सामरिक महत्त्व के कारण पिथौरागढ़-टनकपुर मार्ग डाइरेक्टर जनरल आफ बोर्डर रोड (DGBR) ने अधिग्रहण कर उसे चौड़ा करना चालू किया था। यातायात एकमार्गीय ही चलता था, परन्तु निजी गाड़ियों और कारों पर यह प्रतिबन्ध लागू नहीं था। सड़क पर दोनों और मलवा पड़ा होने के कारण गाड़ियाँ चलाने में असुविधा थी। प्रातः चलने के पूर्व चाय पीते-पीते श्री गुरुजी ने मुझे मिलाकर तीनों चालकों को पर्वतीय मार्गों में गाड़ी चलाते समय ध्यान रखने के लिये अनेक बातें ऐसी बतायी, जो वैसी हमारे ध्यान में नहीं थी। किसे पता था कि आगे आने वाले खतरे से, वे भविष्य-द्रष्टा हमें सचेत कर रहे है।

चलथी के प्रसिद्ध पुल पर पहुंचने के पहले ही, सैनिक वाहनों की एक

शृंखला आयी । सड़क चौड़ी थी, फिर भी एक ट्रक पर 'ON TEST' लिखा हुआ था । एक तीव्र मोड़ पर वह इतना दायें मुड़ गया कि उसने हमारी पहली कार को टक्कर मार करके कोई एक गज (हमारे) बायें खड्ड की ओर ढकेल दिया । इस ओर की मुड़ेर टूटी हुई थी । कुछ मलवे का ढेर-सा पड़ा था और उसके नीचे था हजारों फीट गहरा खड्ड ! एक क्षण के लिये ही वह दृश्य दिखा—बायीं ओर की खिड़की खुली थी, मलवे पर खड़े वे देवता पुरुष कार को सहारा दे रहे थे । मलवा टिका रहा, खिसका क्यों नही ? ये रहस्य आज तक समझ में नहीं आया । यदि कार सूत बराबर भी बायें बढ़ जाती अथवा गुरुजी एक इंच भी पीछे हटते तो... ।

कुमायूँ की पहाड़ी गोर्वधन बन गयी और उसको सहारा दिया, इस युग के योगी ने । 'कहो, रामनरायन ठीक हो न !' घबराये हुए चालक को उन्होंने सान्त्वना दी । दायें ओर की खिड़की और मडगार्ड क्षतिग्रस्त हुए, पर चालक को खरोंच भी न लगी । उनके ठीक पीछे मेरी फियट कार थी । आगे के दृश्य से कम्पित मैं पूरी शक्ति से ब्रेक न लगा पाया । मेरा बम्फर जा टकराया, कुछ क्षतिग्रस्त हुआ और अगली गाड़ी को पुनः एक धक्का लगा ।

'अरे टक्कर भी इतनी हल्की, जरा जोर से लगाते'—हंसते हुए, मानो कुछ हुआ ही न हो, ये शब्द उन्होंने कहे ।

संघ-कार्य ईश्वरीय कार्य है, यह प्रायः सुना करता था । आज ईश्वर को प्रत्यक्ष रक्षा करते देखा ।

(आठ)

कृतज्ञता

सन् १९७० में कैंसर की शल्य-चिकित्सा के बाद श्री गुरुजी इन्दौर आये थे । उनके घाव की ड्रेसिंग करने के लिये डा० मूले आया करते थे । घाव कितना भर पाया है तथा कहाँ तक सुधार हुआ है, इसकी जाँच करने के लिये मुझे बुलवाया गया । इतना गम्भीर रोग और ऐसे गहरे घाव के बाद

भी श्री गुरुजी के चेहरे पर हास्य सदा थिरकता रहता। उन्हें कभी विचलित अथवा उदास होते हुए मैंने नहीं देखा।

एक दिन मैंने उन्हें अपने घर पर चाय के लिये आमन्त्रित किया। मेरे यहाँ घरेलू कामकाज एक हरिजन लड़की किया करती थी। मुझे ऐसा लगा, शायद उसके हाथ की चाय लेना श्री गुरुजी पसन्द नहीं करेंगे। वस्तुस्थिति के स्पष्टीकरण के लिये मैंने उनसे पूछ ही लिया। इस पर श्री गुरुजी ने कहा—इसमें आपत्ति की क्या बात है? आखिर वह तो हिन्दू ही है न?

और उन्होंने उस हरिजन लड़की के हाथों लायी गयी चाय सहर्ष ग्रहण की।

चर्चा के दौरान मैंने उनसे 'श्वासन' सम्बन्धी जानकारी चाही। उन्होंने बड़े उत्साह से सम्पूर्ण क्रिया की जानकारी मुझे दी। इन्दौर से विदा होते समय उन्होंने मुझे बुलवाया। मेरे द्वारा की गयी अल्प सेवा के प्रति उन्होंने आभार व्यक्त किया और अपनी पुस्तक 'बंच आफ थाट्स' की एक प्रति पर अपने हस्ताक्षर करके मुझे भेंट दी। वह भेंट मेरी अमूल्य निधि है।

(नौ)

इलैक्ट्रिशियन

श्री गुरुजी बिहार प्रदेश के सिवान नगर में आये हुए थे। रात्रि साढ़े-नौ बजे यह खबर मिली कि श्री गुरुजी के आवास में बत्ती नहीं जल रही है। बिजली की वायरिंग में कहीं दोष आ गया है। मैंने दिन में ही उनके आवास की बिजली-वायरिंग का जर्जर स्वरूप देखा था। अतः मन में तो एक वार आया कि कह दूँ, 'भाई! मुझसे बनने लायक नहीं है'। परन्तु वैसा मैं कह नहीं सका। मैं एक स्वयंसेवक को साथ लेकर वहाँ गया। मैंने अपने सहायक को सीढ़ी लाने के लिये भेज दिया और मैं अकेले ही गुरुजी के कक्ष की ओर बढ़ा। श्री गुरुजी बरामदे में ही टहल रहे थे। बिजली की गड़बड़ी के कारण पंखा भी नहीं चल रहा था, इसलिये अन्दर काफी गर्मी थी। संयोग ऐसा था कि दस बजे रात्रि में श्री गुरुजी वहाँ अकेले ही थे। उनके कक्ष के साथ ही लगा हुआ बहुत लम्बा बरामदा था। उन्होंने एक छोटी टार्च साथ में

ली और उसी बरामदे के वायरिंग में एक जगह दिखाकर कहा–देखो, यहाँ कहीं, तो नहीं खराब है ?

मैंने कहा–सीढ़ी लाने के लिये एक स्वयंसेवक गये हैं। सीढ़ी आने पर देख लेता हूं।

तुरन्त श्री गुरुजी ने कहा–इस टेबुल पर कुर्सी रख लो। हाथ पहुंच जायेगा।

जल्दी से टेबुल उठाने के लिये मैंने हाथ लगाया। श्री गुरुजी ने भी दूसरी तरफ से टेबुल को पकड़ लिया। मैंने कई बार कहा–कोई खास भारी नहीं है, मैं उठा ले जाऊँगा।

मेरे कहने पर भी श्री गुरुजी ने उस स्थान तक टेबुल ले जाने में मेरी सहायता कर ही दी। फिर उस पर कुर्सी रखकर मैं पिलास से तार जोड़ने लगा। हाथ काँपते रहने के कारण पिलास मुझसे गिर पड़ा। तब पास ही खड़े गुरुजी ने मुझे नीचे उतरने से रोककर तुरन्त पिलास उठाकर मेरे हाथ में दे दिया। तार जोड़कर मैंने स्विच ऑन किया। तुरन्त बत्ती जल गयी। मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा कि गुरुजी इलेक्ट्रिशियन हैं क्या ? उन्होंने वायरिंग की खराबी कैसे बता दी। ? जिस काम के बारे में मैं बिल्कुल निराश था, वही इतनी आसानी से ठीक हो गया। मैंने स्वप्न में भी सोचा नहीं था कि मुझसे रात्रि के अंधेरे में श्री गुरुजी जैसे इंजीनियर इतना टेढ़ा काम आसानी से करवा लेंगे। बाद में उन्होंने अन्दर के कमरे के एक-दो स्विच ठीक करने के लिये कहा और वे सब बहुत जल्द ही ठीक हो गये। जब सब ठीक हो गया, तब मैंने उनसे जाने के लिये अनुमति माँगी। उन्होंने मेरा परिचय पूछा। परिचय के बाद जाने की अनुमति देते हुए उन्होंने कहा–किसी काम से घबराना नहीं चाहिये।

: १२ :

विनयावनत

(एक)

राजनीति का विष

श्री गुरुजी ने अपने संगठन-कार्य पर राजनीति को कभी भी हावी नहीं होने दिया। राजनैतिक दलों द्वारा समाज और देश को विशृंखल और विघटित करने की प्रवृत्ति और प्रयास का प्रतिरोध श्री गुरुजी अत्यन्त तीखी और सशक्त वाणी में करते थे, इसके बाद भी उन्होंने स्वयं को राजनीति से सर्वथा अलिप्त रखा। अनेक प्रकार के दबाव और प्रलोभन के बाद भी पूज्य श्री गुरुजी राजनीति से सर्वदा अलग रहे।

एक निकटस्थ लब्ध-प्रतिष्ठित स्वजन ने एक बार श्री गुरुजी से राजनीति में भाग लेने के लिये अनुरोध करते हुए कहा—राजनीति विष होने पर भी श्री गुरुजी को उसका पान कर लेना चाहिये, क्यों कि दैवी शक्तियों के रक्षणार्थ भगवान् शंकर ने भी तो विष-पान किया था।

अत्यन्त विनम्र भाषा में श्री गुरुजी ने उत्तर दिया—विष को पचाकर कण्ठ का आभूषण बना लेने की सामर्थ्य तो केवल श्री शंकर जी में थी, मैं भगवान शँकर नहीं हूं, एक सामान्य जीव हूं।

(दो)

अहंकार की औषधि

सितम्बर १९४२ में श्री गुरुजी कालीकट शाखा पर प्रथम बार पधारे। उस अवसर पर स्थानीय रामकृष्ण मिशन के शारदा मण्डल के तत्त्वाधान में श्रीमती नारायणी कुट्टी अम्मा ने उनका भाषण आयोजित किया था। श्री गुरुजी ने प्रवेश करते ही भगवान श्री रामकृष्ण-परमहँस तथा शारदा माता की प्रतिमाओं का वंदन किया। तत्पश्चात् श्री मती नारायणी कुट्टी अम्मा ने गुरुजी से एक उच्च आसन पर विराजमान होने के लिये प्रार्थना की, किन्तु वहाँ न बैठते हुए नीचे जमीन पर ही सबके साथ बैठने की इच्छा गुरुजी ने व्यक्त की। लोगों के विशेष आग्रह करने पर श्री गुरुजी ने कहा—अपने गुरुदेव के गुरु के सामने मैं उच्च आसन ग्रहण नहीं कर सकता।

सभा समाप्ति के बाद बाहर आते समय एक वकील के कन्धे पर हाथ रखकर उन्होंने कहा—जब कभी अवसर प्राप्त होता है, मैं ऐसे स्थानों का दर्शन अवश्य करता हूं। सरसंघचालक का बड़ा दायित्व छोटी उम्र में ही मेरे ऊपर आया है। इसके कारण मेरा अहंकार कहीं बढ़ न जाये, यह चिन्ता रहती है। अपने गुरुजनों का दर्शन इस बीमारी के लिये अच्छी औषधि है।

(तीन)

पुजारी के सामने नतमस्तक

सन् १९७२ में तिरुनेलवेल्ली जिले के इलिन्दकराई गाँव में श्री गुरुजी ने पदार्पण किया। चार सौ वर्ष पूर्व उस गाँव के ७०० लोग ईसाई बने थे, परन्तु हाल में ही वे सब पुनरपि हिन्दू-धर्म में वापस लौट आये। इन लोगों के पूजा-पाठ के लिये एक मन्दिर बनवाया गया था। उस मन्दिर का पुजारी मछुवा था।

श्री गुरुजी उस मन्दिर में दर्शन के लिये गये। मन्दिर के पुजारी ने दीप-आराधना के बाद आरती, प्रसाद और विभूति थाल में रखी और श्रद्धा पूर्वक उनके सामने ले गये। तब श्री गुरुजी ने पुजारी के सामने नत-मस्तक होकर कहा—आप ही यहाँ के सम्माननीय व्यक्ति है। अतएव मेरे माथे पर आप ही विभूति लगायें।

निकट खड़े हुए सभी लोग श्री गुरुजी की विनम्रता देखकर गद्‌गद् हो गये।

(चार)

सारा अस्तित्व पानी-पानी हो गया

बम्बई के एक प्रख्यात साहित्यकार राष्ट्रीय-स्वयंसेवक-संघ के उत्सव में अध्यक्ष होकर नागपुर पधारे। संघ एवं श्री गुरुजी के साथ य ी उनका प्रथम परिचय था। उन्होंने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा—

जब मुझे यह सूचना मिली कि संघ के उत्सव में अध्यक्षीय कार्यवाही के लिये श्री गुरुजी का निमन्त्रण मिला है तो मुझे विश्वास ही नहीं हो रहा था। यह इसलिये कि मैं तो संघ के लिये अत्यन्त अपरिचित था। श्री गुरुजी राष्ट्रीय-स्वयंसेवक-संघ जैसे प्रबल हिन्दू संगठन के सेनापति हैं, यह बात मेरे मित्रों ने मजाक में कहा और कहा—क्या उनके द्वारा एक पागल साहित्यकार को निमन्त्रण ? तुम इस पर विश्वास करते हो ? तुम कैसे मूर्ख हो ? नागपुर जाने की भूल कदापि न करना। श्री गोलवलकर से भेंट तो दूर रही, तुम दर्शन भी नहीं कर सकोगे। वे सात घेरों वाले किले में रहते हैं।

मित्रों ने मुझे बहुत सावधान किया किन्तु मैंने नागपुर आने का निर्णय कर लिया। नागपुर स्टेशन पर उतरते ही दाढ़ी और लम्बे बाल वाले एक व्यक्ति ने मेरा हार्दिक स्वागत करते हुए पुष्पमाला पहनायी। मैंने धीरे से एक व्यक्ति से पूछा यह कौन हैं ? उसने बताया कि ये ही श्री गुरुजी हैं। इतना सुनना था कि मेरा सारा अस्तित्व पानी-पानी हो गया। मुझे मित्रों की बात याद आयी। परन्तु प्रत्यक्षतः श्री गुरुजी की मुक्त हँसी, उनकी आत्मीयता और सादगी देखकर मैं आश्चर्य चकित हो गया। हमारे जैसे लोग भी संघ के बारे में अज्ञानतावश गलत धारणा रखते हैं और भी न जाने कितने रखते होंगे ?

(पांच)

विनम्र स्वभाव

श्री गुरुजी के मन में मिथ्या अहं का भाव कहीं लेश भी नहीं था।

सन्यासियों तथा श्रेष्ठ व्यक्तियों के प्रति उनका व्यवहार अत्यन्त ही विनम्र रहा करता था। गुरुजनों के साथ तो उनका व्यवहार देखते ही बनता था।

शायद १९५४ की बात है। मद्रास में दक्षिण के प्रान्तों का एक सम्मिलित शिविर था। श्री गुरुजी के शिविर में आने से एक दिन पूर्व मद्रास के एक प्रमुख कार्यकर्ता किसी कार्यवश वहाँ के रामकृष्ण-मिशन में गये थे। वहाँ उनकी भेंट एक स्वामी जी से हो गयी, जिनको लोग श्री पियाजी महाराज कहते थे। शायद वे उस समय रामकृष्ण-मिशन के अखिल भारतीय अध्यक्ष भी थे। बातचीत के बीच श्री स्वामी जी को पता लग गया कि श्री गुरुजी मद्रास आ रहे हैं। उस कार्यकर्ता ने उन स्वामीजी महाराज को शिविर देखने के लिये तथा श्री गुरुजी से मिलने के लिये शिविर में आने का निमन्त्रण दे दिया।

उन स्वामी जी ने भी श्री गुरुजी से मिलने की इच्छा व्यक्त की, परन्तु उन्होंने यह कहा—उनके आने के तुरन्त बाद यह बता देना कि पिया महाराज यहाँ हैं। फिर वे स्वयं ही मुझसे मिलने चले आयेंगे।

कार्यकर्ता को कुछ आश्चर्य-सा हुआ कि श्री गुरुजी के बारे में इतने अधिकार से बातचीत करने वाले ये कौन हैं? शिविर केइतने व्यस्त कार्यक्रमों में से श्री गुरुजी उनसे मिलने के लिये समय निकाल सकेंगे, इसमें उस कार्यकर्ता को शंका थी। परन्तु मद्रास आने पर श्री गुरुजी को जब यह समाचार दिया गया तो उन्होंने अपने लिये शिविर के सभी कार्यक्रमों के बारे में पूछा। सारी जानकारी होने के बाद श्री गुरुजी ने सायंकाल ही शिविर की प्रार्थना के पूर्व उनके यहाँ हो आने का निर्णय लिया, तदनुसार आश्रम में सूचना भेज दी गयी।

ठीक सयय पर पूज्य श्री पिया जी महाराज आश्रम के मुख्य द्वार के बाहर आकर खड़े हो गये। हम लोग भी ठीक समय से ही पहुंचे थे पूज्य स्वामी जी से हम लोगों की कार साठ-सत्तर कदम के अन्तर पर होगी, तब श्री गुरुजी की दृष्टि उन पर पड़ी। उन्होंने एकदम मोटरकार रुकवायी और तुरन्त मोटर से उतरकर बड़ी जल्दी में पैर से चप्पल उतारुकर फेंकी जो इधर-उधर जा पड़ी और उनकी ओर दौड़ पड़े। पूज्य श्री पियाजी महाराज उनको देखकर आगे बड़े। श्री गुरुजी ने भरे रास्ते में सड़कपर लेटकर उन्हें साष्टाँग प्रणाम किया। उन्होंने बड़े प्रेम से श्री गुरुजी को उठाकर हृदय से लगा लिया। वह एक बड़ा ही अद्‌भुत दृश्य था

: १३ :

निस्पृहता-निर्मलता

(एक)

गुरु-दक्षिणा भगवाध्वज के समक्ष ही

गुरुजी के १९५७ के महाराष्ट्र-प्रवास का एक प्रसंग है। सतारा जिले के एक गाँव में शासकीय प्रतिबन्ध के कारण खुली शाखा चलाना कठिन था। इस कारण वहाँ के कार्यकर्ताओं ने गुरुदक्षिणा-उत्सव सम्पन्न करने हेतु एक स्वयंसेवक के घर सत्यनारायण जी की पूजा का आयोजन किया। काफी लोगों को निमन्त्रित किया गया था। पूजा की विधि सम्पन्न कराने वाले पण्डित जी को यह बता दिया गया था कि इस निमित्त जो धन जमा होगा, उसे हम गुरु-दक्षिणा के रूप में राष्ट्रीय-स्वयंसेवक-संघ को दे देंगे। इस बात को सहर्ष स्वीकार करने के कारण पण्डितजी ने भी स्वयं वह धन नहीं लिया।

गुरुजी जब उस क्षेत्र में आये तो उन्हें गुरु-दक्षिणा-उत्सव का विवरण बताया गया। इसके बाद उन्होंने बैठक में कहा—स्वयं सेवकों ने भगवाध्वज का पूजन करके ध्वज के सम्मुख जो धन समर्पित किया, वही मात्र संघ की दक्षिणा है। स्वयंसेवकों ने यदि सत्यनारायण की पूजा में धन अर्पित किया तो वह पूजा कराने वाले पण्डित जी का ही है। सर्व प्रथम वह धन उन पण्डितजी को दे दीजिये एवं इसकी सूचना तुरन्त मुझे भेजिये।

(दो)

निस्पृह भीतर और निर्मल बाहर

पद-प्रतिष्ठा, पैसा, प्रमदा तथा कीर्ति, जो लोकधर्म एवं जैव धर्म हैं, उनसे वे बड़ी सावधानी से बचे रहते थे। हम लोग, जो अपने को साधु सन्त कहते हैं, गृह त्यागी होने पर भी मठ मन्दिर आश्रम पैसा प्रतिष्ठा के चंगुल में किसी-न-किसी प्रकार फँसे ही रहते हैं, किन्तु वे घर में रहते हुए भी इन सबसे सर्वथा दूर ही बने रहते थे। राष्ट्रीय-स्वयंसेवक-संघ के सर संघचालक बनकर सतत इस संस्था की सेवा में संलग्न रहते, किन्तु उस संस्था के प्रति उनको मोह नहीं था। मोह तो उनको किसी से नहीं था।

किसी ने एक लक्ष रुपये उन्हें दिये और कह दिया—आप इसे चाहें जिस कार्य में व्यय कर दें। यद्यपि संघ उस समय आर्थिक संकट में था, किन्तु उन्होंने कहा—अमुक स्वामी जी की संस्था को आर्थिक सहायता की आवश्यकता है, स्वामी जी ने एक बार मुझसे कहा था, ये रुपये उन्हीं की संस्था में लगा दिये जायें।

कभी एक पैसा रखना नहीं, किसी से याचना नहीं, कोईसंग्रह नहीं। एक कमण्डलु और एक वस्त्र, यही उनका संग्रह था। परिव्राट् संन्यासी की भाँति पूरे भारतवर्ष की एक वर्ष में दो परिक्रमाएँ करते रहना, यही तीस वर्षों तक उनका व्यापार रहा। संन्यासी की भाँति जिसके घर ठहरे, जो भी, जैसा भी भोजन मिल गया, उसी पर निर्वाह। मान प्रतिष्ठा से बहुत दूर.। एक दिन मुझसे बोले—महाराज जी! लोग समझते हैं कि मैं राष्ट्रपति बनने के लिये ऐसा संगठन कर रहा हूं। मैं तो जीवन में कोई पद स्वीकार करने वाला नहीं, ऐसा ही फक्कड़ बना रहूंगा।

सो वे जैसे संघ में प्रविष्ट हुए थे, वैसे-के-वैसे ही चले गये। जैसी चद्दर ओढ़ी थी, उसे बिना मैली किये उतारकर रख गये।

(तीन)

आभूषण का भूषण

श्रद्धेया ताईजी का स्वर्गवास हो गया। अपनी माताजी (श्री ताईजी) के निधन होने पर श्री गुरुजी ने उनके समस्त आभूषण कोल्हापुर की देवी

श्री अम्वा बाई को अर्पित कर दिये। अपने लिये कुछ भी नहीं रखा। अपना श्राद्ध तो उन्होंने अपने ही हाँथों से कर लिया था।

(चार)

पुनः शुभ दिन फिरे

'और पाँच वर्षों के सतत प्रयासों से पुनः उसके शुभ दिन फिरे।' अन्त में श्री गुरुजी ने कहा।

यह उस समय की बात है जब सर्वश्री ननजप्पन और अम्बलवान चेटियर के साथ लोग मद्रास के मेटल हाउस में चाय पीते हुए आनन्द से बातचीत कर रहे थे। श्री गुरुजी ने उपर्युक्त शब्द एक स्वयंसेवक के विषय में कहे थे, जो कि पंजाब में व्यापार करता था। सन् १९४७ के दिनों में उसका व्यापार समृद्धि पर था और उन दिनों एक बार उसने श्री गुरुजी के हाथों में नोटों का बण्डल रखते हुए कहा—गुरुजी। यह मेरी तुच्छ भेंट है। कृपया इसे स्वीकार करें। यह अपने कार्य के लिये है।

नोटों के बण्डल का काफी मूल्य था। काल-चक्र बदला। एक दिन एक भद्र पुरुष श्री गुरुजी से मिलने कार्यलय में आये। उनके चेहरे पर चिन्ता एवं दुर्भाग्य की बनी रेखाएँ स्पष्ट झलकती थीं, स्वाथ्य गिर चुका था और शरीर में फटे चिथड़े लपेटे हुए थे। पंजाव के दंगों और हत्या काण्ड में उनका सर्वस्व लुट चुका था। उनके पास एक भी पैसा नहीं था। वे श्री गुरुजी के दर्शनमात्र के लिये आये थे। उनकी दयनीय अवस्था हम सभी के हृदय में करुणा का संचार कर रही थी। श्री गुरुजी ने कहा,—तुम्हारा धन बिल्कुल सुरक्षित रखा है। उसकी सहायता से तुम पुनः अपना व्यापार संचालित कर सकते हो।

परन्तु उसका उत्तर था—नहीं।

वह श्री गुरुजी का अशीर्वाद मात्र चाहता था इसके उपरान्त वह चला गया।

पाँच वर्षों तक उसका कुछ भी पता न चला। एक दिन वह पुनः कार्यालय में नोटों के छोटे बण्डल के साथ आया। श्री गुरुजी को प्रणाम करके

विनम्र स्वर में बोला–गुरुजी ! यह मेरी तुच्छ भेंट है। कृपया इसे स्वीकार करें। यह अपने कार्य के निमित्त है।

यह भी कुछ कम धन न था। उसने अपने व्यापार को पुनः जमा लिया था। श्री गुरुजी ने कहा---अदम्य और विशुद्ध प्रयत्नों से उसके शुभ दिन पुनः फिरे।

(पाँच)

निर्मल चेतना के धनी

एक बार नागपुर गया तो हेडगेवार भवन पहुंच गया। भवन देखकर और श्री गुरुजी का स्थान देखकर बहुत अच्छा मालूम हुआ कि कोई भी अतिरिक्त वस्तुएँ वहाँ न थी। सब आवश्यक। आडम्बर का कहीं भी आस्तित्व नहीं। श्री गुरुजी स्वयं नितान्त सरल और सहज। मुझे पाकर जैसे मेरे सम्मान में ही सर्वथा व्यस्त हो गये। वह स्नेह-भाव मुझे सुखद और आश्चर्य-कारी प्रतीत हुआ। गुरुता जैसी चीज भी प्रकट होती तो मैं उसे अन्यथा नहीं समझता, लेकिन उसकी कहीं सम्भावना नहीं देखी। उद्यमी और तत्पर कार्यकर्ता की भाँति स्वयं सब कार्य में कार्यरत।

भवन में मैंने देखा कि वे हार्दिक आदर श्रद्धा की प्रेरणा हैं। इसी भावना से उनके साथी-सहयोगी काम करते हैं। उसमें पद की कृत्रिमता का मिश्रण नहीं है। काम पड़ता होगा, लेकिन किसी कृत्रिम व्यवधान को डाल-कर व्यवहार को बनावटी बनाने की वृत्ति उनमें नहीं देखी। ऐसा सुनता हूं कि आजकल प्रशासकों को उसी प्रकार का प्रशिक्षण दिया जाता है। इधर भाषा के शिष्टाचार पर तो बल है, लेकिन अन्दर से जनता से दूरी रखी जाती है।

मैं चलने लगा तो श्री गुरुजी स्वयं बाहर तक साथ आये और बोले–यह गाड़ी किसकी है तत्काल खोज हुई मालिक महाशय की। वे आये तो उनसे श्री गुरुजी ने कहा–देखिये, ये श्री जैनेन्द्र जी हैं। अमुक स्थान पर पहुंचा आइये।

मुझे अपने लिये किसी प्रकार के संभ्रम का भ्रम नहीं हो सकता था। मैं ठहरा सेठ श्री पूनम चन्द्र जी राँका के यहाँ, जो उस समय शायद स्थानीय काँग्रेस के अध्यक्ष थे। पर उस सबसे श्री गुरुजी के व्यवहार में कुछ भी अन्तर नहीं आया।

विस्मय मुझे तब हुआ, जब स्वयं श्री गुरुजी राँकाजी के घर पर उपस्थित हुए। निर्मल चित्तता के कारण ही ऐसा हो सकता था।

: १४ :

विचारों की विशालता

(एक)

अत्यन्त उदात्त हृदय

महात्मा गाँधी ने कहा था—"देश का विभाजन मेरी लाश पर होगा।" सरदार पटेल ने कहा था—"देश को भगवान ने एक बनाया है, इसके टुकड़े कैसे हो सकते हैं? पंतजी ने हाथरस में स्पीच दी—"पाकिस्तान कौन-सी चिड़िया का नाम है?" इस प्रकार की ऊँची-ऊँची बातें कहने वाले काँग्रेसी नेतृत्व ने भारत का विभाजन करा दिया।

थोथे आदर्शवाद से काँग्रेसी नेतागण चिपके रहे, जिसके परिणामस्वरूप हजारों-हजारों हिन्दुओं की सम्पत्ति गयी, लज्जा गयी, रोजी गयी और उन निराश्रितों को दर-दर भटकना पड़ा और शिविरों में समय गुजारना पड़ा। इन्हीं काँग्रेसी नेताओं की अदूरदर्शिता के कारण न जाने कितने-कितने हिन्दू भाई-बहिन अकाल ही काल के गाल में चले गये, इसके अतिरिक्त हिन्दुओं का एक बहुत बड़ा विशाल समुदाय भाग्य के भरोसे विधर्मियों के घेरे में छोड़ दिया गया। सन् १९४७ में स्वाधीनता क्या मिली, काँग्रेस के कई सिद्धान्त तथा नारे चकनाचूर हो गये। हिन्दू-मुसलिम-एकता और अहिंसा के नारों पर भारत की अखण्डता की बलि चढ़ा दी गयी।

स्वयं श्री गुरुजी मातृ-भूमि के विभाजन से अत्यन्त व्यथित थे, किन्तु एक क्षरण के लिये भी उन्होंने अपना सन्तुलन खोया नहीं। उनका हृदय अत्यन्त उदात्त था और उनका दृष्टिकोरण बड़ा व्यापक था। सन् १६४८ में बम्बई शाखा के संक्रमरणोत्सव पर भाषरण देते हुए उन्होंने कहा—'शान्त चित्त से विचार करने पर हमारे ध्यान में आ जायेगा कि मनुष्य के जीवन में विविध प्रकार के प्रयोग होते रहते हैं। उनमें सफलता-विफलता सुख-दुःख तथा जय-पराजय का होना भी स्वाभाविक होता है। प्रयोग के लिये कुछ समय तो दिया ही जाना चाहिये, अन्यथा प्रयोग करने के लिये उद्यतशील व्यक्ति के प्रति अन्याय होगा। भारत के प्रत्येक व्यक्ति को इसी तरह सोचना चाहिये कि जो हो रहा है, वह उचित हो या अनुचित, हमें प्रक्षुब्ध हुए बिना, समस्याओं का मूलगामी विचार करते हुए, हृदय में किसी प्रकार की अपकार-भावना को प्रश्रय न देकर, पारस्परिक वैमनस्य को छोड़कर, शान्त चित्त से प्रगति करते रहना चाहिये। हमारे मन की ऐसी सिद्धता रहनी चाहिए कि सभी क्षोभक कारणों को पचाकर हम आगे बढ़ेंगे। अपने हृदयस्थ अमृत में क्रोध का विष नहीं आने देंगे। जो दिखायी दे रहे हैं, वे जैसे भी हों, हमारे ही लोग हैं और हमारे समाज के ही सदस्य हैं। उनकी विचार-धारा कैसी भी हो, उन्होंने कुछ अच्छा कार्य भी किया है। अपनी स्नेहमयी उदारता और बन्धुता की भावना हम उनके लिये नहीं तो और किसके लिये प्रकट करेंगे?'

श्री गुरुजी ने विश्लेषरण करते हुए बताया—'आसेतु-हिमाचल विस्तृत भारत भूमि पर अनादिकाल से बसा हुआ, सर्वदूर फैला हुआ तथा विविधता से भरा हुआ हिन्दू समाज ही इस भूमि का पुत्र-समाज है और अखण्ड राष्ट्र-भावना ही इस हिन्दू समाज की आत्मा है। किन्तु इसे भुलाकर प्रादेशिक राष्ट्रवाद उत्पन्न हुआ। इसका कारण है यह भ्रामक धारणा कि इस देश में जो-जो रहने के लिये आये, उन सबकी सहायता लिये बिना राष्ट्र का हित नहीं किया जा सकता। अतः उन लोगों को, जो न आज हमारे हैं और न कभी थे ही, उनको हमने गले लगाने का प्रयास किया। इस निमित्त हम सबने मूल्य चुकाने की तैयारी दिखलायी तथा अन्त में ऐनक खरीदने के लिये आँखों को ही मूल्य में दे देने वाले मूर्ख के समान संसार में अपनी हँसी करवायी। अब गलती चाहे जिसके हाथ से हुई हो, उसे सुधारने का काम हम सबको मिलकर करना चाहिये। बस, किसी के कहने या करने से उत्पन्न होने वाले क्षोभ के मैल को अपने निर्मल हृदय में प्रवेश तक न करने दें।

फिर से सिर उठा रहे पुराने भेदों को मिटा दें । 'वयं-पंचाधिकं-शतं' वाली (हम पाँच पाण्डव हैं और वे सौ कौरव हैं, परन्तु शत्रु के आने पर हम सब मिलकर एक सौ पाँच है, इस प्रकार के) अपनेपन की भावना से भावित होकर एक-सूत्र-बद्ध राष्ट्र के निर्माण में सारी शक्ति लगा दें, फिर चाहे हमारा सम्पूर्ण जीवन ही बरबाद क्यों न हो जाये ।'

श्री गुरुजी के मन का धरातल बड़ा ऊँचा था । देश पर महान् विपत्ति आयी, लक्ष-लक्ष देशवासी उसकी लपटों में जल-भुन गये और अनेक प्रान्त हमसे छिन गये, इसके बाद भी श्री गुरुजी ने इस पापका दायित्व कभी भी किसी व्यक्ति विशेष के अथवा किसी दल विशेष के मत्थे मढ़ने का प्रयत्न नहीं किया । किसी व्यक्ति या दल को दोषी ठहराने के स्थान पर उन्होंने सदा ही उन मूल-भूत कारणों की ओर संकेत किया, जिसके फलस्वरूप यह संकट सामने आया । ऐसी अद्भुत थी श्री गुरुजी की मानस-रचना !

●

(दो)

विरोधी के प्रति मित्र-भाव

स्वर्गीय श्री विन्दुमाधवजी 'हिन्दू महासभा' के एक श्रेष्ठ कार्यकर्ता थे । उनकी धारणा थी कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कारण ही हिन्दू महासभा की प्रगति नहीं हो पा रही है । इसलिये जब कभी उनसे मेरी भेंट हुआ करती, तब वे अपना रोष प्रकट किया करते । वैसे, उनके और मेरे सम्बन्ध अत्यन्त स्नेहपूर्ण थे । उत्कट राष्ट्रभक्ति, अकृत्रिम स्नेह, मधुर व्यवहार, संकट के समय निडरता आदि गुण उनमें भरपूर थे और इन गुणों के कारण मेरे मन में उनके प्रति बड़ा आदर था ।

सन् १९६८ या ६९ की नागपुर की एक घटना है । एक दिन श्री गुरुजी और मैं कार्यालय की ओर जा रहे थे । रास्ते में एक दूकान पर श्री विन्दुमाधवजी बैठे हुए थे । उन्हें देखते ही श्री गुरुजी उनके पास गये तथा उनसे सटकर बैठ गये । उनके कन्धे पर हाथ धरकर श्री गुरुजी ने उनके साथ वार्तालाप आरम्भ कर दिया । श्री विन्दुमाधवजी का संघ के प्रति और मेरे प्रति रोष है, यह जानते हुए भी श्री गुरुजी की बातचीत में इस विषय की

रंच मात्र भी अभिव्यक्ति नहीं हुई। वर्षों के बाद मिलने वाले मित्र जिस रीति से प्रेमपूर्ण वार्तालाप करते हैं, बस, ठीक उसी रीति से उन दोनों की बातचीत चल रही थी। मुझे बार-बार भय लग रहा था कि श्री विन्दु माधव जी संघ पर कहीं टीका-टिप्पणी न करने लगें अथवा श्री गुरुजी के प्रति कहीं रोष व्यक्त न कर बैठें। परन्तु मेरी शंका निराधार सिद्ध हुई। दोनों अन्त तक प्रेमपूर्वक बातचीत करते रहे। अन्त में श्री गुरुजी ने कार्यालय की ओर जाने के लिये विदाई माँगी। जाने के लिये श्री गुरुजी जैसे ही उठे, वैसे ही झुकने लगे श्री विन्दुमाधवजी नमस्कार करने के लिये। तुरन्त श्री गुरुजी ने उन्हें बीच में ही रोक लिया और कहा—यह तो छोटे भाई का अधिकार है, ज्येष्ठ भ्राता का नहीं।

(तीन)

विरोध और प्रशंसा में स्थिरता एवं सन्तत्व

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के अतिरिक्त श्री गुरुजी किसी चीज को नहीं पहचानते थे। लोगों की प्रशंसा और विरोध, दोनों में ही वे विचलित नहीं होते थे। संघ पर प्रतिबंध लगने के बाद जब कुप्रचार के कारण संघ को शैतान का दूसरा स्वरूप समझा जाता था, तब भी वे अपने ध्येय पर स्थिर रहे और जब प्रतिबंध हटने के पश्चात् चारों ओर विशाल स्वागत समारोह हुए तो वे उस हवा में बह नहीं गये।

सन् १९४८ में जब संघ पर प्रतिबंध लगा, उस समय यदि वे चाहते तो शासन की खुली अवज्ञा करके अपनी शक्ति का परिचय दे सकते थे, किन्तु उन्होंने संघ-कार्य का विसर्जन करके अपनी देशभक्ति का परिचय दिया। प्रतिबंध उठने के पश्चात् स्थान-स्थान पर उनका भव्य स्वागत हुआ। दिल्ली के रामलीला मैदान पर जो सभा हुई, उसका आदि और अंत नहीं दिखता था। बड़े-से-बड़े संत के अहंकार को जगा देने के लिये वह दृश्य पर्याप्त था। जब श्री गुरुजी बोलने के लिये खड़े हुए तो उन्होंने कहा—'यदि अपना दाँत जीभ काट ले तो मुक्का मारकर वह दाँत नहीं तोड़ा जाता।' (जिनके कारण

संघ पर प्रतिबंध लगा और विपत्ति के दिन देखने पड़े, वे लोग भी अपने ही हैं।)

यह सुनकर लोग चकित रह गये। श्रोताओं ने तो आशा की थी कि श्री गुरुजी सरकार के अत्याचारों और अन्याय की निन्दा करते हुए खूब खरी-खोटी सुनायेंगे। किन्तु उस महापुरुष की गहराई को वे लोग नाप नहीं पाये। वहाँ तो सबके लिये आत्मीयता ही है।

(चार)

वे नहीं जानते

सम्पूर्ण राष्ट्र की एकात्मता की आवश्यकता का प्रतिपादन करते हुए श्री गुरुजी ने व्यथित हृदय से कहा—'ऐसे राष्ट्रीय-संकट के अवसर पर भी कुछ लोग छोटा मन करते हुए संघ पर टीका-टिप्पणी कर रहे हैं। उनकी आलोचना का उत्तर क्या मुझसे अपेक्षित है?

मैं तो केवल इतना ही कहूंगा—'ईश्वर उन्हें क्षमा करें, जो यह नहीं जानते कि वे क्या कहते हैं।'

(पाँच)

आरोपकर्ताओं के प्रति

सन् १९६२ के निर्वाचन के समय की बात है। निर्वाचन के दिनों में संघ पर अनेक अनर्गल एवं निराधार आरोप लगाये जाते हैं, जिनके कारण स्वयंसेवकों का उत्तेजित हो जाना सर्वथा स्वाभाविक रहता है। ऐसे आरोप लगाने वालों को न्ययालय के कटघरे में खड़ा किया जाना चाहिये, इस प्रकार का विचार अनेक लोगों के मन में उठता ही है। ऐसा ही विचार बिलासपुर के एक कार्यकर्ता के मन में भी उठा, जो स्वयं वकील भी हैं।

उन्होंने हिन्दी और अँगरेजी में छपे पत्रों की एक-एक प्रति श्री गुरुजी के पास नागपुर भेजी और उनसे न्यायालय में अभियोग चलाने के लिये अनुमति माँगी। श्री गुरुजी ने उनके पत्र का जो उत्तर दिया, वह पत्र मराठी में है, उसका अविकल हिन्दी अनुवाद यहाँ दिया जा रहा है—

नागपुर,
दिनाँक १६-२-६२

परम मित्र श्री – – –,

सप्रेम नमस्कार।

आपका पत्र कल प्राप्त हुआ, साथ में मित्रवर श्री – – – के नाम से प्रकाशित पत्र भी (अँग्रेजी व हिन्दी की एक-एक प्रति) प्राप्त हुए। पढ़कर खूब मनोरंजन हुआ। इस सम्बन्ध में न्यायालय में अभियोग चलाना चाहिये, ऐसा आपने सुझाया है। वहाँ पर जानकार लोग हैं, उनसे आप परामर्श ले सकते हैं।

मुझे तो ऐसा लगता है कि बिना कारण वितण्डावाद नहीं खड़ा करना चाहिये। होली के समय और चुनाव के वातावरण में लोगों का मन एवं वाणी पर संयम छूट जाता है। ऐसे समय में जो भी अभद्र बोला या लिखा जाता है, उसे हम लोग क्षम्य मानते हैं। धुलेंडी के समय अंग पर यदि कीचड़ पड़ जाये तो उस सम्बन्ध में हम कोर्ट में केस नहीं करते। चुनाव के समय होने वाले अभद्र व असत्य शब्दों के प्रयोग को भी उसी प्रकार का मानना चाहिये। मनकी संतुलनविहीन अवस्था को पागलपन या अँग्रेजी में Insanity कहते हैं। ऐसी स्थिति में किये गये पाप के लिये उस व्यक्ति को इंडियन-पेनल-कोड के अनुसार जबाबदार नहीं माना जाता। सिविल लॉ में भी ऐसी मानसिक अवस्था में किये गये व्यवहार बन्धनकारक नहीं रहते ऐसी मान्यता है। हमारे मन को दुखित करने वाली बातें जिस मानसिक अवस्था में से उन व्यक्तियों द्वारा की गयी होती हैं, वह मानसिक अवस्था चुनाव के सन्निपात-ज्वर में से निर्मित हुई असंतुलितता की स्थिति होने के कारण एक प्रकार के पागलपन की ही अवस्था है। अतः उनके इस मानसिक रोगावस्था के लिये उनके प्रति दयाभाव धारण करके उनके अभद्र शब्दों की उपेक्षा कर दें, यही मुझे उचित प्रतीत होता है।

और थोड़े दिनों में यह वातावरण समाप्त होने ही वाला है। तत्पश्चात् वे समस्त बन्धु हमारे ही होने के कारण हमारे निकट आवेंगे ही, यह सूत्र

दृढ़ता पूर्वक मन में रख कर जो योग्य व उचित लगे, वह करना चाहिमे।

बाकी सब कुशल है।

आपका,

(ह०) मा० स० गोलवलकर

श्री गुरुजी का यह पत्र जहाँ एक ओर कार्यकर्ताओं को संयम धारण करने की प्रेरणा प्रदान करता है, वहाँ दूसरी ओर श्री गुरुजी की शालीनता, उदारता, सर्वहितैषिता, आत्मविश्वास तथा संयम का दिग्दर्शन कराता है।

(छः)

गुणों के पारखी

घटना सन् १६७० की है, जब मैं भारतीय-साहित्य-परिषद का महामन्त्री था। परिषद के अध्यक्ष थे केरल के महाकवि श्री गोविन्द शंकर कुरूप। श्री कुरुप को कुछ लोगों ने मेरे बारे में यह कहकर भड़काने का प्रयास किया कि मैं राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का स्वयंसेवक हूं। श्री कुरूप ने मुझसे कई बार कहा कि संघ तो साम्प्रदायिक है और उसके नेता श्री गोलवलकर से मेरा (श्री कुरूप का) मतभेद है। यह सुनकर मैंने श्री कुरूप को श्री गुरुजी का वह पत्र पढ़वाया, जो उन्होंने मेरे एक पत्र के उत्तर में लिखा था। उस पत्र में श्री गुरुजी ने श्री कुरूप के व्यक्तित्व की भी कुछ चर्चा की थी। वह पत्र सुनकर महाकवि श्री कुरूप ने कुछ आश्चर्य-सा व्यक्त करते हुए कहा—अच्छा, ऐसी बात है ? क्या उनके विचार इतने उदात्त हैं। तब तो मैं उनसे अवश्य मिलूंगा।

महाकवि श्री कुरूप की इच्छा उनके (श्री कुरूप के) अस्वास्थ्य के कारण पूरी नहीं हो सकी। जब मैंने श्री गुरुजी को महाकवि श्री कुरूप की यह इच्छा सूचित की तब उन्होंने श्री कुरूप से सहर्ष भेंट करने के लिये कहा और बताया—संघ के प्रति अपप्रचार के कारण अपने देश के अनेक बुद्धिमान व्यक्तियों, साहित्यकारों एवं नेताओं को मेरे और संघ के बारे में अनेक प्रकार के भ्रम हैं। महाकवि श्री कुरुप ने अपने काव्य में आध्यात्मिकता का जो स्वर मुखरित किया है, उसके तो हम (राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के

स्वयंसेवक) प्रशंसक और समर्थक है। श्री कुरूप ने अपने काव्य के माध्यम से उस भारतीय चिन्तन-धारा को अभिव्यक्ति दी है, जिसे भारत की सनातन परम्परा कह सकते हैं।

श्री गुरुजी यह जानते थे कि श्री कुरूप का संघ से मतभेद है, इसके बाद भी उनके अनेक गुणों का वर्णन किया और उस वर्णन के द्वारा मैं जान पाया कि श्री गुरुजी गुणों के एक सच्चे पारखी है।

: १५ :

प्रशंसा-प्रसिद्धि से दूर

(एक)

मान-अमान को स्थान नहीं

देश में खड़े होने वाले अथवा चलने वाले प्रत्येक राष्ट्रीय कार्य को, जो इस देश के स्वाभिमान को, अस्मिता को जगाने के लिये किया जाता है, श्री गुरुजी का सहयोग और आशीर्वाद प्राप्त होता था। गोहत्या-निरोध-आन्दोलन इस देश की कोटि-कोटि जनता के हृदय की पुकार थी। इस आन्दोलन के समर्थन में श्री गुरुजी ने देश के कोने-कोने से दो करोड़ से भी अधिक जनता के हस्ताक्षर अल्पकाल में एकत्रित करवाये थे और राष्ट्रपति को भेंट किये।

इसी आन्दोलन के लिये उन्होंने हिन्दू समाज के सभी वर्गों और पंथों के श्रेष्ठ पुरुषों को एक मंच पर एकत्रित किया था। इस कार्य में उन्होंने स्वयं की प्रतिष्ठा की चिन्ता नहीं की। राष्ट्र-हित के समक्ष व्यक्तिगत मान-अमान को स्थान ही नहीं था। यहाँ तक कि एक लब्ध-प्रतिष्ठ एवं विद्वान संन्यासी जी को, जो संघ तथा श्री गुरुजी के कट्टर आलोचक थे, उनको भी इस आन्दोलन में उन्होंने अपना सहयोगी बना लिया। जब भी उन श्री स्वामी जी महाराज से भेंट होती थी, श्री गुरुजी उनको संन्यासी के रूप में साष्टांग प्रणाम कर सम्मानित करते थे।

(दो)

वहाँ मेरी जरूरत नहीं

श्री गुरुजी के प्रसिद्धि-पराङ्मुख-जीवन की एक आँखों देखी घटना याद आती है। सन् १९५२ में प्रयाग में महाकुम्भ के अवसर पर एक विशाल गोरक्षा सम्मेलन का आयोजन किया गया था। राजर्षि श्री पुरुषोत्तम दास जी टण्डन उसके अध्यक्ष थे। उस सम्मेलन के आयोजक थे संतप्रवर श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी।

उक्त सम्मेलन में दस लाख से भी अधिक गोभक्त नर-नारी एकत्रित थे। जहाँ तक दृष्टि जाती थी, जन-सागर हिलोरें लेता हुआ दिखलायी देता था। सभा-मंच पर राजर्षि श्री टण्डन जी एवं ब्रह्मचारी जी महाराज पहुंच चुके थे। श्री गुरुजी के आगमन की प्रतीक्षा हो रही थी। श्री गुरुजी अपने निश्चित समय पर पधारे। जब वे अपनी मोटरकार से उतरकर सभा-मंच की ओर बढ़ने लगे तो चारों ओर से 'पूज्य श्री गुरुजी की जय' की कोलाहलपूर्ण जयध्वधि गूंजने लगी। अपनी जय-ध्वनि सुनते ही श्री गुरुजी को जैसे बिजली का करेंट लग गया हो। वे रुके और क्षण भर में घूमकर अपनी मोटर की ओर तेज गति से बढ़ने लगे। मोटर में बैठकर श्री गुरुजी बोले—चलो वापस। जिस सम्मेलन में 'भारत माता की जय' और 'गोमाता की जय' की जय-जयकार के स्थान पर किसी व्यक्ति की जय बोलने वाले लोग एकत्रित हों, वहाँ मेरे लिये कोई स्थान नहीं हो सकता, वहाँ मेरी कोई जरूरत नहीं है।

यह स्थिति समझने में संत श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी को देर नहीं लगी। उन्होंने उपस्थित जन- समुदाय को शान्त कराया, 'गोमाता की जय' के नारे लगवाये और स्वयं दौड़कर श्री गुरुजी को पकड़ा और श्री गुरुजी को यह आश्वासन दिया कि अब भारत माता और गोमाता की जय के नारे ही लगेंगे, किसी व्यक्ति के नहीं।

ऐसे ध्येय-समर्पित निस्पृह जीवन के सम्बन्ध में कुछ लिखने में भी भय लगता है कि कहीं उनकी दिवंगत आत्मा को अपनी प्रशंसा सुनकर व्यथा न पहुंचे। यही कारण है कि आज उनके लक्ष-लक्ष अनुयायी चुप हैं, अपने आँसू तक नहीं बहा पा रहे हैं, क्योंकि वे प्रायः कहा करते थे—देश-सेवा जैसे महान् कार्य में लगे हुए कार्यकर्ता के पास रोने के लिये समय है ही कहाँ? यदि मौत के समय कार्य से फुरसत मिली तो अपनी गलतियों पर जी भरकर रो

लेंगे और अगले जन्म में उनकी पुनरावृत्ति न करने का संकल्प करते हुए अपनी काया को शान्त हो जाने देंगे ।

(तीन)

प्रसिद्धि से दूर

श्री गुरुजी में भारत के महान् कर्मयोगी एवं सन्त परम्परा के स्पष्ट दर्शन होते थे । मुझे १९४९-५० का वह समय याद है, जब मैं नागपुर से उस समय प्रकाशित होने वाले हिन्दी साप्ताहिक 'युगधर्म' में काम करता था । जुलाई १९४९ में संघ पर से सरकारी प्रतिबन्ध हटा। श्री गुरुजी कारा-मुक्त होकर बाहर आये । सर्वत्र हर्ष, उल्लास एवं स्वागत का वातावरण उमड़ पड़ा । पर श्री गुरुजी में न तो कहीं प्रतिबन्ध तथा कारावास काल के अप्रिय अनुभवों की कटुता दिखायी दी और न प्रतिबन्ध हटने के बाद होने वाले अपने विशाल एवं देशव्यापी स्वागत का हर्षातिरेक । वे पूर्णरूप से निस्पृह एवं स्थितप्रज्ञ ही रहे । इतना ही नहीं, सच्चे सन्तों की भाँति प्रसिद्धि एवं प्रचार से दूर रहने का वे सदैव और भरपूर प्रयास करते थे ।

मुझे आज भी उनकी वह खिन्न तथा अप्रसन्न मुद्रा भलीभाँति स्मरण है जो श्री गुरुजी के प्रथम जीवनी-लेखक और मेरे मित्र श्री गंगाधर इन्दूरकर पर प्रकट हुई थी, क्योंकि इन्दूरकर जी ने उनकी जीवनी लिखने का अक्षम्य अपराध किया था ।

मेरे साथ भी एक बार लगभग ऐसी ही घटना-घटी । १९४९ में युगधर्म का दीपावली विशेषाँक निकलने वाला था । सम्पादन का दायित्व मुझपर था । मैंने श्री गुरुजी से सन्देश माँगा, एक बार नहीं अनेक बार । पर प्रत्येक बार मुझे डाँट खानी पड़ी और निराश होना पड़ा । सन्देश देने के लिये मैंने माननीय कृष्णराव मोहरिल, पूजनीय ताईजी (श्री गुरुजी की माताश्री) तथा डा० आबाजी थत्ते आदि अनेक गण्यमान्य व्यक्तियों से सिफारिश करवायी, पर सब व्यर्थ । श्री गुरुजी टस-से-मस न हुए । अन्त में एक व्यक्ति ने मुझे माननीय बालासाहेब देवरस (वर्तमान सरसंघचालक) की शरण में जाने का परामर्श दिया । बालासाहेब से मैंने अपनी निराशा एवं व्यथा निवे-

दित की। उन्होंने अपनी सहज आत्मीयता से मुझे आश्वस्त किया और कहा कि अमुक दिन सायंकाल चाय के बाद जब श्री गुरुजी अपने बैठक में होंगे, पैड लेकर आ जाना। निर्देशानुसार निर्धारित समय पर मैं पहुंच गया। श्री गुरुजी ने पहिले तो आनाकानी की, पर अन्ततोगत्वा बालासाहेब के आग्रह पर सन्देश दे दिया। प्रचार से कोसों दूर रहने की उनकी सहज प्रवृत्ति की ये घटनायें प्रमाण हैं।

(चार)

प्रशस्ति खुल गयी

पत्रिका का सम्पादन करते हुए मैंने 'हेडगेवार-भवन' में रहने वाले संघ के एक पुराने प्रचारक श्री रामभाऊ जी जामगड़े का नाम देकर यह लिख दिया था कि श्री गुरुजी के सम्बन्ध में एक दिन डाक्टर श्री हेडगेवार जी ने उत्साह से कहा—Available best (उपलब्ध सर्वोत्तम)। यह बात 'राष्ट्रधर्म' पत्रिका में छप भी गयी और जब श्री गुरुजी ने पढ़ा तो बड़े नाराज, बहुत ज्यादा नाराज। यह नाराजगी उन्होंने इतने जोर से व्यक्त की कि उससे कई लोग परेशान हो उठे।

उन परेशान लोगों ने मुझसे कहा—आपने तो राष्ट्रधर्म पत्रिका में छाप दिया और मुसीबत हमारी हो गयी। हमने श्री गुरुजी से कहा भी कि वह तो वचनेशजी ने छापा है, किन्तु वे तो यही कहते रहे कि रामभाऊ से मिलने पर पूछूँगा कि क्या राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ उसने ही खोला था ?

श्री गुरुजी का यह क्रोध देखकर जिन्हें ज्यादा चिन्ता हुई, उन्होंने नागपुर इस आशय का पत्र भी लिख भेजा कि यह काम वचनेशजी का है, हमारा नहीं।

यह गम्भीर स्थिति देखकर मैंने सीधे श्री गुरुजी को पत्र लिखा—उस लेख में यदि कोई गलत सूचना है तो वह त्रुटि मेरी है, किसी अन्य की नहीं। रामभाऊ जी की नहीं, किन्तु सही सूचना की भी आपसे जानकारी जरूर चाहूंगा, जिससे कि अगले अंक में भूल-सुधार की गुंजाइश हो सके।

इस पर 'हेडगेवार-भवन' से श्री गुरुजी के बजाय एक अन्य कार्यकर्ता ने

उत्तर भेजा—श्री गुरुजी को आपका पत्र और एकाध अन्य पत्र भी मिले हैं, किन्तु आप कोई चिन्ता न करें।

फिर भी जब श्री गुरुजी सन् १९७० में कानपुर आये तो मैं इसी उद्देश्य से एक दोपहरिया में बैरिस्टर श्री नरेन्द्रजीत सिंह के यहाँ गया वहाँ बाहर लखनऊ के संघचालक श्री झामनदास जी भी बैठे हुए थे, उन्हें भी मिलना था। उस दिन श्री गुरुजी के पास लगभग डेढ़ घण्टा रहा, कई प्रसंग आये, किन्तु उन्होंने श्री रामभाऊ जी वाली बात का नाम तक नहीं लिया। मैं समझ गया कि अपनी प्रशस्ति के लिये लिखा शब्द ही उन्हें खल गया होगा। मेरे हांथ में 'राष्ट्रधर्म' का एक अंक था, सन् ७० की फरवरी का अंक। बात करते-करते उसी अंक को लेकर लगभग बीस मिनट तक श्री गुरुजी पढ़ते रहे। श्री झामनदास जी भी तब तक बैठे रहे। फिर वह प्रति हाथ में ही लिये-लिये कार में बैठकर जहाँ जाना था, चले गये।

मैं सोचता हूं कि वे कितने सहज थे, कितने सुलभ थे! उनके निकट जाने में कभी कोई झिझक नहीं हुई।

●

(पाँच)

विचित्र धर्म-संकट

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर प्रतिबन्ध लग जाने के कारण संगठन की आर्थिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गयी थी। ऋण का जो बहुत बड़ा भार था, वह अलग से चिन्ता का विषय था। श्री गुरुजी के प्रति जन-साधारण की जो श्रद्धा-भावना थी, उसको ध्यान में रखते हुए संघ के केन्द्रीय कार्यकारी मण्डल ने सन् १९५६ में एक निर्णय लिया। इस निर्णय के अनुसार श्री गुरुजी के सार्वजनिक अभिनन्दन की योजना थी और इसी अभिनन्दन के अवसर पर श्रद्धा-निधि के रूप में थैली भेंट करने का विचार था। श्री गुरुजी की पूर्वसम्मति के बिना ही केन्द्रीय कार्यकारी मण्डल ने यह निर्णय ले लिया था। श्री गुरुजी की स्वीकृति प्राप्त करने के लिये मण्डल ने अपनी योजना का विवरण उनके सामने रखा। श्री गुरुजी के लिये यह एक धर्म-संकट की स्थिति थी। प्रशंसा, सराहना, अभिनन्दन आदि से जिनका जीवन सर्वदा-

सर्वथा दूरातिदूर रहा, वे भला क्योंकर ऐसे कार्य के लिये अपनी स्वीकृति प्रदान करें, किन्तु संघ के केन्द्रीय कार्यकारी मण्डल के निर्णय की अवहेलना भी कैसे की जाये ? व्यक्तिगत सम्मान के प्रति अत्यधिक वितृष्ण रहने पर भी संगठन के आज्ञाकारी स्वयंसेवक के रूप में श्री गुरुजी ने अपनी स्वीकृति दे दी।

स्थान-स्थान पर श्री गुरुजी की जय-जयकार हुई, सार्वजनिक अभिनन्दन हुए, पुष्प-वृष्टि हुई तथा लगभग २१ लाख रुपयों की श्रद्धा-निधि के अर्पण के रूप में यह योजना सम्पन्न हुई। अभिनन्दन-कार्यक्रम सम्पन्न हो जाने पर अन्त में प्रमुख कार्यकर्ताओं का एक कार्यक्रम हुआ, जिसमें श्री गुरुजी के हृदय की अन्तर्वेदना फूट पड़ी। व्यक्तिगत सत्कार के कारण उनके आहत हृदय की टीस भरी व्यथा जिन किंचित् शब्दों में व्यक्ति हुई, उन मर्मभेदी शब्दों ने सारे कार्यकर्ताओं को रुला दिया। उनके कथन का भाव यह था—

'संघ-संस्थापक डा० हेडगेवार जी के जीवन-काल में उनके गले में पुष्प-माला डालने का साहस कभी किसी संघ-बन्धु ने नहीं किया। केवल उनकी शव-यात्रा के समय ही उनके शव पर पुष्प चढाये गये और मैं ऐसा अभागा हूं कि उन्हीं के आसन पर आसीन मुझको मेरे ही स्वयंसेवक फूलमालाओं से लादकर मेरा सार्वजनिक अभिनन्दन करके मेरी जय-जयकार कर रहे हैं। इससे बड़ा दुर्भाग्य मेरा और क्या होगा ? पूज्य डा० हेडगेवार साहब के ५१ वर्ष की अल्पायु में जीवन-लीला समेट लेने पर उन पर पुष्प चढ़ाये गये थे और मेरी आयु के भी ५१ वर्ष पूरे होने पर मेरे जीवन काल में यह आयोजन किया जा रहा है।'

वातावरण अत्यधिक व्यथापूर्ण हो गया था। अतः श्री गुरुजी ने विषय बदला और वातावरण की गम्भीरता को कम करते हुए व्यक्ति-पूजा, सस्ते नारेबाजी, छिछली-प्रचार-प्रणाली आदि का परित्याग करने की प्रेरणा दी।

: १६ :

महापुरुषों एवं नेताओं से सम्पर्क

[एक]

उनका कहना ठीक है

संघ शिक्षा शिविर के लिये श्री गुरुजी लखनऊ पधारे थे। उसी समय की एक घटना है। पुरी के श्री शंकराचार्यजी महाराज उन्हीं दिनों लखनऊ आये हुए थे। गोरक्षणार्थ आमरण अनशन की समाप्ति के बाद वे देश का भ्रमण कर रहे थे। स्थान-स्थान पर अपने प्रवचन के बीच गोरक्षा के सम्बन्ध में वे शास्त्रार्थ करने की चुनौती दे देते थे। लखनऊ में भी प्रवचन देते हुए उन्होंने शास्त्रार्थ करने के लिये चुनौती दे दी। समाचार-पत्रों में यह समाचार पढ़कर श्री गुरुजी चिन्तित हो उठे। सायंकाल की चाय के समय जब चर्चा चली तो वे बोले—यह एक अत्यन्त ही गम्भीर मामला है। इसके ऊपर देश की परम्परा के सम्मान का प्रश्न निर्भर है।

लोगों की समझ में नहीं आया कि श्री गुरुजी क्या कहना चाहते हैं। बात आयी-गयी-सी हो गयी। लेकिन रात में सोने के पूर्व एक कार्यकर्ता को बुलाकर उन्होंने पूछा—पूज्य श्री शंकराचार्यजी अभी लखनऊ में हैं कि चले गये ?

उस कार्यकर्ता ने बताया—अभी लखनऊ में ही हैं।

तब श्री गुरुजी ने उस कार्यकर्ता से कहा—'कल उनके पास जाना और पूज्य श्री चरणों में मेरा साष्टांग प्रणाम कहना। और कहना कि मेरे पास कार्यक्रमों की व्यस्तता के कारण समय नहीं है, अन्यथा मैं स्वयं श्री चरणों में उपस्थित होता। अपनी इस विवशता के लिये मैं क्षमा-प्रार्थी हूं। इसके बाद फिर मेरा यह सन्देश निवेदित कर देना—पूज्य चरण का कार्य शास्त्रार्थ करना नहीं, शास्त्रार्थों की अध्यक्षता करना एवं उनका निर्णय करना है। देश में तर्क-शास्त्रियों तथा बुद्धिमान लोगों की कमी नहीं है। यदि पूज्य चरण स्वयं इस प्रकार के विवाद में पड़ जायेंगे तो सम्पूर्ण परम्परा को आघात पहुंचने का खतरा उत्पन्न हो सकता है। आप शास्त्रार्थ करने की चुनौती न दें तो बड़ी कृपा होगी।'

वह सन्देश पूज्य चरण श्री शंकराचार्यजी महाराज के समक्ष जब निवेदित हुआ तो पहिले वे कुछ देर तक आँख बन्द किये सोचते रहे, फिर गद्‌गद् होकर बोले—गुरुजी से कहना कि उनका कहना ठीक है।

(दो]

मस्तवाना साहिब गुरुद्वारे

सन् १९४७ के जुलाई मास में पंजाब में संगरूर के पास मस्तवाना साहिब गुरुद्वारे में संघ-शिक्षा-शिविर लगा हुआ था। प्रथम सप्ताह में गुरुद्वारा के नियमों का पूर्णरूप से पालन करने का अभ्यास न रहने के कारण वहाँ के अधिकारियों के मन में कुछ क्षोभ भी था। इतने में उनको श्री गुरुजी के आने की सूचना मिली। उन्होंने बड़े उत्साह से कहा—हम लोग श्री गुरुजी को गुरुद्वारे में बुलाना चाहते हैं।

हम लोगों ने बात तो मान ली, पर एक बात को लेकर कुछ अड़चन आ गयी। परम्परा के अनुसार गुरुद्वारे में नंगे सिर जाना सम्भव नहीं और श्री गुरुजी सिर पर कुछ पहनते नहीं। अब प्रश्न यही था कि श्री गुरुजी गुरुद्वारे में जावें तो कैसे जावें? सभी चुप थे। रात भर उनके प्रमुख नेताओं का विचार-विनिमय होता रहा। प्रातःकाल होते ही वे दौड़े हुए आये और

कहा—संन्यासियों के लिये सिर ढकना अनिवार्य नहीं हैं। श्री गुरुमहाराज जा सकते हैं। हाँ, उनके सब साथी टोपियाँ पहनकर आवें।

बात तय हो गयी। श्री गुरुजी के आते ही उनको सब बात बतलायी गयी। उन्होंने सहर्ष स्वीकृति प्रदान कर दी। उनके साथ हम लगभग तीस कार्यकर्ता गुरुद्वारे में दस बजे के समय गये। सभी प्रमुख सिक्ख नेता स्वागतार्थ खड़े ही थे। श्री गुरुजी अन्दर गये। श्री गुरुग्रन्थसाहिब के सामने पहुंचकर उन्होंने साष्टांग प्रणाम किया और वहीं बैठ गये। सिक्ख नेताओं ने श्री गुरुजी का अभिनन्दन किया। बड़ा ही श्रद्धामय भावपूर्ण वातावरण था।

इसके बाद श्री गुरुजी बोलने के लिये खड़े हुए। श्री गुरुजी ने कहा—आज का दृश्य देखकर मेरा मन ३५० वर्ष पूर्व की एक घटना को स्मरण करके आनन्दित हो उठा है। उस समय भारत माँ का एक पुजारी सपूत (गुरु श्री गोविन्द सिंहजी महाराज) दूसरे पुजारी वीर (छत्रपति श्री शिवाजी महाराज) को मिलने के लिये दक्षिण भारत की ओर गये थे, परन्तु उनके वहाँ पहुंचने के पूर्व ही श्री शिवाजी महाराज की मृत्यु हो गयी और भेंट नहीं हो पायी। ऐसा लगता है कि वह मिलन आज हो रहा है। मेरा विश्वास है कि इसके बाद धर्म पर कोई आँच नहीं आवेगी।

यह सुनकर सभी भाव-विभोर हो उठे। इसके बाद हमें वहाँ कोई असुविधा नहीं हुई। बड़ा स्नेह-स्निग्ध और श्रद्धापूर्ण वातावरण बन गया।

(तीन)

प्रथम, पर प्रगाढ़ परिचय

अपने प्रवास के कार्यक्रम के अनुसार श्री गुरुजी सन् १९४२ में लाहौर आये हुए थे। दूसरे दिन दोपहर के समय नामधारी पंथ के श्री सद्‌गुरु श्री प्रतापसिंहजी महाराज अपने दो सुपुत्रों के साथ कृष्णनगर कार्यालय पहुंचे श्री गुरुजी से मिलने के लिये। दोनों सन्तों में बहुत देर तक मधुर एवं गम्भीर बातें होती रहीं।

श्री सद्‌गुरुजी के चले जाने के बाद श्री गुरुजी ने मुझसे कहा—क्या हम

उनके डेरे पर जा नहीं सकते थे ?

मैंने निवेदन किया—ऐसा मैं भी सोच रहा था, पर उन्होंने ही कहा कि मैं स्वयं उधर ही गाड़ी से आ रहा हूं। मैं ही भेंट करूँगा।

श्री सद्गुरुजी की श्री गुरुजी से यह प्रथम भेंट थी, पर यह प्रथम परिचय ही इतना प्रगाढ़ था कि श्री सद्गुरुजी का सहयोग श्री गुरुजी को सदा-सदा मिलता रहा। सन् १९५३ में गोवध निषेध आन्दोलन का समारोप समारम्भ दिल्ली में हुआ था, उस समय श्री सद्गुरु श्री प्रतापसिंहजी महाराज ही इसके अध्यक्ष थे।

(चार)

मेरा प्रथम परिचय

प्रसंग सम्भवत: सन् ४० या ४१ का है। श्री करपात्रीजी महाराज एक विशाल यज्ञ कानपुर में करवा रहे थे। मैं इसी यज्ञ में भाग लेने जा रहा था। इलाहाबाद स्टेशन पर मैं ट्रेन में चढ़ने लगा। जिस प्रथम श्रेणी के डिब्बे में मैं चढ़ रहा था, उसी में गुरु श्री गोलवलकरजी भी बैठे हुए थे। वे भी कानपुर की ओर ही जा रहे थे। गुरुजी के साथ के दो स्वयंसेवक प्रबल प्रहरी के रूप में डिब्बे के द्वार को रोक कर खड़े हुए थे। ज्यों ही मैं चढ़ने का उद्यम करने लगा, उन स्वयंसेवकों ने कहा—इसमें स्थान नहीं है, आगे जाइये।

मैं प्रयाग का रहने वाला, प्रयाग मेरा घर, मेरे घर के स्टेशन पर ही कोई मुझे रोक दे, यह मुझे बड़ा बुरा लगा। मुझे रोकना यह उनका दुस्साहस ही था। मैं उन्हें ठेलकर बलपूर्वक भीतर घुस गया। वहाँ मैंने देखा कि पंचकेशी सफेद कुर्ता पहिने सौम्य मूर्ति एक सज्जन बैठे हैं। उन्होंने बड़े आदर से मुझे अपने पास बिठाया। मैंने यह समझा कि ये गुजरात के कोई महन्त होंगे। मैंने पूछा—आप क्या करते हैं ?

वे बोले—यही, बच्चों को व्यायाम सिखाता हूं।

मैंने पूछा—कहाँ रहते हो ?

उन्होंने बताया—नागपुर।

मुझे याद था कि डा० हेडगेवार ने व्यायाम सिखाने के लिये एक संघ की स्थापना की है। मैं उनकी नागपुर शाखा में गया भी था। पहिले के स्वयंसेवक मेरे पास आते भी थे।

मैंने पूछा—डाक्टर साहब कहाँ हैं ?

उन्होंने कहा—उनका देहान्त हो गया।

डाक्टर साहब के एक चाचा थे, मेरे पास नागपुर में आते थे, वे मुझसे बड़ा प्रेम मानते थे। मैंने पूछा—वे कहाँ हैं।

वे बोले—उनका भी देहान्त हो गया। मैं उन्हीं का काम देखता हूं।

तब तक उत्तर प्रदेश में संघ-कार्य का विशेष प्रसार नहीं था। वह नागपुर के आस-पास ही सीमित था। उनकी सतत लगन से सम्पूर्ण देश में संघ-कार्य का प्रसार ऐसे अनुशासन-बद्ध और सुसंगठित रीति से हुआ कि उसकी कोई तुलना नहीं।

एक बार किसी पत्र या पत्रिका में मैंने उनकी प्रथम भेंट का विवरण छपवाया था। द्वार के प्रबल प्रहरी के रूप में खड़े दो स्वयंसेवकों में से एक का नाम मैंने भाऊराव देवरस दे दिया था कि स्यात् वे भी थे। भेंट-विवरण छपने के बाद श्री गुरुजी एक बार मेरे पास आये तो उनके साथ श्री देवरसजी भी थे। उस समय श्री देवरसजी ने हँसते हुए कहा—मेरा नाम आपने झूठ ही दे दिया। मैं आप पर मुकदमा चलाऊँगा।

तब श्री गुरुजी हँसकर बोले—मैं वकील हूं। मुकदमा चल ही नहीं सकता। आपने स्यात् कहा था, निश्चित नाम नहीं लिया था।

सब हँस पड़े। वस्तुतः उनसे सर्व-प्रथम परिचय भी विचित्र ढंग से ही हुआ था।

(पाँच)

ध्येय सदैव महान रखो

श्री गुरुजी तब काशी में थे। आधी रात के समय दरवाजे पर थपथपाने की आवाज सुनकर जब उन्होंने दरवाजा खोला तो देखा कि पूज्य-

पाद श्री मालवीय जी (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक) स्वयं खड़े हैं। मालवीय जी ने प्रस्ताव किया–चलो, घूमने चलें।

प्रातःकाल तक उन्होंने विश्वविद्यालय के कई चक्कर लगाये। श्री गुरु जी के ही शब्दों में–हमारे संभाषण में अनेक विषय आ गये थे। वे अपने जीवन के अमूल्य अनुभव सुनाते गये। अन्त में उन्होंने एक बात कही, जो अब भी मेरे कानों में गूंज रही है :—

जीवन में कभी क्षुद्र ध्येय का स्पर्श तक मत करो। सदैव श्रेष्ठता की ओर ही लक्ष्य हो। देखो, यह महान् संस्था (विश्वविद्यालय) कैसे बनी ? दान स्वीकार करते समय भी मैंने अल्पदान कभी स्वीकृत नहीं किया, इसीलिये यह महान् कार्य सफल हुआ।

श्री गुरुजी के जीवन में अपने आशीर्वचन को साकार होते हुए देखकर देवलोक में मालवीय जी की आत्मा कितनी प्रसन्न होती होगी !

●

(छः)

अचानक उतर पड़े

सन् १९४६ की बात है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में पूज्य श्री गुरुजी संघ स्वयंसेवकों के समक्ष भाषण दे रहे थे। (विश्वविद्यालय) की मुख्य शाखा पर कई स्थानों के स्वयंसेवक एकत्रित हुये थे। सारे स्वयंसेवक गणवेश धारण किये कई पंक्तियों में बैठे हुए थे तथा एकाग्र चित्त से वह भाषण सुन रहे थे।

अचानक श्री गुरुजी अपने भाषण को रोककर, वाक्य को पूरा भी नहीं कर पाये, अधूरे वाक्य को जहाँ-का-तहाँ छोड़कर मंच से चटपट नीचे उतर गये। स्वयंसेवकों के लिये यह अप्रत्याशित घटना थी। सभी के मन में बड़ा कौतूहल, बड़ी जिज्ञासा थी कि क्या हुआ, पर अनुशासन-बद्ध होने के कारण सभी अपने-अपने स्थान पर स्थिर बैठे रहे। लगभग दस मिनट बाद श्री गुरुजी वापस मंच पर आये तथा अधूरा वाक्य, जहाँ उनका भाषण विरमित हो गया था, उसी अधूरे वाक्य के आगे से भाषण पुनः आरम्भ हो गया। उनकी धारणा-शक्ति का यह भी एक आश्चर्य ही था।

कार्यक्रम के समाप्त होने पर पता चला कि उस समय महामना श्री मालवीय जी (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक एवं हिन्दू-जीवन-पद्धति के गौरवास्पद पूज्य श्री मदनमोहनजी मालवीय) कार से पधारे थे। श्री मालवीयजी के आगमन की जानकारी श्री गुरुजी को ज्यों ही हुई, त्यों ही वे मंच से तुरन्त उतर पड़े थे तथा जाकर उन्होंने पूज्य श्री मालवीयजी के चरणों को प्रणाम किया।

विश्वविद्यालय में अध्यापन-कार्य करते समय श्री गुरुजी का पूज्य श्री मालवीयजी के साथ बड़ा निकट सम्पर्क रह चुका था। श्री मालवीयजी ने अपना भावभरा स्नेहाशीर्वाद तो दिया ही, अत्यल्प बातचीत के बाद तुरन्त मच पर वापस जाने का आदेश भी दिया, अन्यथा श्रद्धाभिभूत श्री गुरुजी न जाने कितनी देर तक श्री मालवीयजी के पास खड़े रह जाते।

(सात)

सबके विश्वसनीय थे

श्री गुरुजी की प्रेरणा से ही 'धर्मवीर डा० मुंजे जन्म शताब्दी समारोह समिति' की स्थापना हुई थी। इस समिति के सभी छोटे-बड़े कार्यों की ओर स्वयं श्री गुरुजी ध्यान दिया करते थे। हम कार्यकर्तागण जब कभी निराश हो जाते थे, तब वे हमें उत्साहित किया करते थे। नागपुर नगर में डा० मुंजे की पूर्णाकृति प्रतिमा का अनावरण समारोह तो मेरी स्मृति में सदैव ही समाया रहेगा।

यह समारोह २७ दिसम्बर १९७२ की रात्रि को सात बजे सम्पन्न हुआ था। सभा-मंच पर श्री गुरुजी, समारोह के प्रमुख अतिथि भूतपूर्व स्थल-सेनाध्यक्ष जनरल श्री करिअप्पा नागपुर नगरपालिका के उपमहापौर आदि विराजमान थे। चौराहे से मिलनेवाले सारे रास्ते नर-नारियों से खचाखच भरे हुए थे। सारा क्षेत्र विद्युतदीपों से जगमगा उठा था। नागपुर डा० मुंजे की कर्मभूमि थी। परन्तु दुर्भाग्य से इस नगरी में जब २५ वर्ष पूर्व उनकी मृत्यु ३ मार्च १९४८ को हुई थी, तब प्रकटरूप से दो आँसू भी नहीं बहाये गये थे। अपनी व्यथा को अपने हृदय में ही दबाये रखना पड़ा था, क्योंकि उस

समय सत्ताधारी दल की वक्रदृष्टि उन पर थी। उनकी मृत्यु के २५ वर्ष के बाद नागपुर नगरी ने उसकी भरपाई की सहस्रों की संख्या में इस समारोह में सम्मिलित होकर। सभी लोगों ने अपने दिवंगत नेता का श्रद्धासहित अभिवन्दन किया और उनके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त की। यह सब सम्भव हुआ श्री गुरुजी की प्रेरणा से। नागपुर में श्री गुरुजी का वह अन्तिम सार्वजनिक कार्यक्रम था।

प्रारम्भ में इस बात का बड़ा सन्देह था कि हम लोग प्रतिमा-निर्माण के लिये तथा शताब्दी-समारोह के लिये पर्याप्त धन-संग्रह कर सकेंगे या नहीं। मुंजे स्मारक समिति के अन्य कार्यों के लिये भी धा की आवश्यकता थी। श्री गुरुजी ने हम लोगों से यह सब कार्य करवा लिया। धन-संग्रह के लिये जनता का आह्वान करना था कि जन-जन उदारतापूर्वक मुंजे स्मारक समिति को आर्थिक सहयोग प्रदान करे। अब प्रश्न यह उठा कि इस आह्वान के लिये लिखे जाने वाले आवेदन में किसका-किसका नाम रहे। विचार करने के बाद विभिन्न प्रान्तों के सात व्यक्तियों अ नाम चुने गये, जिनमें दक्षिण के श्री राजाजी का भी नाम था। श्री गुरुजी ने मद्रास शाखा के संघ-चालकजी को पत्र लिखा कि वे श्री राजाजी से मिलकर एतदर्थ उनकी स्वीकृति प्राप्त कर लें।

मद्रास के संघचालकजी ने श्री राजाजी से भेंट की और अपनी बात उनके सामने रखी। सारी बात सुनकर श्री राजाजी ने स्पष्ट रूप से अस्वी-कार करते हुए कहा—मैंने एक नियम बना लिया है कि निधि-संग्रहार्थ निकाले जाने वाले किसी भी आवेदन-पत्र पर मैं कभी हस्ताक्षर न करूँ, क्योंकि इस बारे में मेरे अनुभव बड़े ही कटु और कष्टपूर्ण हैं।

श्री गुरुजी ने इस विषय में एक पत्र श्री राजाजी के नाम लिखाथा, और यह पत्र श्री संघचालकजी के पास था। श्री संघचालकजी ने वह पत्र श्री राजाजी के सामने रख दिया, जिसमें श्री गुरुजी ने श्री राजाजी से यह अनु-रोध किया था कि यदि वे उचित समझें तो आवेदन-पत्र पर हस्ताक्षर कर दें। श्री गुरुजी के पत्र को देखते ही श्री राजाजी ने उस आवेदन-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये और उन्होंने कहा—श्री गुरुजी पर मेरा विश्वास है कि वे जिस काम के लिए पैसा इक्ट्ठा करेंगे, उसी पर वे उस पैसे को खर्च करेंगे।

श्री गुरुजी सबके विश्वास-पात्र थे और इस विश्वसनीयता के कारण हम लोगों को धन-संग्रह में कोई कठिनाई नहीं हुई। इतना ही नहीं, इस कार्य को श्री गुरुजी का समर्थन है, इस कार्य में उनकी रुचि है, उनकी परोक्ष

सक्रियता है, यह सब देखकर सबने पूरा सहयोग दिया और सारा आयोजन बड़ी सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ।

आठ

जब गाँधी जी गुरुजी से मिले

दिल्ली में गाँधी जी एक बार भंगी कालोनी में ठहरे हुए थे। मध्य रात्रि के समय बहुत से मुसलमान गुण्डों ने उस स्थान को घेर लिया और भद्दी-भद्दी गालियाँ सुनायी। दूसरे दिन प्रातः काल श्री कृष्णन् नायर, जो बाद में संसद-सदस्य बन गये थे, मेंरे पास आये और कहा—यह बडी गम्भीर बात है। हमें राष्ट्रीय नेताओं की सुरक्षा के लिये संगठित होना चाहिये।

मैं उनसे पूरी तरह सहमत था। इसके बाद अगले कुछ दिनों, जब तक गाँधी जी वहाँ रहे स्वयंसेवकों के दल बारी-बारी से रात्रि के समय पहरा देते रहे। जिस दिन काँग्रेस नेताओं की अन्तरिम सरकार के मंत्रियों के रूप में शपथ दिलायी गयी, सैकड़ों मुस्लिम गुण्डों ने सचिवालय के समक्ष उन्हें गालियाँ दी तथा अपमानित किया। पं० नेहरू की कार में जलती सिगरेट के टुकड़े फेंके गये। श्री देशबन्धु गुप्त मुझसे मिलने 'ई-४२ कमलानगर' आये, जो उस समय संघ का मुख्य कार्यालय था। उन्होंने आग्रहपूर्वक—कहा नेतागण अगले ही दिन अपने-अपने विभागों का कार्यभार संभालने वाले है, लेकिन इस बात का भय है कि मुसलमान गुण्डे कोई हिंसात्मक उपद्रव न करें। किसी भी अप्रिय घटना को रोकने के लिये बड़ी संख्या में स्वयंसेवकों को पहुंचना चाहिये।

अगले दिन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के हजारों स्वयंसेवक निश्चित स्थान पर पहुंच गये। मुस्लिम गुण्डों की संख्या उनसे कहीं कम थी, फलतः कोई गड़बड़ी नहीं हो सकी।

सम्भवतः सितम्बर १९४७ की बात है। मैं आचार्य श्री कृपलानी के साथ बैठा हुआ था उसी समय एक अधीर व्यक्ति आया और कहा—गाँधी-जी को मर जाना चाहिये।

कृपलानी जी ने कहा—जो कोई गाँधी जी की हत्या करेगा, वह अपने ही समुदाय को क्षति पहुंचायेगा। अगर कोई मुसलमान उनकी हत्या करता है। तो इस्लाम भारत से मिट जायेगा।

इस पर मैंने भी डा० हेडगेवार का वह कथन सुनाया, जो अनेक वर्षो पूर्व उन्होंने कुछ उग्रवादी क्राँतिकारियों से इसी संदर्भ कहा था। डा० हेडगेवार ने सावधान किया था—गाँधी जी की हत्या करने से केवल गाँधी-वाद को ही बढ़ावा मिलेगा। मारने वाला जिस वाद का विश्वासी होगा, वह वाद हत्या से और कमजोर होगा।

एक अन्य अवसर पर जब मैं गाँधी जी के पास गया, मौलाना आजाद भी वहाँ थे। श्री घनश्याम दास जी बिरला ने गाँधी जी प्रार्थना-सभाओं में बार-बार विघ्न होने पर अपनी चिन्ता पुनः दोहरायी और उन्होंने कहा—मुझे हर प्रकार के लोगों का आना पसन्द नहीं है, परन्तु मुझे बापू जी के लिये सब वर्दाश्त करना पड़ता है इसी प्रकार जो लोग गाँधी जी को प्रार्थनाओं में कुरान पढ़ना पसन्द नहीं करते, उन्हें भी गड़बड़ी करने की जरूरत नहीं है।

मेरी उनसे पूर्ण सहमति थी। इसी अवसर पर गाँधीजी ने मुझे बतलाया—किदवई ने शिकायत की है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ मुस्लिमों के विरुद्ध हिंसा कार्यों में संलग्न है उन्होंने कुछ गड़े हुए शास्त्रास्त्र भी मुझे दिखाये थे, जिन्हें उन्होंने संघ के बताये।

मैंने गाँधी जी को बतलाया—यह बात सही नहीं हो सकती।

गाँधी जी ने कहा—किदवई मुझसे झूठ नहीं बोल सकते।

मैंने कहा—वे आपसे नहीं, केवल संघ के विरुद्ध झूठ बोल रहे है।

बाद में वे शस्त्रास्त्र 'प्रसिद्ध कान्धला-शस्त्रास्त्र-काण्ड (मुजफ्फरनगर उ० प्र०) से सम्बंधित पाये गये। जिला तथा सत्र—न्यायाधीश ने सभी अभियुक्तों को बरी कर दिया तथा कहा—सभी शस्त्रास्त्र पुलिस द्वारा कुछ निर्दोष व्यक्तियों को फसाने के लिये गाड़े गये और खोदे गये थे।

इसी समय गाँधी जी ने गुरुजी से भेंट करना चाहा। श्री गुरुजी को दिल्ली से कलकत्ता के लिये प्रस्थान करना था। और जब वे हवाई अड्डे पर जाने की तैयारी कर रहे थे, तभी टेलीफोन से गाँधी जी का सन्देश मिला—मुझसे मिलकर ही जाइयेगा।

गाँधी जी का सन्देश मिलने पर हम लोग विड़ला भवन गये। गाँधी जी ने श्री गुरुजी से कहा—ऐसा समाचार सुनने में आया है कि संघ के स्वयंसेवक दंगों में भाग लेते हैं।

श्री गुरुजी ने कहा—'यह समाचार पूर्णतः असत्य है। प्रत्येक स्वयंसेवक के बर्ताव की शुद्धता के बारे में दावा तो नहीं कर सकता, तथापि संघ का उद्देश्य हिन्दू-समाज और हिन्दुत्व की विशुद्ध सेवा करना है और वह चाहता है इस उद्देश्य की सिद्धि किसी पर भी अन्याय किये बिना ही हो जाये। यद्यपि संघ किसी पर भी आक्रमण करना नहीं चाहता, फिर भी आत्यान्तिक अहिंसा पर उसका विश्वास नहीं। संघ आत्म-रक्षा करना सिखलाता है। प्रतिशोध संघ ने कदापि सिखाया ही नहीं।'

बातचीत के बीच परेशान मन से गाँधी जी ने गुरुजी से कहा—इन दिनों चारों ओर दंगे हो रहे हैं। लोग मेरे शान्ति-सन्देश की उपेक्षा कर रहे हैं। आज मेरी आवाज कोई नहीं सुनता। शान्ति बनाये रखने के लिये आप जनता के नाम एक वक्तव्य जारी कर दें।

गुरुजी ने कहा—देश में मेरी कौन सुनेगा ? सर्वत्र आपके शब्दों का आदर है। आप बुजुर्ग हैं। अतः उचित यही है कि वक्तव्य आप ही निकालें। आप चाहें तो उसमें मेरी सहमति का उल्लेख कर सकते हैं।

गाँधी जी का आग्रह बना रहने पर श्री गुरुजी ने एक शान्ति-अपील लिख कर दे दी। इसके बाद अगले ही दिन सभी समाचार पत्रों में वह अपील प्रकाशित हुई और आकाशवाणी द्वारा उस अपील का प्रसारण भी हुआ।

गाँधी जी ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यकर्ताओं को सम्बोधित करने की अपनी इच्छा भी गुरुजी के समक्ष व्यक्त की। अतः हम लोगों ने उन्हें निमन्त्रण दिया—आप अपनी सुविधानुसार जहाँ चाहें वहाँ स्वयंसेवकों को सम्बोधित कर सकते हैं।

गाँधी जी मंगलवार १६ सितम्बर को भंगी कालोनी के खुले मैदान में संघ के पाँच सौ कार्यकर्ताओं को सम्बोधित करने हेतु पधारे। मैंने उनका स्वागत किया और कहा—हमारा एक ही ईश्वर है 'भारतमाता'।

गाँधी जी ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के अनुशासन और विचारधारा की सराहना की तथा कहा—जो संगठन उच्च विचारों और जन सेवा की गहन भावनाओं से पनपता है उसका निरन्तर सुदृढ़ होते जाना अवश्यम्भावी है।

उन्होंने स्वयं अपने आपको सनातनी हिन्दू घोषित किया तथा बैठक के पूर्व संघ के गण-गीत को अत्यधिक पसन्द किया था।

[नौ]

नेहरू जी की गुरुजी से भेंट

सम्भवतः सन् १९५७-५८ की बात है, ठीक तिथि व मास स्मरण नहीं। उन दिनों पूज्य गुरुजी तत्कालीन प्रधानमंत्री पं० जवाहर लाल नेहरू से दिल्ली में भेंट-वार्ता करके लौटे थे। नागपुर लौटने पर हम लोगों ने गुरुजी से पूछा—नेहरू जी से आपकी क्या बातचीत हुई।

गुरुजी ने बताया—नेहरू जी बहुत ही शुद्ध धाराप्रवाह हिन्दी में बात करते रहे, वरन् मुझे तो बोलते समय चिन्ता करनी पड़ी कि मेरे कथन में कहीं कुछ शब्द उर्दू या अंग्रेजी के न शामिल हो जायें। जहाँ तक वार्ता के विषय की बात है, पंडित जी ने कहा—देश में हमने कितने ही वर्षों से मिल-जुल करके जो एक संस्कृति बनायी है, वह सब धर्मों की और सब जातियों की एक मिश्रित संस्कृति है। अतः उसे केवल हिन्दू संस्कृति कहना उचित न होगा, क्यों कि उससे अलगाव और विघटन उत्पन्न होगा और सबको साथ लेकर चलना मुश्किल हो जायेगा।

इस पर मैंने पंडित जी से कहा—जैसे गंगा में अन्य नदियाँ-नाले भी आकर मिलते हैं, परन्तु फिर भी मूल धारा का नाम नहीं बदलता, उसे गंगा ही कहते हैं। इसी प्रकार हिन्दू संस्कृति का प्रवाह विराट है। इसके अन्तर्गत अनेक मत-मतान्तर और सम्प्रदाय आदि आते हैं तो भी उन्हें हिन्दू संस्कृति से भिन्न नहीं माना जाता। आप उसे मिश्रित क्यों कहते हैं? क्या आपको यह लगता है कि उसमें इस्लाम या अन्य धर्म की कोई ऐसी विशिष्ट बात है, जो आपको अलग लगती है और वह हिन्दू नहीं है? आप जो बोल रहे हैं, मैं समझता हूं, उसका मूल भी हिन्दू संस्कृति ही है।

इस तर्क का कोई उत्तर तो वे न दे सके किन्तु इस तथ्य पर जोर देने से मैंने देखा कि पंडित जी कुछ नाराजगी व्यक्त कर रहे हैं, अतः मैंने कहा—अच्छा विदा की अनुमति लेता हूं, फिर भेंट होगी।

मैं यह कहकर इसीलिये चला आया कि जिससे भेंट-वार्ता करने गया, उसे नाराज करके आना भी तो ठीक नहीं। स्नेह बना रहे, अपने को यही अभीष्ट है।

हम लोगों ने देखा कि गुरुजी के शब्दों में नेहरू जी के प्रति कहीं कोई कटुता का आभास तक नहीं है। ऐसा था उनका स्वभाव!

(दस)

रू जी के बहिष्कार से बेचैनी

सन् १६५३ में मैं विजयवाड़ा के संघ शिक्षा शिविर का सर्वाधिकारी था। उस समय मुझे संघ का परिचय सामान्य ही था। श्री गुरुजी के व्यक्तित्व की महानता का तो मुझे थोड़ा भी परिचय नहीं था। संघ-शिक्षा-शिविर में जब श्री गुरुजी आये, उसी समय का एक प्रसंग है।

स्वतन्त्र नागालैण्ड की माँग करने वाले फिजो समर्थक नागाओं को एक सभा में पं० श्री नेहरू ने उनके रवैये के लिये फटकारा। इस फटकार का परिणाम यह निकला कि सारे नागा श्रोता सभा से उठकर चले गये। सभा में रह गये मात्र पं० नेहरू और उनके साथ में आये हुए कुछ लोग। इस घटना पर न तो समाचार-पत्रों ने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त की और न जन साधारण की विचार-धारा में कोई बेचैनी दिखलायी दी। परन्तु गुरुजी बरामदे में इस छोर से उस छोर तक चक्कर लगा रहे थे।

मैं उनके पास गया और कहा—गुरुजी ! आधी रात हो गयी और आप अभी तक सोये नहीं ? आप इस प्रकार से चक्कर लगा रहे हैं ?

गुरुजी ने कहा—आज नागालण्ड का जो समाचार आया है, उसने बड़ी बेचैनी उत्पन्न कर दी है। यह तो भारत के प्रधानमंत्री का ही नहीं, अपितु राष्ट्र का अपमान है। कितनी अभद्र बात है कि लोग उन्हें अकेले छोड़कर के उनका बहिष्कार कर के सभा से चले जायें ? कोई इसे कैसे सहन कर सकता है ?

उस समय मैं इसका महत्व नहीं समझ सका, किन्तु आज जब मैं पीछे मुड़ कर देखता हूं तो अनुभव करता हूं कि गुरुजी का व्यक्तितव राष्ट्र के साथ कितना एकाकार हो गया था ? गुरुजी क्षुद्र स्वार्थ-भाव से अथवा व्यक्तिगत रुचि-अरुचि से सर्वथा परे थे। इतना सभी जानते हैं कि कई राष्ट्रीय प्रश्नों पर पं० नेहरू के विचारों से गुरुजी अत्यधिक असहमत थे, परन्तु इस मतभेद के बावजूद भी नेहरू जी के बहिष्कार की घटना से गुरुजी बेहद बेचैन हो गये थे।

ऐसे ही बेचैन एक बार और श्री गुरुजी हो गये थे, जब लन्दन में भारत-वासियों ने पं० नेहरू के सामने काले झंडे दिखलाये तथा 'नेहरू मुर्दाबाद के नारे लगाये। गुरुजी ने कहा—'परस्पर मतभेद हो सकता है पर विदेशों में इस प्रकार का प्रदर्शन करना क्या उचित है ?'

विदेशों में इस प्रकार का व्यवहार भारत के साथ गद्दारी है पं० नेहरू का अपमान भारत के प्रधानमंत्री का अपमान है। भारत राष्ट्र का अपमान है पं० नेहरू कांग्रेस के प्रमुख के नाते नहीं, भारत के प्रधान मंत्री के नाते वहाँ गये थे। मैं तो कांग्रेस का या किसी राजनीति दल का सदस्य नहीं हूं और भविष्य में बनूगा भी नहीं, राजनीति मेरी प्रकृति नहीं है। फिर भी वह समाचार पढ़कर मुझेअत्यन्त क्षोभ हुआ क्योंकि वह राष्ट्र का अपमान है।

एक बार इंग्लैंड के भूतपूर्व प्रधानमंत्री चर्चिल अमरीका गये। वे अपनी सरकार की कड़ी आलोचना करेंगे, यह सोचकर वहाँ के पत्रकारों ने उनसे पूछा—आपकी सरकार का शासन कैसे चल रहा है?

चर्चिल ने उत्तर–दिया मैं तुम्हारे प्रश्न का हेतु अच्छी तरह समझता हूं, परन्तु यह भूलिये मत कि इग्लैंड में विरोधी दल का नेता हूं परन्तु विदेश में मैं अपनी सरकार का समर्थक हूं। (In England I am the Leader of the Opposition but abroad I am the supporter of His Majesty's Government.)

(ग्यारह)

उनके जैसा आदमी नहीं

आचार्य डा० रघुबीर के निवास-स्थान को एक अद्‌भुत वस्तु-संग्रहालय ही कहना चाहिये। उन्होंने एक बार समय निकालकर श्री गुरुजी को अपना सम्पूर्ण संग्रह दिखलाया। घण्टे-डेढ़-घण्टे तक वे एक-एक वस्तुदिखलाते रहे और श्री गुरुजी के मुख-मण्डल पर आश्चर्य के भाव बार-बार व्यक्त होते रहे। संग्रह देखने के बाद श्री गुरुजी ने कहा—यह कितने आश्चर्य की बात है कि आपने अपने अकेले के बलबूते इतना विशाल सांस्कृतिक कार्य किया है, किन्तु सरकार की दृष्टि में इसको जितना महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होना चाहिए था, उतना प्रतीत नहीं होता।

इसके उत्तर में आचार्य जी ने कहा—इसके लिये एक ही व्यक्ति उत्तरदायी है पं० जवाहरलाल नेहरू।

मैं यह नहीं कह सकता कि आचार्य रघुबीर जी ने पं० जवाहरलाल नेहरू का उल्लेख किस हेतु किया, किन्तु इसे सुनकर श्री गुरुजी ने तत्काल ही कहा

पंडित जी का एक दोष याने मुसलमानों के प्रति अतिरिक्त पक्षपात, इसे छोड़ दिया जाये तो उनके जैसा आदमी नहीं।

श्री गुरुजी की यह आदत थी कि बोलने के प्रवाह में वे एकाध वाक्य को दो-तीन बार दुहरा दिया करते थे। उसी के अनुसार उन्होंने दो-तीन बार दुहराया-उनके जैसा आदमी नहीं।

(बारह)

भारत और नेपाल

फिर वह दिन भी आया कि जब भारत और नेपाल के सम्बन्ध निम्नतम स्तर पर थे। ऐसा लगता था कि अब विस्फोट होगा और नेपाल चीन की गोद में चला जायेगा। उत्तरी बिहार का दौरा समाप्त करने के बाद एक दिन खाली था। हठात् श्री पशुपतिनाथ के दर्शन करने श्री गुरुजी काठमाण्डू चले गये।

जब नेपाल-नरेश को यह पता चला कि श्री गुरुजी की इच्छा उनसे मिलने की है तो तुरन्त आधे घण्टे के अन्दर ही भेंट का आयोजन हो गया। (यह वही भेंट थी, जिसके बारे में कहा जाता है कि उन दिनों नेपाल में भारत के राजदूत ने नेपाल-नरेश को कड़ा उलाहना दिया था कि एक व्यक्ति नेपाल आता है और आधे घण्टे के अन्दर आपसे भेंट हो जाती हैं, पर उस देश का राजदूत दो दिनों तक चक्कर काटता रहता है, तब कहीं आपसे भेंट हो पाती है। नेपाल-नरेश ने उत्तर दिया था—उनसे भेंट राजनयिक नहीं, वह तो हिन्दू धर्म एवं संस्कृति के श्रेष्ठतम नेता के नाते हैं।)

भेंट हो जाने के बाद श्री गुरुजी ने एक पत्र श्री नेहरूजी को लिखा। उत्तरी बिहार से नागपुर जाते समय प्रयाग स्टेशन पर ही मुझे उस पत्र के बारे में समाचार मिला। पत्र में श्री गुरुजी ने लिखा था कि भारत और नेपाल के सम्बन्ध कैसे सुधर सकते हैं और किस प्रकार से वार्ता का आरम्भ होना चाहिये। कहते हैं कि वह पत्र श्री नेहरुजी द्वारा श्री लालबहादुरजी शास्त्री को दिया गया, जो उस समय केन्द्रीय सरकार के वरिष्ठ मन्त्री थे।

श्री नेहरूजी के विशेष दूत होकर (जैसा कि पत्र में इंगित था) श्री लालबहादुरजी शास्त्री नेपाल गये और उस पत्र के आधार पर नेपाल से अच्छे सम्बन्ध पुनः बने।

श्री गुरुजी को जब भी ऐसा कोई समाचार प्राप्त होता था, वे उसे चुपचाप उससे सम्बन्धित अधिकारियों तक पहुंचा देते थे और उसका श्रेय भी उन अधिकारियों को लेने देते थे। किसी भी प्रकार की दलगत भावना की छाया तक भी श्री गुरुजी के व्यवहार में कभी नहीं आयी। इसी का परिणाम था कि वैचारिक दृष्टि से उनके घोर विरोधी भी उनकी बात मानते थे। ऐसा था उनका ज्वलन्त व्यक्तित्व।

(तेरह)

देशरक्षा सर्वोपरि है

भारत-विभाजन के दौरान श्री गुरुजी के तेजस्वी व कुशल नेतृत्व में संघ के स्वयंसेवकों ने पंजाब व दिल्ली में अपनी जान पर खेलकर भी लाखों निरीह नर-नारियों की आततायियों से जिस प्रकार से रक्षा की तथा दिल्ली व अन्य नगरों को अराष्ट्रीय तत्वों के षड्यन्त्र से ध्वस्त होने से बचाया, उससे संघ के राष्ट्रप्रेम व साहस का ज्वलन्त प्रमाण सामने आता है। दिल्ली को आग में स्वाहा होने से बचाने का श्रेय संघ-स्वयंसेवकों को है, यह बात सरदार पटेल तक ने स्वीकार किया था।

श्री गुरुजी से भेंट करने, उनके साथ भोजन करने तथा उनके हास्य—विनोद में शामिल होने का मुझे अनेक बार सौभाग्य प्राप्त हुआ है। उनकी विनम्रता निरहंकारिता स्नेह तथा तपस्वी जीवन बरबस ही दूसरे को अपना बना लेने की अपूर्व क्षमता रखता था। उनके ऋषियों-जैसे व्यक्तित्व में एक अजीब आकर्षण था तथा उनके दर्शन करते ही बरबस सिर श्रद्धा से उनके चरणों में झुक जाता था। बड़े-बड़े नेताओं से लेकर प्रधानमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री तक को मैंने उनके समक्ष नतमस्तक होते स्वयं अपनी आँखों से देखा था।

सन् १६६५ में पाकिस्तान के आक्रमण के समय प्रधानमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री ने पहली बार भेद-भाव को त्यागकर सभी राष्ट्रवादी दलों के नेताओं को राष्ट्र पर आये हुए संकट के मुकाबले में सहयोग और सुझाव देने के लिये आमन्त्रित करके एक स्वस्थ परम्परा का शुभारम्भ किया। उस बैठक में श्री गुरुजी को भी आमन्त्रित किया गया तो कम्युनिस्टों ने तथा अन्य तत्वों ने बावेला मचाने का भरसक प्रयास किया, किन्तु श्री शास्त्रीजी ने स्पष्ट रूप से यह कह कर कि संघ की राष्ट्रभक्ति असंदिग्ध है, विरोध करने वालों का मुंह बन्द कर दिया था।

यह मीटिंग संसद्भवन की दूसरी मंजिल पर एक विशाल हाल में हुई थी। उस मीटिंग में श्री गुरुजी पधारे थे। मैं भी उस मीटिंग में उपस्थित था। उस बैठक में मुझे श्री गुरुजी के तेजस्वी व राष्ट्रभक्ति से ओत-प्रोत व्यक्तित्व की झलक देखने को मिली थी। बारी-बारी से सभी नेताओं ने अपने विचार व्यक्त किये। श्री अन्नादुराई के भाषण के बाद जब श्री गुरुजी अपने आसन से उठे, सभी-के-सभी बड़ी उत्सुकता, जो अब तक उस मीटिंग में देखने में नहीं आयी, ऐसी उत्सुकता और एकाग्रता-भरी दृष्टि से उनकी ओर देखने लगे। श्री गुरुजी ने केवल चन्द शब्दों में उपस्थित सभी नेताओं को स्तब्ध कर दिया था। उस समय श्री गुरुजी ने प्रखर तेजस्वी शब्दों में आदरणीय श्री शास्त्रीजी को सम्बोधित करते हुए कहा…

'जब देश के विभाजन के समय अंधकार की घटाएँ छायी हुई थीं तो संघ ने राष्ट्र और समाज की रक्षा के लिये दीपक जलाकर उस घोर अंधकार में प्रकाश की किरणें फैलाने का प्रयास किया था। अनेक स्वयंसेवकों ने अपने प्राण देकर भी समाजबन्धुओं के प्राणों की रक्षा की थी। आज पुनः राष्ट्र पर आये हुए आक्रमण के प्रतिकार करने के लिये हम जी-जान से तत्पर हैं। जिस मोर्चे पर खड़ा होने को कोई उद्यत न हो, उस पर मैं और संघ के स्वयंसेवक आपको तैयार खड़े मिलेंगे। मैं और मेरी संस्था राष्ट्रीय-स्वयंसेवक-संघ की सारी सेवायें आपके प्रति समर्पित हैं। देश की प्रतिरक्षार्थ राष्ट्रीय-स्वयंसेवक-संघ को जो भी कार्य सौंपा जायेगा, उन सभी कार्यों में आप यही पायेंगे कि राष्ट्रीय-स्वयंसेवक-संघ कंधे से कंधा मिलाकर कार्य कर रहा है। देश की रक्षा सर्वोपरि है और देश की रक्षा के लिये अपनी विचारधारा को दबा करके भी काम करने की आवश्यकता यदि हमारे सामने है तो हम इसके लिये भी तैयार हैं।'

श्री गुरुजी के इस उद्घोष से सारा हाल तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज

उठा। उनके उपर्युक्त वाक्य सुनकर उपस्थित सभी नेताओं के हृदय आशा व प्रेरणा से फूल उठे थे। मैंने देखा कि श्री लालबहादुरजी स्वयं उस तपस्वी नेता के अन्तःकरण के इन उद्‌गारों को सुनकर फूले न समाये थे। इसके बाद संघ के स्वयंसेवकों ने जिस प्रकार से युद्ध में सहयोग दिया, ट्रैफिक-व्यवस्था से लेकर रक्तदान तक में बढ़चढ़कर भाग लिया, वह किसी से छिपा नहीं है।

(चौदह)

डा० श्री सम्पूर्णानन्दजी की धारणा

श्री गुरुजी के सम्बन्ध में जो भी आता, चाहे वह किसी भी दल का होता, श्री गुरुजी के व्यक्तित्व से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता था। बात शायद १९४६ या १९४७ की है। वाराणसी के डी० ए० वी० कालेज में संघ-शिक्षण-शिविर लगा हुआ था। स्व० डा० श्री सम्पूर्णानन्दजी से मेरे बहुत पहले से सम्बन्ध थे। वे इस शिविर के समापन समारोह में पधारे। श्री गुरुजी भी थे। उस समय तो उनसे (डा० श्री सम्पूर्णानन्दजी से) बातचीत नहीं हो सकी, पर बाद में उनसे मिलने का संयोग हुआ। तब वे बोले—हम तुम्हारे संघ को देख आये हैं।

मैं बोला—मैं भी वहाँ था।

उन्होंने कहा—हाँ, तुम तो उस दिन मिलिट्री कमाण्डर जैसे लग रहे थे।

मैंने पूछा—क्या आपको हमारे कमाण्डर बनने में कुछ एतराज है?

उन्होंने जबाब दिया—नहीं भाई, ऐसी कोई बात नहीं। मैं तो कह रहा था कि तुम्हारे यहाँ बड़ा गजब का अनुशासन है। इस संगठन के पीछे जो तुम्हारे श्री गुरुजी हैं, उनका बड़ा विशिष्ट व्यक्तित्व, बड़ी डायनेमिक और डोमेनेटिक पर्सनालटी है। मतभेद की बात दिखलायी देने के बाद भी उनसे विवाद करने की इच्छा नहीं होती। उनसे मिलकर एक आश्चर्य की बात अनुभव में आयी कि विवादास्पद विषय का अनुमान करके श्री गुरुजी ऐसा मत प्रकट करते थे कि सामने बैठे हुए व्यक्तियों को एक नये ढंग से सोचने के लिये प्रेरणा मिल जाती।

मैंने पूछा—बाबूजी, आपने यह सब कहा तो सही, पर बात क्या हुई ?

वे बोले—खैर छोड़ो इन सब बातों को, पर तुम्हारे गुरुजी के बारे में मेरा जो इम्प्रेशन हो गया है, वह सही है या गलत, मैं नहीं जानता। यह तुम जानो।

●

(पन्द्रह)

श्री श्रीप्रकाशजी की धारणा में परिवर्तन

श्री गुरुजी के सान्निध्य से ही नहीं, उनके विचारों और भाषणों से भी अनेक विद्वान् और नेता अभिभूत हुए हैं। महाराष्ट्र के राज्यपाल-पद से निवृत्त होकर श्री श्रीप्रकाशजी देहरादून में एक कुटिया बनाकर रह रहे थे। उन्होंने मुझे मिलने के लिये बुलाया। बाद में पता चला कि डा० श्री सम्पूर्णानन्दजी ने उन्हें लिखा था कि तुम नानाजी से मिलो। उनके दिल में भी वही आग मिलेगी, जो आजादी के समय हमारे दिलों में थी। श्री गुरुजी की 'Bunch of Thoughts' नामक पुस्तक अवश्य पढ़ो। डा० श्री सम्पूर्णानन्दजी ने ही मेरा परिचय श्री श्रीप्रकाशजी से करवाया था। उनकी इच्छा देखकर मैंने 'बंच आफ थाट्स' पुस्तक उन्हें भी भेज दी। (हिन्दी 'विचार नवनीत')

जब मेरा श्री श्रीप्रकाशजी से साक्षात्कार हुआ तो वे बोले—मैं श्री गुरुजी के व्यक्तित्व से प्रभावित अवश्य था, किन्तु उनका व्यक्तित्व इतना सर्वव्यापी है, इसकी मुझे कल्पना नहीं थी। हो सकता है, कुछ मामलों में मतभेद हो, पर उनका चिन्तन बड़ा मौलिक और जड़ को छुने वाला है। इसका आप लोग व्यापक प्रचार क्यों नहीं करते ? कुछ-कुछ चीजें तो ऐसी हैं कि जिनको व्यवहार में लाया गया तो हिन्दुस्तान की सब समस्याएँ ही हल हो जायेंगी। मैं नहीं समझता था कि तुम्हारे श्री गुरुजी धर्म-परिवर्तन किये बिना मुसलमान और ईसाइयों को राष्ट्रजीवन का अंग मानने के लिये तैयार हो सकते हैं। गुरुजी के सारे विचार देखकर ऐसा लगता है कि यदि मुसलमानों ने थोड़ा-सा भी दृष्टिकोण में परिवर्तन किया और हिन्दुस्थान के गौरवमय राष्ट्रीय परम्परा का अभिमान रखा तो तुम्हारे गुरुजी को

उन्हें राष्ट्रीय एकात्मता के अंग मानने में कोई एतराज नहीं होगा। गुरुजी की यह एक बहुत बड़ी बात मैं समझ पाया हूं और गुरुजी के उस विचार से मतभेद नहीं रखा जा सकता। मेरे मन में उनके प्रति आदर बढ़ गया है।

(सोलह)

सबसे भेंट-वार्ता का क्रम

श्री गुरुजी जब बम्बई आते थे तो समय निकालकर वीर सावरकरजी से भेंट करने जरूर जाते थे। सावरकरजी संघ की संगठना के विषय में बात-चीत करते थे।

श्री एस० के० पाटिल जिन दिनों केन्द्रीय मन्त्री थे, मुख्यमन्त्री भी रहे और कांग्रेस के अध्यक्ष भी, उन दिनों में भी वे श्री गुरुजी से मिलने के लिये आते थे। मतभेदों का छुआछूत वे बाधक नहीं मानते थे। उन दिनों सरदार पटेल से भी श्री गुरुजी की भेंट-वार्ता हुई थी।

जब गुरुजी बम्बई आते थे तो श्रीमती मणिबेन, व्ही० बी० कार्णिक आदि मजदूर–नेता प्रायः उनके साथ चाय पीने, भेंट-वार्ता करने आते थे। उस समय श्री गुरुजी बात-चीत में कहते थे श्रमनीति के विषय में भारतीय संस्कृति में बहुत गम्भीर विचार-मंथन हुआ है। रूस आदि में उस पर जो चिन्तन हुआ, वह ऊपर-ऊपर का है।

प्रमाण देकर श्री गुरुजी वह प्रसंग प्रस्तुत करते थे। यह सब सुनकर श्रीमती मणिबेन तथा श्री कार्णिक कहते थे––हम तो समझते थे कि श्रमिकों तथा साम्यवाद के बारे में हमने ही ज्यादा पढ़ा है, परन्तु गुरुजी के विचार सुनकर हमें लगा कि वे बातें तो हमें भी ज्ञात न थी और वे मूलभूत विचार हैं।

गुरुजी का अध्ययन इतना गहरा था उन विषयों पर भी!

(सत्रह)

'हिन्दू' शब्द में किसी का खण्डन कहाँ ?

बात तब की है, जब वायुयान सेवा चली ही थी। पालम का अस्तित्व कल्पना तक में नहीं था। विमान चला करते थे सफदरगंज से, जिसको विलिंग्डन एयरपोर्ट कहते थे। मैं हैदराबाद जा रहा था। श्री गुरुजी नागपुर जाने के लिये एयरपोर्ट पर आये थे। इनके सम्मान में काफी लोग एकत्रित थे। श्री हंसराज जी गुप्त ने वहाँ मेरा परिचय श्री गुरुजी से करवाया।

विमान में मुझे विस्मय हुआ कि श्री गुरुजी उठकर मेरे पास आकर बैठ गये और कहने लगे—जैनेन्द्र ! मैं तुम्हें जानता हूं।

मैंने कहा—अभी श्री हंसराज जी ने परिचय कराया था।

श्री गुरुजी बोले—नहीं, मैं पहले से जानता था।

मैंने कहा—साक्षात्कार पहले कभी हुआ हो, मुझे तो ऐसा जान नहीं पड़ता।

वे बोले–डा० हेडगेवार डायरी लिखा करते थे। वह मैंने पढ़ी थी। उसमें तुम्हारा जिक्र कई जगह आया है। इस तरह मैं तुम्हें जानता था।

डा० हेडगेवार का स्नेह मुझे अवश्य प्राप्त हुआ था। सन् १६२१ में और १६२३ में मैं नागपुर गया था और मुझे याद है कि डाक्टर साहब ने सहसा स्नेह से अपना लिया था। आयु में बहुत लम्बा अन्तर था। मैं १६ या १८ वर्ष का था, किन्तु वह अन्तर बाधा नहीं ला सका। और यदि मेरे नाम का उल्लेख उनकी दैनन्दिनी में भी आया हो तो यह डाक्टर साहब की कृपा ही माननी चाहिये। उसी को लेकर श्री गुरुजी इस सहज भाव से आ मिले, इससे मुझमें एक प्रकार की कृतकार्यता का अनुभव जगा।

फिर तो काफी बातचीत हुई। मैंने कहा—आपके सामने से इस्लाम और मुस्लिम हट जायेगा तो आपके आन्दोलन का आधार ही समाप्त हो जायेगा।

वे बोले–तुमने यह कैसे समझ लिया कि हमारा आन्दोलन घृणा पर आधारित है ? हिन्दू शब्द में किसी का खण्डन कहाँ है ? अगर हम उसके पक्ष की बात करते हैं तो उसमें इस्लाम या मुस्लिम का विरोध देखना ठीक नहीं है। किसी स्वार्थ के कारण वैसा लांछन हम पर लगाया जाता हो तो उसका निराकरण किया जाये। लेकिन मैं जोर से कहता हूं कि नकार पर हम नहीं

खड़े हैं और हिन्दू संस्कृति, जो मूल में सत्कारवादी है, उसे फिर से पुष्ट और जागृत किया जाये। इसलिये भारत की ही नहीं, प्रत्युत मानव-मात्र की रक्षा हम उसमें देखते हैं।

मैंने कहा—क्या आपके नाम पर मैं इस तरह का कोई वक्तव्य दे सकता हूं ?

वे बोले—जरूर दो, लेकिन मेरे नाम के सहारे की तुम्हें क्यों आवश्यकता है ?

उन्होंने फिर पूछा—क्या राह में उतर सकते हो ?

मैंने विवशता बतायी—मुझे हैदराबाद पहुंचना है।

तब वे कहने लगे—वापसी में सीधे मत निकल जाना। नागपुर एकाध दिन रुक कर जाना।

(अट्ठारह)

असहमत होते हुए भी स्नेही

प्रवास करते समय यदा-कदा श्री गुरुजी से मिलने का अवसर मिला है। दो बार तो रेल में ही साक्षात्कार हुआ। हम देर तक खुलकर बातें करते रहे। कई प्रश्नों के मूल में सहमति नहीं होती थी। लेकिन चर्चा में कहीं भी यह प्रश्न नहीं होता था कि सहमति वे जरूरी मानते हों। एक संगठन के अध्यक्ष और विचारधारा के प्रवर्तक होकर भी उनमें ऐसी उदारता रह सकती है, यह मेरे जैसे साहित्यिक के लिये बहुत प्रिय होती थी।

एक बार उन्हें मालूम हुआ कि मैं अहमदाबाद जाऊँगा। उन्होंने यात्रा की तारीखें पूछीं। मैंने बता दी। लगभग उन्हीं दिनों अहमदाबाद उन्हें भी पहुंचना निकल आया। उन्होंने पूछा--अहमदाबाद में कहाँ ठहरोगे ? फोन है वहाँ ? यदि फोन करूँ और आऊँ तो क्या मिलने के लिये समय और सुविधा होगी ?

यह अनुग्रह मेरे लिये भारी ही था, किन्तु उनके लिये सहज। मैंने कहा-आप स्थान बताइये। आपको अवकाश हुआ तो मैं स्वयं उपस्थित होऊँगा।

किन्तु अहमदाबाद में फोन उनका पहले आया, यद्यपि उनको रोककर गया मैं ही स्वयं उनके पास।

मुझे गांधी जी के विचार अपने अधिक—निकट प्रतीत होते थे और होते हैं। अहिंसा श्री गुरुजी के लिये व्रत नहीं हो सकता था, पर मेरी मान्यता की ऐसी स्थिति नहीं हो पाती थी। किन्तु इसके कारण मेरे देश-प्रेम के अधिकार को उन्होंने न्यून माना हो, ऐसा कभी नहीं प्रतीत हुआ।

एक बार अचानक दो स्वयंसेवक-बन्धु मेरे पास पधारे और कहने लगे—रामलीला मैदान में चलना है। श्री गुरुजी पधारे हैं और रैली की अध्यक्षता आपको करनी है।

मैंने पूछा—यह निर्णय कैसे हुआ?

उन्होंने बताया—तीन नामों का पैनल चुना गया था। वे नाम श्री गुरुजी के पास पहुंचे। निर्णय उनको करना था। शेष दो नाम सर्वथा उनके अनुकूल थे आपका ही नाम कुछ प्रतिकूल समझा जा सकता था। श्री गुरुजी ने तीनों नाम देखकर तत्काल आपके नाम के पक्ष में अपना निर्णय दे दिया।

यह याद नहीं, एक प्रमुख कांग्रेसी महोदय तभी वहाँ पास बैठे थे या तनिक बाद में आये थे। वे कांग्रेसी महोदय बोले—आप संघ की रैली में जायेंगे?

मैंने उनसे कहा—आप मुझे खद्दर में देखकर भी संशय करते हैं?

श्री गुरुजी को तो संशय नहीं हुआ, यद्यपि वे स्वयं खद्दरधारी नहीं हैं। बताइये, मैं किसे संकीर्ण कहूं और उदार किसको?

राजनीति बांट डालती है। राष्ट्र को मिलाने का काम उससे नहीं हो पायेगा। भारतीय-जनसंघ में श्री गुरुजी का राष्ट्रीय-स्वयंसेवक-संघ खो नहीं गया, इसको मैं श्री गोलवलकर जी की मौलिक विशेषता मानता हूं। द्वन्द में जो नीति रहे, वह राजनीति हो सकती है। स्वयंसेवकों का उनका संघ रचनात्मक होगा, राजनीतिक नहीं। इस आग्रह को मैं उनके व्यक्तित्व का सूचक मानता हूं। निःस्पृहता निरहंकारिता किन्तु उनकी दृढ़ता, संकल्पशीलता, अथक-कर्म-प्रवणता आदि के उदाहरण समाज में मुझे विशेष नहीं मिले हैं। गाँधीयुग के बाद तो स्वार्थहीनता और नित्य बलिदान की प्रेरणा देने वाले व्यक्तित्व तो और भी अपवाद रूप हो गये हैं। श्री गुरुजी के गतिशील और प्रणबद्ध व्यक्तित्व का परिचय मुझे मिला, इसको मैं अपना सद्भाग मानता हूं। उनमें मैंने कभी प्रमाद नहीं देखा और जिस क्षण भी मिलना हुआ, मैंने उन्हें तत्पर और उद्यत ही पाया।

(उन्नीस)

इतिहास कैसा हो

भूतपूर्व शिक्षा-मन्त्री श्री एम० सी० छागला से श्री गुरुजी की एक भेंट की बात ! उसके बाद ही मैं दिल्ली पहुंचा था और उस भेंट के विषय में हो रही चर्चा मैंने सुनी थी । अपने देश की शिक्षा-पद्धति के विषय में बात करते हुए श्री छागला ने छात्रों में बढ़ती हुई अनुशासनहीनता का उल्लेख किया था और श्री गुरुजी से पूछा था—ये ही विद्यार्थी आपकी शाखाओं में जाते हैं, किन्तु वहाँ तो उनका व्यवहार अत्यन्त अनुशासनपूर्ण, सौजन्यमय और संयमित रहता है । आप उन्हें कौन-सी शिक्षा देते हैं, जो वे वहाँ गाली-गलौज नारेबाजी तोड़-फोड़ सभी कुछ भूल जाते हैं ?

श्री छागला के प्रश्न का उत्तर न देकर श्री गुरुजी ने एक प्रश्न किया—आप रूस-यात्रा से लौटे हैं । वहाँ का विद्यार्थी आपको कैसा लगा ?

श्री छागला—वहाँ का छात्र-समुदाय तो बड़ा परिश्रमी, उत्साही और अनुशासित है ।

श्री गुरुजी—आपने तो वहाँ के नेताओं को भी देखा है । उनके शिक्षाविदों से भी आप मिले होंगे । वे छात्रों को क्या बताते हैं ?

श्री छागला—वे अपने छात्रों को सभी क्षेत्रों में अग्रणी होने का उपदेश देते हैं और कहते हैं कि इसी आधार पर रूस विश्व का मार्गदर्शक बन सकता है और समाजवाद का प्रसार हो सकता है । जब छात्र प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़ेंगे, तभी यह कहना सम्भव हो सकेगा कि यह समाजवाद के कारण हो रहा है ।

श्री गुरुजी—रूस के नेताओं ने अपने छात्रों के सम्मुख अपने देश एवं अपनी विचारधारा को महान् बनाने का लक्ष्य रख रखा है । क्या हमने भी अपने छात्रों के सम्मुख ऐसा कोई लक्ष्य रख रखा है ? जीवन का यदि कोई एक निर्धारित श्रेष्ठ लक्ष्य होता है तो उसकी प्राप्ति-हेतु मनुष्य अनुशासन स्वीकार करता है । संघ ने देश को महान् बनाने का एक ध्येय अपने स्वयंसेवकों के सामने रख रखा है, तभी वे अनुशासन में आस्था रखते हैं ।

श्री छागला ने पूछा—क्या हमारी सरकार ऐसा कोई लक्ष्य निर्धारित नहीं कर सकती ?

श्री गुरुजी—सरकार कर तो सकती है, किन्तु उसके प्रति आस्था सरकार नहीं जगा सकेगी । भारत ने ३० शतियों तक विश्व का मार्गदर्शन किया ।

प्रत्येक क्षेत्र में नेतृत्व किया। इस काल को हम हिन्दूकाल कहते हैं। यह इतिहास मात्र २५ पृष्ठों में पढ़ाया जायेगा और मुसलमानों और अँगरेजों की दासता का इतिहास ५०० पृष्ठों में, ऐसी शिक्षा क्या प्रेरणा देगी ? आस्था उत्पन्न करने के लिये इतिहास भिन्न प्रकार से लिखना होगा। क्लाइव के चाचा क्या करते थे, या कार्नवालिस किस कुल का था, कितने मुसलमान बादशाह और नवाब भारत में हुए, यह सब जानकर हमें क्या करना है ? इतिहास तो प्रेरणा का स्रोत और मार्गदर्शन का माध्यम होना चाहिये। क्या हमारे शासक ऐसा इतिहास लिखा सकेंगे ? उन्हें तो यही भय रहेगा कि कहीं वह हिन्दूदेश का इतिहास न बन जाये।

श्री छागला ने स्वीकार किया था कि श्री गुरुजी द्वारा प्रस्तावित इतिहास ही प्रेरणा का स्रोत बन सकता है।

(बीस)

उन्मुक्त भाव से मिलन

राजनैतिक पार्टियों के नेताओं से भी श्री गुरुजी की भेंट असीम आत्मीयता से भरी होती थी। उनके लिये राजनैतिक दलबन्दियाँ निरर्थक थीं। श्री गुरुजी कहा करते थे—हम कबड्डी खेलते हैं। खेलते समय दो पालियाँ बना लेते हैं, परन्तु क्या वे वैसे ही बनी रहती हैं ? नहीं। खेल में हार-जीत का आनन्द लिया और फिर सब एक हो गये।

एक बार दिल्ली के लाल किले में सरदार वल्लभ भाई पटेल जयन्ती समारोह में उन्हें आमन्त्रित किया गया। राष्ट्रपति श्री राधाकृष्णन् की अध्यक्षता में उन्होंने भी सरदार श्री वल्लभ भाई पटेल को अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। उस प्रसंग पर अन्य वक्ताओं में डाक्टर श्री राममनोहरजी लोहिया का भी भाषण हुआ था।

कार्यक्रम समाप्त हुआ। बाहर निकलने लगे तो श्री गुरुजी ने श्री लोहियाजी का हाथ पकड़ा, मानो किसी पुराने मित्र से मिल रहे हों। श्री लोहियाजी को गले से लगा लिया और बोले—मैं तो कब से आपसे मिलना

चाह रहा था। फिर दोनों एक दूसरे के बगल में हाथ डाले चलते रहे। सभी चकित थे कि यह कैसी प्रगाढ़ मित्रता है।

डाक्टर लोहिया बोले—मैंने तो आपके बारे में कुछ और ही सुन रखा था। अच्छा हुआ जो आपसे मिला।

ऐसे सम्पर्क और ऐसी भेंट वार्ता में सहज आन्तरिकता और सच्चा स्नेह ही श्री गुरुजी के पास था, कृत्रिमता का लवलेश भी नहीं था। सभी वर्गों और पंथों के लोगों से श्री गुरुजी उन्मुक्त रूप से मिला करते थे।

(इक्कीस)

क्या घुट्टी पिलाते हैं ?

सन् १९६५ में दिल्ली का संघ-शिक्षा-शिविर सालवान स्कूल राजेन्द्रनगर में लगा था। शिविर में जिस दिन श्री गुरुजी पधारे, उसी दिन डा० श्री राममनोहरजी लोहिया भी शिविर देखने के लिये आने वाले थे। सायंकाल छः बजे श्री लोहियाजी आये। उनको सारा शिविर दिखलाने के लिये कार्यकर्ता निश्चित थे। श्री लोहियाजी कार्यालय, औषधालय, रुग्णालय, भोजनालय, जलपानगृह, वस्तुभंडार आदि सब देखकर संघ-स्थान पर आये।

वे संघस्थान-पर लगभग आधा घंटा तक शारीरिक कार्यक्रम देखते रहे। तभी श्री गुरुजी संघ-स्थान पर आये। श्री गुरुजी के आते ही एक सीटी बजी और भिन्न-भिन्न शारीरिक कार्यक्रम करते हुए ७५० के लगभग स्वयंसेवक एक क्षण में 'दक्ष' की स्थिति में ध्वजाभिमुख होकर खड़े हो गये। वातावरण एकदम शान्त और गम्भीर हो गया। 'प्रणाम' होते ही पुनः सब पूर्ववत् कार्यक्रमों में लग गये। 'दक्ष' का संकेत होते ही श्री गुरुजी का ध्वज की ओर सीधे तेज चाल से बढ़ना बहुत ही भव्य, मनमोहक और प्रभावोत्पादक था। श्री लोहियाजी सचेत दृष्टि से सब कुछ देखते रहे।

संघ-स्थान के अन्तिम कार्यक्रम प्रार्थना के लिये जब 'सम्पत्' का आदेश दिया गया तो सभी स्वयंसेवक पंक्तिबद्ध खड़े हो गये, किंतु श्री लोहियाजी एक किनारे खड़े रहे। श्री गुरुजी ने एक कार्यकर्ता को संकेत से कहा कि श्री लोहियाजी को पंक्ति में ले लो। श्री लोहियाजी समझ गये कि अलग खड़ा

रहने से व्यवस्था में गड़बड़ी उत्पन्न होती है, अतः वे पंक्ति में आकर खड़े हो गये। प्रार्थना के समय वे शान्तिपूर्वक प्रार्थना सुनते रहे। प्रार्थना के बाद 'विकिर' का आदेश हुआ और सभी स्वयंसेवक संघ-स्थान से जाने लगे।

स्वयंसेवक तो सहज भाव से जा रहे थे संघ-स्थान से अपने-अपने कमरे में पर हमारे आश्चर्य का तब ठिकाना नहीं रहा, जब यह देखा कि श्री लोहियाजी दौड़कर श्री गुरुजी की ओर गये और उनके हाथ में हाथ डालकर बड़े अभिभूत-से होकर उन्होंने कहा—गुरुजी ! क्या ही कमाल है ? आप इन लोगों को क्या घुट्टा पिलाते हैं ?

बातें करते-करते दोनों कमरे में आकर चाय पर बैठे तो श्री गुरुजी ने कहा—घुट्टी कोई नहीं है। आपको भी यह कमाल सीखना है तो निकर बनवा लो, निकर पहनकर शाखा में जाया करो और सब सीख जाओगे।

सभी बहुत जोर से खिलखिलाकर हँस पड़े।

●

(बाइस)

आप अपराधी माने जायेंगे

सन् १९४६ में श्री रज्जू भैया इलाहाबाद में २५, पन्नालाल मार्ग पर रहा करते थे। श्री गुरुजी वहीं ठहरे थे। प्रातः जलपान पर श्री गुरुजी ने पूछा—रज्जू भैया, आज श्री टण्डन जी तो यहाँ हैं। उन्हें कार्यक्रमों में आने के लिये निमन्त्रण दिया है क्या ? पता करो, आयेंगे क्या ?

श्री रज्जू भैया ने कहा—निमन्त्रण तो नहीं दिया है, परन्तु मैं जाता हूं। होंगे तो वे अवश्य आवेंगे। वे तो आपसे बहुत प्रसन्न रहते हैं।

इतना कहकर श्री रज्जू भैया राजर्षि श्री पुरुषोत्तम दास जी टण्डन के घर चले गये। हम लोग भोजन कर चुके, तब वे लौटे और बताया कि आज मंगलवार है सो टण्डन जी का मौन व्रत है। वे बोल नहीं सकेंगे, अतः नहीं आयेंगे।

श्री गुरुजी ने कहा—अरे, बोलना तो मुझे ही है न ! वे तो आ करके सिर्फ बैठे रहते। यदि सभी बड़े लोग मौन रहते हैं तो चलो, मैं भी शुरू करता हूं।

श्री रज्जू भैया से इतना कहकर फिर मेरी ओर देखते हुए श्री गुरुजी बोले--जाओ, कह दो स्वयंसेवकों से कि आज मैं मौन हूं। कार्यक्रम कैन्सल।

सभी लोग हँस पड़े, पर श्री गुरुजी बोले--रज्जू भैया, जाकर उनसे कह देना कि बाबूजी, भगवान ने आपको सुन्दर शरीर, विद्वत्ता, प्रतिष्ठा एवं सम्मान प्रदान किया है, वह प्रदान किया है उपयोग करने के लिये। आप कौन होते हैं उस पर रोक लगाने वाले ? भगवान् के दरबार में आप अपराधी माने जायेंगे।

बिल्कुल यही श्री गुरुजी ने अपने जीवन में भी किया था।

●

(तेइस)

रार्जाष टण्डन को समाधान मिल गया

रार्जाष श्री पुरुषोत्तमदास जी टण्डन, जिन्हें आदर से सभी लोग बाबूजी कहा करते थे, रोग-शय्या पर पड़े हुए थे। श्री गुरुजी उत्तर प्रदेश के दौरे में संघ-शिक्षा-शिविर से थोड़ा समय निकाल कर बाबूजी से भेंट करने के लिये गये। मैं उनकी ड्राइवरी में था। उस दिन बाबूजी की दशा गम्भीर बतायी गयी थी कि अचेत अवस्था में पड़े हैं अथवा निद्रा में। पहुंचने के बाद श्री गुरुजी को अन्दर ले जाया गया। शय्या की बगल में श्री गुरुजी एक कुर्सी पर बैठ गये। सम्भवत: बाबूजी के पुत्र ने उनके कान के पास जाकर कहा कि श्री गुरुजी आये हैं। परन्तु उनकी आँखें वैसें बन्द रहीं और वैसे ही बिस्तरे पर निश्चल पड़े रहे।

श्री गुरुजी ने हाथ के इशारे से उन्हें मना कर दिया और मौन, ध्यान मग्न हो गये। घड़ी की टिक-टिक के अलावा और कोई आवाज कमरे में सुनायी नहीं पड़ रही थी। पाँच मिनट के बाद एकाएक बाबूजी की आँखें खुलीं। उनको ऐसा लगा कि उनके बगल में कोई बैठा है। तब किसी के मुख से निकला कि श्री गुरुजी आये हैं। श्री गुरुजी को देखते ही उनके सारे शरीर में न जाने कहाँ से बल आ गया। सब लोग आश्चर्यचकित हो गये। वे थोड़ा उठ गये और दोनों हाथों को फैलाकर श्री गुरुजी को, जो

उनके पास आकर झुक गये थे, आबद्ध कर लिया। बाबूजी ने कहा—अब आप आ गये, सब ठीक हो जायेगा। बस, अब कोई चिन्ता नहीं।

ऐसा लगता था कि मानो उनका मन अपनी विषम अवस्था में भी देश की विकट परिस्थितियों का कोई हल ढूंढ रहा था, जो उन्हें मिल गया। हम सब लोगों के लिये यह एक विस्मय का विषय था कि उनको ऐसी विषम अवस्था में वह शक्ति कैसे मिल गयी कि वे स्पष्ट रूप से श्री गुरुजी से कुछ कह सके। मुझे ऐसा लगा कि आज एक महान आत्मा ने दूसरी महान आत्मा को पाकर अपने अन्तिम दिनों में यह समाधान पाया कि यह देश और उसकी संस्कृति अक्षुण्ण रहेगी और बाबूजी ने सन्तोष की साँस ली।

(चौबिस)

महाशक्ति के दर्शन

मैं किसी काम से नागपुर गया था, कई वर्ष हो गये। श्री वैद्यनाथ-आयुर्वेद-भवन लि० की प्रयोगशाला में ठहरा था। मैंने 'भवन' के मैनेजर से कहा—सरसंघचालक जी के दर्शन करने हैं।

वे बोले—गुरुजी के ?

मैंने कहा—हाँ।

उन्होंने अपना एक कर्मचारी मेरे साथ कर दिया, जो मुझे संघ कार्यालय ले गया। वहाँ एक सज्जन ने मेरे आने का कारण पूछा और फिर एक कमरे में ले गये। सादगी की हद, एक दरी बिछी थी। कमरे में सामने ही संघ के जन्मदाता महोदय का भव्य चित्र विराजमान था और सामने एक मृगछाला बिछी थी। मेरे साथ जो सज्जन गये थे और संघ-कार्यालय में जो मुझे इस कमरे तक ले गये थे, तीनो बैठ गये। मुझे बताया गया कि श्री गुरुजी अभी यहीं आने वाले हैं। हम लोग चुपचाप बैठे थे कि धीरे-धीरे श्री गुरुजी आते दिखायी दिये। हम लोगों ने उठकर अभिवादन किया। मैं समझता था कि दरी के ऊपर बिछी मृगछाला पर वे बैठेंगे, परन्तु ऐसा न हुआ। वे उसी दरी पर सामने बैठ गये। मेरे साथ जो सज्जन गये थे उन्होंने कहा—आप पं० श्री किशोरी दासजी बाजपेयी हैं। कनखल हरिद्वार से आये हैं।

नाम सुनकर श्री गुरुजी ने नेत्र कुछ मुकुलित किये और तुरन्त प्रसन्न मुद्रा में बोले-आपने तो अपनी कुछ पुस्तकें भी भेजी थी न ?

मैंने कहा—जी भेजी तो थी । आपने क्या देखी थीं ?

मुसकान के साथ वे बोले—अच्छी चीज अपने आप आये और उसे फिर देखा न जाये ?

मैंने सोचा कि देखूं, सचमुच मेरी पुस्तकें गुरुजी ने पढ़ी हैं या कि मुझे खुश करने के लिये ही ऐसा कह रहे हैं । मैंने कहा—मेरी किसी पुस्तक के किसी अंश पर आपका कोई मतभेद है क्या ?

श्री गुरुजी—नहीं, मतभेद कहीं भी नहीं है ।

मैं—मेरी कौन-कौन पुस्तक आपने देखी ?

श्री गुरुजी—जो-जो आपने भेजी ।

मैं चाहता था, सो न हुआ । बात खुल न पायी । तब मैंने कहा—मि० ह्यूम के बारे में आपका क्या मत है ?

श्री गुरुजी--वही, जो आपका ।

मैं—मेरा क्या मत आपने समझा ?

श्री गुरुजी—मेरी स्मृति कमजोर थोड़े ही है । आपकी प्रत्येक पुस्तक का प्रत्येक विषय मेरे मस्तिष्क में है, आपने यही तो लिखा है न कि मि०ए० ओ० ह्यूम ने अँग्रेजी राज की रक्षा के लिए कांग्रेस की स्थापना की थी ?

मैं—जी हाँ, यही लिखा है ।

फिर आगे दूसरी चर्चा मैंने छेड़ी--'संघ' और 'महासभा' को एक होकर काम करना चाहिये । यह आप मानते हैं न ?

श्री गुरुजी--हाँ, यह तो होना ही चाहिये । 'संघ' का मतलब जन-संघ से है न ?

मैं--जी हाँ, जनसंघ से ही है । आप प्रेरणा दें ।

श्री गुरुजी--तो उससे तो मेरा कोई सम्बन्ध है नहीं । चाहता मैं वही हूं, जो आप चाहते हैं ।

मैं—आपका सम्बन्ध जनसंघ से नहीं, सम्पूर्ण राष्ट्र से है । आपको प्रेरणा देनी चाहिये ।

श्री गुरुजी—ठीक है । परन्तु अपना-अपना अहंभाव आगे नहीं बढ़ने देता, नाम तक में झगड़ा ।

मैं—नाम 'राष्ट्रीय महासभा' कर दें तो कैसा रहे ? दोनों के नाम आ गये ।

श्री गुरुजी—दोनों के कहाँ आये ? जनसंघ के नाम में राष्ट्रीय शब्द नहीं है।

मैं—नाम में न सही, काम में ही सही।

श्री गुरुजी—पर कांग्रेस को भी तो राष्ट्रीय महासभा कहते हैं न ?

मैं—नहीं उसका नाम तो अंग्रेजी में है नेशनल कांग्रेस। राष्ट्रीय महासभा उसका नाम नहीं है। हिन्दी वाले उसे राष्ट्रीय महासभा लिख देते हैं। जैसा काम वैसा नाम।

श्री गुरुजी कुछ मधुर हँसी हँसने लगे। फिर बोले—कुछ-न-कुछ तो करना ही पड़ेगा।

इतना बहुत था। मेरी गाड़ी का समय भी हो रहा था। प्रणाम किया और विदा हुआ। बड़े ही स्नेह का बर्ताव किया। इतनी ही देर में मैंने समझ लिया कि इतने बड़े संगठन का संचालन करने में कौन–सी शक्ति काम कर रही है। वस्तुतः उनकी शक्ति राष्ट्र की शक्ति है।

(पच्चीस)

जब श्री नागरजी मिलने आये

श्री गुरुजी एक अखण्ड प्रवासी व्यक्ति थे। उनके साधनामय जीवन में विश्राम नाम की कोई चीज ही नहीं थी। जब भी जहाँ जाते, वहाँ समाज के प्रमुख एवं प्रतिष्ठित नागरिक उनके दर्शनार्थ तथा मार्गदर्शन प्राप्त करने के लिये आया करते थे। सन् १९६७ में लखनऊ संघ-शिक्षा-शिविर के निमित्त वे वहाँ आये हुए थे। तीन दिन के लखनऊ-निवास के समय उनसे सैकड़ों व्यक्तियों ने भेंट की किसी ने भोजन पर तो किसी ने चाय पर।

आनन्द-उल्लासमय वातावरण में वे सबका स्वागत करते एवं यथायोग्य अभिवादन स्वीकार करके सभी को चमत्कृत कर देते। उसी समय लखनऊ में रहने वाले दो प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय साहित्यकार सर्वश्री अमृतलाल जी नागर एवं भगवतीचरण जी वर्मा भी श्री गुरुजी से मुलाकात करने आये। चाय का समय था, यही कोई पाँच बजे सायंकाल। श्री गुरुजी के कक्ष में घुसते ही श्री नागर जी ने भूमि तक झुककर सादर अभिवादन

किया तो उनके कुर्ते की ऊपरी जेब में रखे हुए पैसे श्री गुरुजी के चरणों के पास गिर पड़े। वे सहसा पीछे हटे और अट्टाहस करते हुए बोले—देखा नागर जी! यदि आप मेरे पास आयेंगे तो लक्ष्मी आपका साथ छोड़ देगी, वह निकल कर भाग जायेगी।

श्री नागर जी की प्रत्युत्पन्नमति ने कमाल दिखाया। श्री नागर जी बोले—गुरुजी! हम लक्ष्मी के उपासक नहीं, सरस्वती के उपासक हैं। इन दोनों का वैर पुराना है। आप ठहरे संन्यस्त साधक। लक्ष्मी और सरस्वती के बीच जो कुछ सुलह होती हुई प्रतीत हो रही थी, आपके सामने आते ही भ्रम का वह पर्दा हट गया। साधना और सम्पदा साथ-साथ नहीं चल सकती यह सिद्ध हो गया। आपके पास आकर एक ऐसा दृश्य दिखा, जो पहले कल्पना में था, किन्तु अब वह साकार हो उठा। शायद अब मैं माँ सरस्वती की आराधना और अधिक शक्ति एवं श्रद्धा के साथ कर सकूँगा, मुझे आज माया भागती-सी दिखायी दे रही है।

वार्ता का यह क्रम केवल दो-तीन मिनट ही चला, फिर वही चाय का दौर अट्टहास और उल्लास का वातावरण।

●

(छब्बीस)

एक वक्ता का कोतूहल

श्री शिवाजीराव भोंसले महाराष्ट्र के प्रख्यात वक्ता हैं। नागपुर में स्वामी विवेकानन्द पर चार दिनों तक उनकी व्याख्यान-माला चली। बहुत भीड़ होती थी। श्री शिवाजीराव ने देखा कि बैरागी के समान दाढ़ी वाला एक व्यक्ति प्रतिदिन आ करके दूर बैठ जाता है। उस व्यक्ति के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने का कोतूहल उनके मन में हुआ।

अन्तिम दिन किसी ने उनको बताया कि वे तो सर-संघचालक श्रीगुरुजी हैं। यह सुनते ही श्री शिवाजीराव उनकी ओर दौड़े और विनोद के स्वर में बोले—यदि मैं यह जानता कि आप यहाँ आये हैं तो मैं भाग निकलता।

'आपका घेराव करके आपको वापस ले आते'—यह कहते हुए श्रीगुरुजी ने उन्हें अपने हृदय से लगा लिया।

सदस्य बन चुका हूं

(सत्ताईस)

श्री जी० डी० नायडू एक महान् वैज्ञानिक और उद्योगपति हैं तथा तामिलनाडू के एक अग्रणी बुद्धिजीवी हैं। इसके साथ ही श्री नायडूजी नास्तिकों के नेता श्री ई० वी० रामस्वामी नायकर के अभिन्न मित्र भी हैं। इतना होकर भी श्री नायडूजी के मन में श्री गुरुजी के प्रति अपार श्रद्धा है। श्री नायडूजी हिन्दी के समर्थक नहीं हैं, फिर भी उन्होंने अपना भवन संघ के प्रशिक्षण शिविर के लिये दिया, जिसमें हिन्दी-गीत होते और हिन्दी में भाषण सुने जाते। उन्होंने इस बात की चिन्ता ही नहीं की कि मेरे भवन में हिन्दी भाषा में कार्यक्रम होते हैं।

एक बार श्री गुरुजी उनके निवास-स्थान पर उनसे मिलने के लिये गये। वहाँ पर श्री के० ए० पी० विश्वनाथन् भी उनके साथ थे। श्री विश्वनाथन् हिन्दी-विरोधी-आन्दोलन के एक प्रमुख नेता हैं। औपचारिक बातचीत के बाद जब श्रीगुरुजी चले तो हम लोग पीछे-पीछे आ रहे थे। श्री विश्वनाथनजी कहने लगे—यदि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ हिन्दी को छोड़ दे तो श्री नायडू भी संघ के सदस्य बन सकते हैं।

उनका वाक्य पूरा होते-न-होते श्री नायडूजी तुरन्त बोल पड़े—नहीं, नहीं, मैं तो पहले ही संघ का सदस्य बन चुका हूं।

श्री गुरुजी के व्यक्तित्व ने ही श्री नायडूजी के जीवन से यह परिवर्तन उपस्थित किया था। जब-जब भी मैं श्री गुरुजी के प्रभावशाली व्यक्तित्व के बारे में सोचता हूं, तब-तब मेरी मति कुण्ठित और वाणी मूक हो जाती है।

●

(अट्ठाईस)

श्री शास्त्रीजी में आमूल परिवर्तन

'कहिये, आज इधर कैसे आना हुआ'—यह प्रश्न पूछा उदार दल के नेता आदरणीय श्री टी० आर० वेंकटराम शास्त्री ने श्री वी० राजगोपालाचारी

से। श्री राजगोपालाचारीजी मद्रास प्रान्त के संघचालक के नाते श्री वेंकटरामजी शास्त्री से मिलने गये थे।

श्री राजगोपालाचारीजी ने कहा—अपने राष्ट्रीय-स्वयंसेवक-संघ की मद्रास शाखा का उत्सव हो रहा है। उसकी अध्यक्षता के लिये आपसे निवेदन करने आया हूं।

श्री शास्त्रीजी—लेकिन मैं तो संघ के सिद्धान्तों से सहमत नहीं। मेरी दृष्टि में संघ साम्प्रदायिक है।

श्री राजगोपालाचारीजी—फिर भी हम चाहते हैं कि आप आयें और संघ के कार्य को अपनी आँखों से देखें।

श्री शास्त्रीजी—आपका आग्रह है तो मैं आऊँगा अवश्य, परन्तु मुझे जो कहना उचित लगेगा, वही कहूंगा।

श्री राजगोपालाचारीजी—आप अवश्य अपनी बात कहें। आपके विचार सुनने को मिलें, यही हमारी इच्छा है।

श्री वेंकटरामजी शास्त्री ने अध्यक्ष बनना स्वीकार कर लिया और प्रान्त-संघचालक श्री राजगोपालचारीजी ने उनसे विदाई ली।

त्यागराजनगर मुहल्ले में स्थित श्री रामकृष्ण विद्यालय के प्रांगण में निर्धारित समय पर उत्सव प्रारम्भ हुआ, जिसमें ५०० गणवेशधारी स्वयंसेवक तथा सैकड़ों नागरिक उपस्थित थे। उत्सव के आरम्भ में ध्वजोत्तोलन हुआ, पवित्र भगवाध्वज को प्रणाम किया गया तथा गणवेशधारी स्वयंसेवकों ने विविध शारीरिक कार्यक्रम प्रस्तुत किये। तत्पश्चात राष्ट्रीय-स्वयंसेवक-संघ की विचारधारा को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करने वाला ओजपूर्ण भाषण हुआ, जिसमें वक्ता की सहज विनयशीलता ने सबका ध्यान सहज ही आकृष्ट कर लिया। उनके भाषण का प्रारम्भिक वाक्य था—मेरे प्रपितातुल्य एक वयोवृद्ध ज्ञानवृद्ध और तपोवृद्ध महानुभाव की अध्यक्षता में आज का यह उत्सव सम्पन्न हो रहा है।

लगभग ४५ मिनट का यह भाषण जब समाप्त हुआ, तब सभी श्रोता भाषण के तर्क-सम्मत और ओजस्वी विचारों से तथा वक्ता के आत्म-विश्वास से मन्त्र-मुग्ध दिखलायी पड़ रहे थे। अन्त में अध्यक्ष श्री वेंकटरामजी शास्त्री भाषण देने के लिये खड़े हुए और उन्होंने कहा—बहुत कुछ कहने का निश्चय करके मैं यहाँ आया था। किन्तु जिन धारणाओं को स्वीकार करके मैं जीवन भर चलता आया हूं, उन सभी को जड़-मूल से हिला देने वाला तथा पुनर्विचार करने के लिये बाध्य कर देने वाला भाषण आज मैंने सुना है।

अब मेरे पास कहने के लिये कुछ भी शेष नहीं रहा है। मैं आप से यही कहता हूं कि इस भाषण पर गम्भीरता से विचार करें। श्री स्वामीजी का यह भाषण ऐसा ही था, जिस पर विचार अवश्य करना चाहिये।

कहना न होगा, 'स्वामीजी' नाम से अभिहित ये वक्ता श्री गुरुजी ही थे। श्री टी० आर० वेंकटरामजी शास्त्री ने श्री गुरुजी को आज पहली बार ही देखा था। श्री गुरुजी से उनकी प्रथम भेंट की यह कहानी सन् १९४६ की है। श्री वेंकटरामजी शास्त्री ने श्री गुरुजी की आकृति-प्रकृति के कारण ही उन्हें 'स्वामीजी' कहकर सम्बोधित किया था।

श्री शास्त्रीजी पर जो प्रभाव पड़ा, उसके कारण वे संघ के संकटकाल में विरोधियों तथा सत्ताधारी दल के संघ-विरोधी घृणित अपप्रचार के बावजूद संघ के पक्ष में चट्टान के समान अडिग खड़े रहे। इतना ही नहीं, संघ पर लगे हुए प्रतिबन्ध को हटवाने के लिये उन्होंने अथक परिश्रम किया।

●

(उनतीस)

राजमहल के अतिथि

एक बार श्री गुरुजी उड़ीसा प्रदेश में दौरे पर आये थे। एक स्थान पर नयी-नयी संघ-शाखा आरम्भ हुई थी। वहाँ के कार्यकर्ताओं ने श्री गुरुजी के रहने की व्यवस्था वहाँ के महाराजा के महल में की थी। श्री महाराजाजी कुछ कार्यवशात् बाहर जाने वाले थे, अतः उन्होंने अपने छोटे भाई को श्री गुरुजी के निवास तथा भोजनादि की व्यवस्था का भार सौंप दिया था। राजमहल के अतिथि-भवन में ठहरने की व्यवस्था हुई। रात के दस बजे कार से श्री गुरुजी वहाँ पहुंच गये। श्री गुरुजी रात को भोजन करते नहीं थे और उनके साथ आने वाले लोग पूर्व-स्थान से ही भोजन करके आये थे, अतः आते ही सब सो गये।

नित्य अभ्यास के अनुसार श्री गुरुजी प्रातः ही उठे। उनके नित्य का

क्रम इस प्रकार का था कि उठने के बाद मुँह धोकर वे चाय पीते थे और तत्पश्चात् वे शौचादि से निवृत्त होते थे। बिस्तर से उठने के बाद श्री गुरुजी ने मुँह तो धो लिया, परन्तु चाय नहीं आयी। हम लोग अब कहें तो किससे कहें? कोई नौकर आदि भी तो दिखलायी नहीं दे रहा था। पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि सारे नौकर सोये हुए हैं। महाराजाजी के नौकर जो ठहरे! महाराजाजी ही जब नौ बजे उठते हैं, तब भला नौकर पाँच-छः बजे क्यों कर उठे? बड़े प्रयत्न से एक नौकर को जगाकर दूध लाने के लिये भेजा। बहुत देर होने को आयी, पर वह लौटकर आया ही नहीं। देर-पर-देर हो रही थी। पता चला कि गाय दुहने वाला अभी तक आया ही नहीं है। आखिर, यह बात श्री राजमाताजी के कान में पड़ी। उन्होंने कण्डैंस्ड-मिल्क का एक डब्बा भेज दिया, तब जाकर कहीं चाय बन पायी।

दोपहर के भोजन के समय श्री महाराजाजी के भाई साहब स्वयं उपस्थित थे। टेबुल के चारों ओर कुर्सियां लगाकर हम सब लोग बैठ गये। श्री महाराजाजी के भाई को शायद श्री टीका साहब कहते हैं, वे भी हम लोगों के साथ टेबुल पर बैठे गये। थालियां आयीं। थाली में परोसे गये भात से बड़ी अच्छी सुगन्ध निकल रही थी। शाक-सब्जियाँ तथा व्यंजन भी अनेक प्रकार के थे। सबने मन्त्र कहा—'ॐ सहनाववतु ..... शान्तिः शान्तिः।' इसके बाद सबने भात का ग्रास मुँह में डाला और सबके मुँह से 'कड़म्-कड़म्' की आवाजें आने लगीं। भात में बहुत अधिक कंकड़ थे। नौकरों की बेपरवाही से भात का सारा मजा किरकिरा हो गया। श्री गुरुजी तथा उनके साथी चुपचाप भात खाते रहे। न किसी ने कुछ कहा और न किसी ने भात खाना ही बन्द किया। जब श्री टीका साहब के भी दाँतों से वे कंकड़ झगड़ने लगे, तब वे नौकारों की ओर लाल-लाल आँखें करके देखने लगे। बेचारे नौकर घबराहट से काँपने लगे। सबने अपनी थाली का भात समाप्त किया, केवल श्री टीका साहब की थाली में भात वैसा-का-वैसा पड़ा रहा।

शाम को विदाई का समय आया। अपनी दिलगीरी प्रदर्शित करने के लिये श्री टीका साहब ने श्री गुरुजी से कहा—किसी प्रकार का कोई कष्ट हुआ तो क्षमा कीजियेगा।

श्री गुरुजी ने उनकी सराहना ही की। अपने एक शब्द से भी श्री टीका साहब को यह अनुभव होने नहीं दिया कि भोजन में कोई त्रुटि थी। उल्टे, अपनी प्रसन्नता व्यक्त कर रहे थे, उनके साथ जो परिचय हुआ और उनके सान्निध्य का जो अवसर मिला, इसी की चर्चा प्रसन्न शब्दों में श्री गुरुजी कर रहे

थे। इसका प्रभाव उन पर ऐसा पड़ा कि जब-जब श्री टीका साहब मिलते थे, तब-तब वे श्री गुरुजी के बारे में आदरपूर्वक पूछताछ किया करते थे।

(तीस)

सिवनी जेल में मेरी भेंट

प्रथम प्रतिबंध काल सन् ४८ में श्री गुरुजी के आह्वान पर स्वयंसेवकों ने देश भर में संघ-शाखाओं को प्रारम्भ करने का आन्दोलन छेड़ दिया। हजारों-हजारों स्वयंसेवकों को सरकार गिरफ्तार करके जेल में बन्द कर चुकी थी। गाँधीजी द्वारा प्रवर्तित सत्याग्रह पद्धति को अपना करके संघ ने नैतिक विजय प्राप्त कर ली थी। अब ऐसे वातावरण की आवश्यकता थी, जिससे सरकार से वार्ता हो सके। अतः मैंने भारत सरकार के गृह-विभाग से पत्र-व्यवहार आरम्भ कर दिया। केन्द्रीय सरकार में केवल सरदार पटेल ऐसे थे, जो यह चाहते थे कि यदि गुरुजी किसी प्रकार सत्याग्रह स्थगित कर दें तो संघ पर से प्रतिबन्ध हटाने की दिशा में कुछ प्रयत्न किया जा सकेगा। सरकार ने सिवनी जेल में जाकर श्री गुरुजी से भेंट करने की अनुमति दे दी। उनसे मेरी पहली भेंट १२ जनवरी १९४९ को हुई।

दोपहर को तीन बजे के लगभग मैं कारागार के उस भाग की ओर गया, जहाँ उन्हें रखा गया था। सम्भव है कि वह भाग विशेष बन्दियों के लिये बनवाया गया हो। एक छोटे अहाते के चारों ओर लगभग १५ फीट ऊँचा परकोटा था और बीच में, तीन चारपाइयों के बराबर एक कमरा था। इस परकोटे के द्वार की विरुद्ध दिशा में ही कमरे का द्वार था, जिसमें से भीतर जाते ही कमरे का दृश्य दिखलायी दिया। सामने की ओर उनके सोने की चारपाई तथा पुस्तकों की एक छोटी आलमारी थी। बीच में रस्सी बाँधकर प्रकाश कम करने के लिये परदे की तरह चादर डाल दी गयी थी। बीच में एक फोल्डिंग आराम कुर्सी, एक तिपाई और दो-तीन मामूली कुर्सियाँ थीं, जो सम्भवतः हमेशा वहाँ न रखी जाती हों तथा किसी के भेंट करने के लिये जाने पर डाल दी जाती होंगी। एक ओर पानी निकलने के लिये मोरी

थी, और वहाँ पानी के बरतन रखे थे। कोने में मेज थी, जिस पर चाय आदि के लिये स्टोव तथा कुछ अन्य बरतन थे। मेरे आने की सूचना पाकर श्री गुरुजी द्वार पर ही खड़े थे। भेंट के समय सुप्रिटेंडेंट, जेलर तथा खुफिया पुलिस के एक अधिकारी उपस्थित थे।

मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि श्री गुरुजी के स्वास्थ्य पर कुछ असर हुआ है। मैंने उनसे कहा—लगता है, आप कुछ दुबले हो गये हैं।

मेरे कथन में औपचारिकता ही थी क्योंकि उनके चेहरे पर न तो चिन्ता ही थी और न संत्रस्तता ही। मेरे प्रश्न पर हँसते हुए उन्होंने कहा—मेरे स्वास्थ्य के क्षीण होने का तो कोई कारण नहीं। मुझे आपके बारे में ही चिन्ता है। दिल्ली तक प्रवास करके नागपुर होते हुए आप यहाँ आये हैं। कष्ट तो आपने ही उठाया है और आप पर उसका असर भी हुआ है। आप कमजोर तथा थके-माँदे दिखायी दे रहे हैं। अतः आप आराम-कुर्सी पर बैठिये, मैं दूसरी पर बैठता हूं।

मैंने उनसे ही आराम-कुर्सी पर बैठने के लिये अनुरोध किया। मैं अपने कथन के पक्ष में तर्क भी उपस्थित कर रहा था कि यही योग्य है तथा सुविधा-जनक है, पर मेरे कहते-कहते उन्होंने अपने दोनों हाथों से मुझे पकड़कर आराम-कुर्सी पर बिठा ही तो दिया। मैं भी व्यर्थ में समय नष्ट न करने की दृष्टि से बैठ गया। उनके आग्रह में तनिक भी औपचारिकता नहीं थी। अतः उन्हें यह अखरा भी नहीं होगा, किन्तु मैंने अपने साथियों के चेहरे पर उभरते भावों से जान लिया था कि मुझे आग्रह करके उनको ही उस पर बिठाना चाहिये था।

सत्याग्रह आरम्भ होने से पहले ही उसे स्थगित करने के सम्बन्ध में मैंने श्री गुरुजी को तार दिया था तथा बाद में पत्र भी लिखा था। अतः मैंने उनसे पूछा—आपने मेरे तार तथा पत्र से कुछ अन्यथा विचार तो नहीं कर लिया ?

श्री गुरुजी ने हँसकर कहा—इसका तो प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता, क्यों कि आपका तार सरकार ने मुझे सत्याग्रह आरम्भ होने के दस दिन बाद दिया।

मैंने साश्चर्य कहा—इतने विलम्ब से ! इससे तो तार देने का अर्थ ही समाप्त हो जाता है।

सरकारी लाल-फीताशाही के प्रति व्यंगपूर्ण हास्य करते हुए श्री गुरुजी ने कहा—राजतन्त्र की तत्परता का यह नमूना है।

मैंने उनको सरकारी प्रमुख व्यक्तियों के विचार और संघ के गिरफ्तार कार्यकर्ताओं के एवं बाहर भूमिगत रहकर कार्य करने वाले कार्यकर्ताओं के मत श्री गुरुजी को बतलाये। बताते-बताते मैंने उनसे पूछा—सत्याग्रह के बारे में जनता तथा निष्पक्ष नेताओं की सहानुभूति के सम्बन्ध में तो आपने समाचार पत्रों में पढ़ ही लिया होगा।

श्री गुरुजी ने बताया—इधर कई दिनों से मुझे समाचार पत्र नहीं मिले हैं। जिस कानून के अन्तर्गत मुझे गिरफ्तार किया गया है, उसके अनुसार मुझे दो अखबार मिलना चाहिये, पर सरकार की ओर से वे भी नहीं भेजे गये। यह अच्छा ही हुआ। समाचार पत्र के नहीं आने से मन को अखण्ड शान्ति मिलती है। व्यग्रता या बाधा उत्पन्न होने की सम्भावना ही नहीं रहती।

मैंने उनसे कहा—संघ यदि सत्याग्रह स्थगित कर दे तो बाहर के निष्पक्ष नेता मध्यस्थता करने का यथा-सम्भव प्रयत्न करेंगे।

उस संकटपूर्ण परिस्थिति में भी गुरुजी अविचल थे। मुझ जैसे अनेक हितचिंतक चाहते थे कि संघ पर से प्रतिबंध किसी तरह दूर हो जाये, परंतु गुरुजी किसी भी तरह की जल्दीबाजी के विरुद्ध थे। उनका दृढ़ निश्चय था कि संघ की तत्व-निष्ठा को बिना आँच पहुंचाये तथा संघ की छवि को पूर्णतः निर्मल रखते हुए जो कुछ हो सके, वही किया जाये। केवल सरदार पटेल के कहने पर सत्याग्रह वापस लेने के लिये वे तैयार नहीं थे।

मैं फिर दिल्ली गया। मैं सरदार पटेल से गुप्त रीति से मिला। उनके कार्यवाह ने उस भेंट का आयोजन किया। उन्होंने मुझे बरामदे में कुछ देर तक अँधेरे में खड़ा किये रखा। सरदार पटेल लेट गये, उनके सिरहाने की खिड़की बंद कर दी गयी तथा सारे बल्ब बुझा दिए गये। उसके कुछ समय के बाद केवल कमरे की बत्ती जलायी गयी और व्यवस्थापक महोदय मुझे पीछे के दरवाजे से भीतर ले गये। उन्होंने बताया कि पत्रकारों को भनक मिली है कि संघ की ओर से कोई मध्यस्थ सरदार पटेल से मिलने वाले हैं, इसलिए वे टोह ले रहे थे। जब वे सब चले गये, तब आपको भीतर लाया गया है। सरदार पटेल ने बातचीत के बीच कहा--गुरुजी सत्याग्रह स्थगित करने के लिये अपना वक्तव्य दें। उसमें वे अपनी कुछ कल्पनाओं का उल्लेख तो कर सकते हैं परंतु यह न लिखें कि सरकार की ओर से या किसी सम्बन्धित अधिकारी व्यक्ति की ओर से कोई आश्वासन प्राप्त हुआ है।

मैं पुनः सिवनी गया। गुरुजी से मिला। चार घंटे तक बातचीत हुई। सत्याग्रह स्थगित कर दिये जाने के लिये जो आदेश-पत्र गुरुजी के हाथ का

मुझे चाहिये था, उस पत्र के एक-एक शब्द को बड़ी गम्भीरता के साथ विचार करके श्री गुरुजी बार-बार ठीक करते थे। एक के बाद एक, इस प्रकार चार प्रारूप सामने आये तथा प्रत्येक की शब्द-योजना ठीक नहीं होने से उन्हें रद्द कर दिया गया। पाँचवाँ प्रारूप (ड्राफ्ट) सन्तोषजनक तैयार हुआ। गुरुजी प्रत्येक शब्द की जाँच-पड़ताल अत्यधिक गहराई से करते थे, जिससे संघ की प्रतिष्ठा पर कोई आँच न आये। इस अंतिम प्रारूप की दो प्रतियों में से एक को गुरुजी ने अपने पास रख लिया और दूसरी प्रति मैं अपने साथ लेकर कारागार से बाहर चलने के लिये खड़ा हो गया।

जब मैं चलने लगा तो श्री गुरुजी ने हँसते हुए कहा—यह तो आप जानते ही हैं कि विदा करने के लिये मैं द्वार तक नहीं जा सकता।

सत्याग्रह को स्थगित करने की दृष्टि से वक्तव्य के परस्पर सम्मत प्रारूप को लेकर मैंने उनसे विदाई ली।

●

(इकतीस)

मन झुकता चला गया

मैंने पहले-पहल श्री गुरुजी के दर्शन सिवनी जेल में उस समय किये थे, जब राष्ट्रीय स्वयंसेवक-संघ पर गाँधी-हत्या का झूठा व बेहूदा आरोप लगाकर सरकार द्वारा प्रतिबन्ध लगा दिया गया था और श्री गुरुजी एवं उनके सहयोगियों को सहस्रो की संख्या में जेलों में डाल दिया गया था। तब मुझसे यह अन्यास सहन नहीं हुआ। श्री एकनाथजी रानाडे तथा श्री वसन्तरावजी ओक से सम्पर्क हुआ और 'जनाधिकार-समिति' की स्थापना हुई। जनाधिकार समिति के मंच से मैंने देश भर में भ्रमण करके इस अन्याय के विरुद्ध आवाज उठायी तथा राष्ट्र व समाज भक्त सहस्रों स्वयंसेवको को तुरन्त रिहा किये जाने की माँग की।

एक दिन नेहरूजी से मिलना हुआ तो उन्होंने तुरन्त पूछा—तुम मुझे बहुत गालियाँ देने फिरते हो। यह क्या जनाधिकार-समिति बनाई है?

मैंने कहा—पंडितजी! १९३४ में अँग्रेजी अन्याय के विरुद्ध न्याय की

स्थापना के लिये अपने बम्बई में 'कौंसिल-आफ-सिविल-लिबर्टी' की आवाज लगायी थी। जनाधिकार समिति उसी का हिन्दी अनुवाद है और उसका संविधान भी वही है जो आपकी उस कौंसिल का था। अन्तर केवल इतना है कि उस समय अँग्रेजों के अन्याय के विरुद्ध आवाज उठानी थी और आज अपनी सरकार के अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाना अनिवार्य हो गया है।

पंडितजी ने मेरे कंधे पर हाथ रखकर बड़े प्यार से कहा—एक और फर्क है। उसे मैं चलाता था, इसे तुम चलाते हो।

अस्तु, उसी प्रयास में सरदार पटेल से कुछ चर्चा करके पूना के 'केसरी' के सम्पादक श्री ग० व० केतकरजी को सिवनी श्री गुरुजी से भेंट करने के लिये भेजा गया। परन्तु सम्पादक-सुलभ प्रवृत्ति के कारण उन्होंने जेल में गुरुजी से मिलकर लौटने पर एक पत्रकार-सम्मेलन में सभी कुछ प्रकट कर दिया। इस कारण उनके जेल की अवधि महीनों बढ़ गयी। मैं भी थोड़े दिन के लिये निराश होकर बठ गया।

एक दिन सबेरे की बात है। गर्मी के दिन थे। मैं लॉन में बाहर सो रहा था कि श्री मथुरा बाबूजी स्व० श्री राजेन्द्र बाबू के निजी सचिव थे, उन्हीं की झंडे वाली गाड़ी लिये मेरे पास आये और मुझे सोते को जगा दिया। श्री राजेन्द्र बाबू उन दिनों खाद्य-मंत्री थे। श्री मथुरा बाबू ने कहा—बाबू बुला रहे हैं, तुरन्त चलिये।

मैं तुरन्त साथ हो लिया। बंगले पर पहुंचकर देखा कि श्री राजेन्द्र बाबू तो नहीं, पर श्री द्वारिका प्रसाद मिश्र लॉन में घूम रहे है। वे उन दिनों मध्य-भारत के गृहमंत्री थे।
उन्होंने देखते ही कहा— नागपुर चलो। अब संध के मामले को निपटाना तो है ही।

मैंने कहा—आपने प्रतिबन्ध लगाया नहीं, अतः आप उसे हटा सकते नहीं। मैं कच्ची गोलियों से नहीं खेलता कि बिना बात आपके साथ चलूं।

उन्होंने कहा—भाई ! मैं देहरादून से आ रहा हूं।

इद दिनों सरदार पटेल देहरादून में स्वास्थ्य-लाभ के लिये गये हुए थे। मैंने कहा—अच्छा वहाँ से आ रहे हैं आप। वहाँ का आदेश है तो मैं पहली ट्रेन पकड़कर ही नागपुर पहुंचता हूं।

नागपुर पहुंचते ही श्री भैयाजी दाणी तथा श्री बालासाहब देवरस ने मेरे ठहरने का प्रबन्ध लेक के किनारे कर दिया। वहां सबसे परामर्श करके जो नीति निश्चित हुई, तदनुसार मैंने एक पत्र अपनी ओर से गुरुजी के नाम

लिखा और उसका उत्तर गुरुजी का मेरे नाम प्रारुपित किया। सरकार की दी हुई मोटर में इन पत्रों को लेकर मैं सिवनी जेल गया। गुरुजी को एक कमरे में एकान्त में रखा गया था, जिसमें दो ओर से हवा आने का स्थान था। मैंने उनके दर्शन करते ही चरण-स्पर्श किये और अपने आने का उद्देश्य कहना प्रारम्भ किया ही था कि उन्होंने मेरे मुंह पर हाथ रखते हुए कहा—ये सब बातें पीछे होंगी। आप मेरे पास आये हैं तो पहले आपका सत्कार करना मेरा कर्त्तव्य है।

पास के कोने में रखी बोरी में से उन्होंने स्टोव निकाला, उसे जलाया तथा झटपट अपने हाथों चाय बना डाली। मैं उस महापुरुष की इस लीला को देखकर मानो जैसे खो गया होऊँ तथा मेरी आँखें नम हो गयीं।

उन्होंने दो प्याला चाय मुझे पिलायी एवं एक प्याला स्वयं ली। उनके चेहरे की निश्चिन्तता, हृदय की उदारता एवं अन्तर की आत्मीयता क्षण-प्रति-क्षण मुझे प्रभावित किये जा रही थी। मेरे हृदय ने अनुभव किया कि मैं एक अलौकिक महापुरुष के सांनिध्य में बैठा हूं।

इसके बाद मैंने उनके समक्ष पत्र रख दिये। वे बोले—आपने एवं मेरे सहयोगी मित्रों ने जो सोचा होगा, वह ठीक ही होगा। लाइये मैं इन पर हस्ताक्षर कर देता हूं।

मैंने इसका निषेध करते हुए कहा—पहले इन पत्रों को अच्छी प्रकार पढ़कर विचार कर लीजिये। यह हो सकता है, इनमें कुछ शब्द आपके स्वरूप के अनुकूल न हों।

उन्होंने पत्र सुनने के बाद भी कुछ बदलने की इच्छा प्रकट नहीं की। एक शब्द मैंने ही बदला, यह सोचकर कि उनकी ओर से वह अशोभनीय-सा लगता है। उन्होंने अपने नाम के कागज पर वह पत्र लिखकर हस्ताक्षर कर दिये और पत्र मुझे दे दिया। अपना काम समाप्त होने पर मुझे उठकर बिदा ले लेनी चाहिये थी किन्तु मैं उस महापुरुष के साथ इतना लीन हो गया कि उठने को जी नहीं करता था। अतः और बहुत सी चर्चा छिड़ गयी अन्ततः उन्होंने ही मुझे स्मरण कराया—भाई शाम होने जा रही है, आपको नागपुर भी तो लौटना हैं?

अस्तु, मुझें मजबूरी में चरण स्पर्श करके विदा लेनी पड़ी। नागपुर पहुंचकर श्री द्वारिका प्रसाद के घर से दोनों पत्र सरदार पटेल को देहरादून फोन करके सुनाये। उन्होंने कहा—इन दोनों पत्रों को मेरे पास भेज दीजिये।

मैंने अपने पत्र के साथ उन्हें सरदार पटेल के पास भेज दिया तथा अनुरोध किया—संघ पर प्रतिबन्ध एवं सहस्रों व्यक्तियों को जेलों में रखने का अब औचित्य नहीं है।

फिर श्री गुरुजी ससम्मान रिहा किये गये और जेल से छूटकर वे नागपुर पहुंचे। नागपुर में जो उनका भव्य स्वागत हुआ, उसे मैं भुला नहीं पाऊँगा। सारा नागपुर उनके दर्शन के लिये उमड़ पड़ा था। आबाल नर-नारी वृद्ध अपने तपस्वी कर्मयोगी की जय-जयकार कर रहे थे। श्री गुरुजी अपनी माता के चरण स्पर्श के लिये गये। एक कच्चे-से मकान में उनके साथ पहुंचते ही मैंने उस महान आदर्श हिन्दू जननी के चरण स्पर्श किये, जिसने राष्ट्र व हिन्दू समाज को एक वरदान दिया था। गुरुजी ने माताजी से कहा—ये वे ही व्यक्ति हैं, जिन्होंने संघ पर से प्रतिबन्ध हटवाने के लिये भारी प्रयास किया है।

माता जी ने मुझे गले से लगा लिया एवं काँसे की थाली में अपने हाथों प्रेम से भोजन कराया। उस समय मेरी आँखों के समक्ष माताजी के रूप में जीजाबाई की प्रतिमा आ खड़ी हुई। जिस प्रकार जीजाबाई ने महान् हिन्दू राष्ट्र की स्थापना के लिये शिवाजी को मुगलों के विरुद्ध खड़ा किया था, उसी प्रकार इन माताजी ने गुरुजी को हिन्दू समाज के पुनरुत्थान के लिये पैदा किया है। मैं उस दिन धन्य-धन्य हो गया।

इसके बाद श्री गुरुजी के सम्पर्क में आने के अवसर प्राप्त हुए। जनसंघ की स्थापना के दौरान भी उनसे अनेक बार मिलने का सौभाग्य मिला। कुछ ही दिन बाद मैं जनसंघ से छूट गया, किन्तु गुरुजी एवं राष्ट्रीय स्वयंसेवक-संघ से छूटना तो दूर रहा, उल्टे उसके महान् राष्ट्र-कार्य के प्रति मेरी श्रद्धा दिनोंदिन बढ़ती हो गयी।

कैंसर के आपरेशन के पश्चात् दिल्ली में उनका जो अभिनन्दन हुआ, उसमें मैं उपस्थित था। वैसे, उनकी बीमारी के समाचार ने मेरे हृदय को कचोट रखा था। मैं प्रभु से मन-ही-मन उनके दीर्घायुष्य की प्रार्थना प्रायः करता रहता था।

स्वागत का उत्तर देते समय भाषण करते हुए श्री गुरुजी की पैनी निगाह मुझ पर पड़ी होगी और जब सभा विसर्जित हुई तो उन्होंने संघ के एक अधिकारी को मुझे टटोल लाने के लिये भेजा, इसलिये कि मैं चाय उनके साथ लूं। उनसे आत्मीयता पूर्ण बातचीत हुई। मैंने उनके अस्वस्थ होने पर चिन्ता एवं स्वस्थ होने पर संतोष प्रकट किया तो वे मुस्कुरा दिये।

उस दिन चाय पीते समय मुझे सिवनी में गुरुजी के हाथों तैयार चाय याद आ गयी।

इसके पश्चात राष्ट्रीय-स्वयंसेवक संघ के दिल्ली कार्यालय में उनके दर्शन एवं बातचीत का अवसर मिला। उस दिन मैं अपने अन्तःकरण का कष्ट उन्हें सुनाने गया था। उन्होंने कमरे का द्वार बन्द कर लिया और मेरी वेदना को गम्भीर होकर सुनते रहे। गत २५ वर्षों में हम हिन्दू जाति की रक्षा एवं समृद्धि के लिये कितना कुछ कर पाये या न कर पाये तथा हिन्दू समाज पर नित नये आघातों से उप्पन्न हृदय की वेदना मैंने उनके समक्ष उड़ेल दी। वे पलंग से उतरकर मेरे पास आ बैठे। दोनों कन्धे दोनों हाथों से पकड़ कर बोले—आप तो स्वयं पंडित हैं। इस हिन्दू समाज की रक्षा मेरे या तुम्हारे ही ऊपर निर्भर नहीं है। जो अपने से बना, किया। जो बन रहा है, वह कर रहे हैं, इससे भी अधिक जो बन पायेगा, करते रहेंगे। अपना कर्तव्य हमें करना है, उत्तरदायी भगवान हैं। वही इसका रक्षण करेगा। हम तो नाम मात्र के साधन कहला सकते हैं।

उन्होंने आँखें मूंदी एवं कुछ देर रुकने के बाद उनकी धीमी वाणी गूंज उठी—हमें परमशक्तिवान परमात्मा में विश्वास रखना चाहिये। मेरा दृढ़ निश्चय है कि यह हिन्दू जाति उठेगी। इसका अभ्युदय होगा और हिन्दू-राष्ट्र संसार के सामने अपने आदर्शों को रखकर विश्व का मार्गदर्शन करेगा।

वे फिर मौन हुए तथा फिर कुछ देर रुककर बोले—इस रोग के बाद मेरे शरीर का भरोसा नहीं कि कितना चले। शरीर जो आता है वह जाता ही है! इसलिये इतने पर ही संतोष करना चाहिये कि हमने यथाशक्ति किया और आगे यह क्रम चलता रहे इसके लिये अपने सदृश साथी तैयार करें। शेष यह श्री भगवान का काम है कि वह इन साथियों को सामर्थ्य प्रदान करे।

मुझसे पूछने लगे—आपका आजकल क्या कार्यक्रम चल रहा है?

मैंने कहा—अब मैं केवल भगवन्नाम-जप को ही सार मानकर यथा-संभव उसमें समय देता हूं। यों काम अन्य संस्थाओं आदि के भी चलते ही रहते हैं। सनातन धर्म, संस्कृत हिन्दी आदि की सेवा भी करनी होती है।

वे बोले—बिल्कुल ठीक कहा आपने। भगवन्नाम-जप बहुत आवश्यक है। बड़े भाग्य से ऐसा शुभ अवसर मिलता है।

उनकी इस दृढ़ निष्ठा एवं अटूट विश्वास को देखकर मैं आत्मा के अनस्स्थल तक आप्लावित हो उठा। ये उस दिन हृदय की तमाम वेदना से मुक्त होकर ही उनके पास से लौटा। मैं उन्हें ऋषि एवं आदर्श हिन्दू कहने में अधिक आनन्दित हो रहा हूं। जितना-ही-जितना मैं उनके सम्पर्क में आता गया, उतना-ही-उतना वे मेरे मग्न में बसते चले गये, मेरा मन उनके चरणों के प्रति झुकता चला गया। हिन्दू के लिये जैसा दर्द उनके हृदय में था, इसे वे ही जानते हैं जो उनके सम्पर्क में आये हैं। और इस दर्द का इलाज भी उन्होंने अपने जीवन में करके दिखाया, वह था इस हिन्दू समाज के संगठन के लिये सर्वस्व अर्पण एवं भगवान में अनन्त श्रद्धा।

: १७ :

शोक से सन्तप्त

(एक)

उनका रिसता हृदय

हिन्दुत्व-जागरण, समाज-संगठन, देश-भक्ति, चरित्र-निर्माण, नैतिकता-शिक्षण,धर्म-प्रचार जैसे राष्ट्र-हितकारी कार्य,जिनसे राष्ट्र की अखण्डता-एकात्मता-आध्यात्मिकता का संरक्षण-संपोषण होता हो, ऐसे महान कार्य भारत भूमि के जिस कोने में जिनके द्वारा भी होता रहा, उन-उन महानात्मा के प्रति श्री गुरुजी के हृदय में बहुत सम्मान रहता और निकटता आ जाने के बाद उनसे प्रीति भी स्थापित हो जाती। श्री गुरुजी की ऐसी ही प्रगाढ़ प्रीति श्री पोद्दारजी ('कल्याण' धार्मिक मासिक पत्रिका के सर्वमान्य सम्पादक) के साथ भी थी। श्री पोद्दार जी के बारे में पूज्य श्री गुरुजी ने स्वयं लिखा है—

"लगभग २५ वर्ष हो गये हैं। (अर्थात् सम्भवतः सन् १९४५ या १९४६ में) अपने नित्य के भ्रमण में मैं गोरखपुर गया था। गोरखपुर का नाम योगिराज गोरखनाथ जी के कारण प्रसिद्ध है। उन महायोगी के कारण पुनीत बने स्थान को देखने की इच्छा थी ही। वह पूर्ण कर सका और उस दर्शन से हृदय में पवित्र भाव की अनुभूति कर सका। परन्तु विगत कई वर्षों से गोरखपुर और एक कारण से विख्यात है। वह है श्री गीताप्रेस

और उससे प्रकाशित मासिक 'कल्याण' एवं अन्य धर्म-ग्रन्थ । यह प्रतिष्ठान, जहाँ से नाममात्र मूल्य पर श्रेष्ठतम ग्रन्थ उपलब्ध किये जा रहे हैं, कैसा है, उसे कौन चलाता है—इन बातों पर कौतूहल हृदय में बहुत समय से था । उसे चलाने वाले महानुभावों के नाम तो पढ़े ही थे, परन्तु प्रत्यक्ष उनका दर्शन नहीं हुआ था । वह चिरप्रतीक्षित सुअवसर उस समय गोरखपुर जाने पर प्राप्त हो सका । मेरे सहयोगियों ने श्रद्धेय श्री भाईजी (श्री पोद्दारजी) से मिलने की योजना बना रखी थी । ठीक समय पर मैंने उनके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त किया । एक मध्यम कद की प्रसन्न वदन मूर्ति मेरे सम्मुख उपस्थित हुई । सौम्यता-माधुर्य उनके शब्दों से टपकते थे । प्रत्येक शब्दों में धर्म के प्रति अपार श्रद्धा, समाज के प्रति कारुण्य भाव, प्रखर राष्ट्र-भक्ति और सबकी महान प्रेरक श्री भगवान के चरण कमलों में प्रगाढ़ भक्ति अभिव्यक्त हो रही थी । इसके पश्चात् मैंने अनेक बार उनके दर्शन किये । वर्तमान परिस्थिति–धर्म श्रद्धा का ह्रास, नीतिमत्ता का ह्रास, विशुद्ध राष्ट्रभक्ति की न्यूनता, अपने समाज की विच्छिन्नता तथा इनके परिणामस्वरूप अविवेक का प्रादुर्भाव इत्यादि महत्वपूर्ण विषयों पर उनके प्रौढ़ विचार सुने । भगवद्भक्ति, गो-भक्ति का साक्षात्कार उनके शब्द-शब्द से होता हुआ अनुभव किया । गोवंश की हत्या, उसकी दुर्दशा से वे अति व्यथित रहते थे । भिन्न-भिन्न साधु-महात्माओं को अपने-अपने अलग मार्ग से चलते देख तथा उनमें सम्पूर्ण समाज की उन्नति हेतु सामञ्जस्य की न्यूनता को देखकर वे व्यथित तथा चिन्तित थे । परन्तु इस मनोव्यथा एवं चिन्ता के होते हुए भी सर्वकल्याणकारी श्री भगवान के प्रति अटूट विश्वास तथा प्रेम होने के कारण उनके अन्तःकरण का आनन्द और संतुलन अभंग रहते थे । यह सब मेरे लिये उपकारक अनुभव रहा है । उनके जीवन से श्री गीता के ज्ञान-कर्म-भक्ति का एकरस बोध प्राप्त करना—अपनी अल्प ग्रहण शक्ति के अनुपात में—मेरा सद्भाग्य है ।'

सत्साहित्य-प्रकाशन, गोरक्षा-आन्दोलन, विश्व-हिन्दू-परिषद, कल्याण-आश्रम, प्रयागकुम्भ के अवसर पर विराट हिन्दू धर्म सम्मेलन जैसे अनेक कार्यों में श्री गुरुजी तथा श्री पोद्दार जी का पारस्परिक सहयोग सदैव बना रहा । गोरक्षा-आन्दोलन के बाद श्री पोद्दार जी कुछ रुग्ण रहने लगे थे परन्तु सन् १९७० में उनकी रुग्णता बहुत बढ़ गयी । श्री गुरुजी समय-समय पर श्री पोद्दार जी के स्वास्थ्य सम्बन्धी समाचार मँगाते रहते थे । पर अन्ततः २२ मार्च १९७१ को श्री पोद्दार जी ने इस लोक से महाप्रस्थान कर

दिया। इस समाचार को सुनते ही पूज्य श्री गुरुजी ने शोक संदेश भेजा—

"कल रात्रि में आकाशवाणी से श्रद्धेय भाई जी के पार्थिव देह त्यागकर भगवच्चरणों में विलीन होने का समाचार प्रसृत किया गया । यह धक्का देने वाला वृत्त मुझे बतलाया गया । श्री भाईजी का जीवन इतना पुनीत, राष्ट्रभक्ति, धर्मनिष्ठा और परमात्मा के श्रीकृष्ण रूप में उत्कट अविचल भक्ति से ओत-प्रोत था कि उनका इहलोक से गमन, परम सौख्यमय चिरन्तन भगवल्लोक में प्रवेश और श्री भगवत्सानिध्य में चिरनिवास के रूप में ही हुआ है—यह मेरी श्रद्धा है । परम श्रद्धेय श्री भाईजी—श्री हनुमान प्रसाद जी की पवित्र स्मृति में शतशः वन्दन ।'

भक्त-हृदय श्री पोद्दार जी के प्रेमीजनों की ऐसी चाह थी कि उनकी स्मृतियों के एक संकलन का प्रकाशन श्रद्धार्चन स्वरूप किया जाये । अतः श्री गुरुजी से भी सहयोग के लिये प्रार्थना की गयी । इस प्रार्थना ने श्री गुरुजी के कोमल हृदय को पीड़ा ही प्रदान की । श्री गुरुजी ने उत्तर स्वरूप लिखा—

"श्रद्धेय भाई जी ने नश्वर शरीर का त्याग कर भगवत्सांनिघ्य प्राप्त किया । उनकी पावन स्मृति में एक श्रद्धाञ्जलि-ग्रन्थ के रूप में कुछ शब्द-सुमन-अर्पण करने का निश्चय होकर उस सम्बन्ध में मेरे पास भी पत्र आया है, पर मेरी बहुत बड़ी कठिनाई है कि जिनके सम्बन्ध में मेरे मनमें अपार श्रद्धा और प्रेम होता है, उनका वियोग होने पर हृदय पर गहरा आघात होता है और यद्यपि मैं अपने कर्तव्य करता रहता हूं, पर वह घाव रिसता ही रहता है और जब कभी उनके विषय में सोचने-कहने का प्रसंग उपस्थित होता है, उस घाव की वेदना असह्य हो उठती है । फिर शब्द सूझते नहीं विचार कुण्ठित-से हो जाते हैं । मन एक अवर्णनीय व्यथा से अभिभूत हो जाता है । आपका पत्र आने पर ऐसी ही असहनीय पीड़ा का फिर जागरण हुआ है । जिनके प्रेम से आशीर्वाद से कार्य करते समय निश्चिन्तता तथा उत्साह का अनुभव करता था, वे जब प्रत्यक्ष दिखायी नहीं देंगे—यह सोचकर मन बेचैन हो उठा है । अशरीरी, अव्यक्त रूप से अपना प्रोत्साहन और आशीष वे दे ही रहे हैं, यह सत्य होते हुए भी एक देहधारी के लिये इस विचार से संतोष होना कठिन है । इस कारण मैं सबसे क्षमा-याचना करता हूं । सम्भव हैं कि कुछ और समय बीतने पर मनोभावों पर इतना नियन्त्रण कर सकूँगा कि अन्तःकरण के भाव शब्दों में उतार कर श्रद्धेय भाईजी की स्मृति में उन्हें अर्पण कर

सकूँगा । आज तो भाववेग अति प्रबल है । विचार शब्द बिल्कुल अवरुद्ध हैं ! क्या करूँ ? बार-बार क्षमा-याचना करता हूं ।

शीत ऋतु में श्री गुरुजी का अखिल-भारतीय भ्रमण चल रहा था । श्री पोद्दारजी के निधन के दस माह बाद ४ जनवरी १९७२ को श्री गुरुजी का गोरखपुर आगमन हुआ । मेरे वासस्थान पर ही श्री गुरुजी के ठहरने की व्यवस्था थी । प्रातः काल स्टेशन से मेरे घर पहुंचने पर श्री गुरुजी संघ के स्थानीय कार्यकर्ताओं के साथ चाय पी रहे थे । सम्पूर्ण दिवस के कार्यक्रम की जानकारी प्राप्त करने के बाद चाय पीते-पीते श्री गुरुजी ने पूछा—क्यों बाला बाबू ! श्री भाईजी की समाधि पर पुष्प चढ़ाने के लिये गीता वाटिका भी तो चलना है न ?

मैंने सहज भाव से कहा—हाँ चलना तो है ही ।

श्री गुरुजी--कब ?

मैंने उत्तर दिया--सोचा ऐसा गया है कि शाम के समय अपने संघ-कार्यक्रम के बाद ।

श्री गुरुजी ने विनोद का पुट देते हुए अपने दैनन्दिन संध्या-उपासना की ओर लक्ष्य करके कहा--अरे भाई ! शाम को नाक भी तो पकड़नी रहती है, दूसरों की नहीं, अपनी ही नाक । अतः क्यों न इसी समय चला जाये ? अभी तो इतना समय है ही कि गीता वाटिका से लौटकर अपनी बैठक में भाग लिया जा सकता है । मैं स्नानादि से जल्दी ही निवृत्त हो लेता हूं । और समाधि पर पुष्प भी स्नान के बाद ही चढ़ाना उचित रहता है ।

शाम को चला जाये, इस विचार से प्रेरित होकर मैंने धीरे से कहा--गीतावाटिका वाले यह भी चाहेंगे कि जब आप वहाँ पहुंचें, उस समय वहाँ कुछ लोग एकत्रित रहें वहाँ कुछ तैयारी रहे नहीं, और बिना सूचना के आप वहाँ अचानक पहुंच जायें, यह जरा विचित्र-सा गीतावाटिका वालों को लग सकता है ।

श्री गुरुजी ने कहा--सूचना तो दूरभाष (टेलीफोन) द्वारा दी जा सकती है । मुझे अभी स्नान करना बाकी है तथा कार से वहाँ हम लोग पहुंचेंगे, इन सबमें कुछ समय तो लगेगा ही । क्या इतना समय उन लोगों के लिये पर्याप्त नहीं है कुछ पुष्प इकट्ठा कर लेने के लिये ? नहीं तो, कुछ पुष्प हम लोग ही यहाँ से लेते चलेंगे । जहाँ तक लोगों को एकत्रित करने की बात है, उसकी आवश्यकता ही क्या है ? मुझे तो उन पूतात्मा के प्रति अपनी

आन्तरिक श्रद्धा के कुछ पुष्प चढ़ाने है। ऐसी अर्चना के समय लोगों को एकत्रित करने या होने की जरूरत ही क्या है ?

श्री गुरुजी की प्रदर्शन एवं प्रसिद्धि-पराङ्मुखता को देखकर मैं मन-ही-मन विनत हो रहा था। इसके अतिरिक्त उनके हृदय की श्रद्धा-भावना को सन्ध्या के समय तक का विलम्ब सम्भवत: सह्य नहीं था स्नानादि से शीघ्र ही निवृत्त होकर वे गीता वाटिका गये। भक्त हृदय श्री पोद्दार जी की समाधि पर अपनी श्रद्धा के प्रतीक स्वरूप कतिपय पुष्प अर्पित किये और पूज्या माताजी (श्री पोद्दारजी की सह-धर्मचारिणी) से भी मिले। श्री पोद्दार-जी के नित्य-सहचर-संन्यासी स्वामी श्री चक्रधर जी महाराज भी गीता-वाटिका में विराज रहे थे। श्री गुरुजी उनसे भी मिले तथा थोड़ी देर तक उनसे गीता प्रेस, कल्याण मासिक पत्रिका तथा देश में धार्मिक साहित्य की वर्तमान आवश्यकता आदि विषयों पर बातचीत होती रही। चलते समय पूज्य श्री गुरुजी ने श्री स्वामी जी को प्रणाम किया। श्री स्वामी जी ने बड़े सम्मान पूर्वक कहा—आप यहाँ पधारे, यह आपने बड़ा अनुग्रह किया।

यह सुनते ही पूज्य श्री गुरुजी का टीस-भरा हृदय तुरन्त बोल पड़ा—मेरा अनुग्रह क्या ? मैं स्वयं एक ग्रह बना स्थान-स्थान पर घूमता रहता हूं।

पूज्य श्री गुरुजी की आकृति और स्वर से स्पष्ट था कि उनकी व्यथा ही बोल रही है, आध्यात्मिक एकान्त साधना वाले सपनों के अपूर्ण रह जाने की व्यथा। पर श्री गुरुजी का यह भी कैसा अद्वितीय आत्मोत्सर्ग—आध्यात्मिक एकान्त साधना के सपनों का पूर्णोत्सर्ग था कि हिन्दू भूमि हिन्दू समाज हिन्दू संस्कृति हिन्दू साधना के संरक्षण-संपोषण हित सतत भ्रमण शीलता को ही अपनी आध्यात्मिक साधना का स्वरूप बना लिया था।

●

(दो)

शहीद की स्मृति

सन् १९७२ की मकर सक्रान्ति के पवित्र अवसर पर श्री गुरुजी आगरा पधारे थे। प्रात:काल से लेकर रात्रि तक के कार्यक्रमों की जो योजना बनी

थी, उस योजना के अनुसार अवकाश के लिये स्थान कहाँ ? बस, व्यस्तता ही-व्यस्तता। किन्तु निवास स्थान पर पहुंचते ही श्री गुरुजी ने पूछा—पुरोहित के यहाँ कब चलना है ?

पुरोहित माने, श्री मनोहर जी पुरोहित, जो गत भारत-पाक-युद्ध में देश की रक्षा करते हुए शहीद हो गये थे। उनके संतप्त परिवार में श्री-गुरुजी को जाना था। श्री गुरुजी ने सर्वप्रथम इसी के बारे में जानकारी प्राप्त करनी चाही थी। योजना के अनुसार कार्यक्रम चाहें कितना ही व्यस्त हो श्री गुरुजी को श्री पुरोहित जी के यहाँ जाना ही था और प्रातःकाल साढ़े-नौ बजे श्री गुरुजी उनके यहाँ गये।

वातावरण अत्यन्त गम्भीर था। श्री गुरुजी को देखते ही घाव फिर हरा हो आया, दबी हुई व्यथा फिर उभर आयी और श्रीमती पुरोहित रोने लगी। श्री गुरुजी ने उसके सिर पर हाथ रखते हुए कहा, अत्यधिक स्नेहभरी वाणी में कहा—शान्त हो जा, बेटी ! तू तो वीर-पत्नी है।

जैसे उसकी सम्पूर्ण वेदना श्री गुरुजी ने ले ली हो। इसके बाद प्रत्येक को श्री गुरुजी ने अलग-अलग सान्त्वना दी। दस मिनट के इस समय में ऐसा लगा, संघ के सर-संघचालक नहीं, उनके परिवार के प्रमुख ही मानो आये हों। बाद में पता चला कि श्रीमती पुरोहित के पिताजी से नागपुर संघ-शाखा के बाल-स्वयंसेवक के रूप में कभी उनका परिचय हुआ था। श्री गुरुजी इसे भूले नहीं थे।

(तीन)

खिन्न मन से प्रस्थान

बात सन् १९४१ की है संघ-शिक्षा-शिविर खण्डवा में लगा हुआ था। पंजाब के दो अढ़ाई सौ स्वयंसेवक प्रशिक्षण के लिये खण्डवा शिविर में आये हुए थे लाहौर के एक स्वयंसेवक श्री देशराज जी को टाइफायड हो गया। खण्डवा नगर के संघचालक डाक्टर थे, वे ही श्री देशराज जी की चिकित्सा कर रहे थे।

श्री गुरुजी खण्डवा के संघ-शिक्षा-शिविर में आये वे बीमार श्री देशराज

जी को देखने के लिये कमरे में गये। उसे देखकर और उसके बारे में कई बातें पूछकर श्री गुरुजी ज्यों ही कमरे से बाहर आये उन्होंने पूछा कि क्या बीमार के घर पर तार या पत्र भेजा गया है अथवा नहीं ? इस बारे में सही और पूरी जानकारी प्राप्त करने के बाद ही श्री गुरुजी बौद्धिक के कार्यक्रम में गये।

दूसरे दिन श्री गुरुजी बीमार को देखने फिर गये और देखकर कमरे से बाहर निकलते ही कहा—'इसे जल्दी अस्पताल में भर्ती कराने की व्यवस्था करो'। श्री देशराज जी को तुरन्त अस्पताल में भर्ती करा दिया गया। तीसरे दिन उनकी हालत ने कुछ अधिक गम्भीर रूप धारण कर लिया। सारी दौड़-धूप करने और सारी व्यवस्था ठीक होने के बाद भी जो होना नहीं था, वही हुआ।

उसी दिन रात को श्री गुरुजी को यात्रा के लिये प्रस्थान करना था। उस दिवंगत स्वयंसेवक का कोई भी सम्बन्धी लाहौर से खण्डवा पहुंच नहीं पाया था, अतः श्री गुरुजी बड़ी चिन्ता कर रहे थे। बड़े ही खिन्न मन से उन्होंने यात्रा के लिये प्रस्थान किया।

(चार)

कार्यकर्ता के लिये सचिन्त

यह बात भारत-विभाजन से पूर्व की है। मैं श्री गुरुजी के साथ हैदराबाद और कराँची आदि के प्रवास पर था। हैदराबाद में मुस्लिम आततायियों ने हिन्दुओं पर आक्रमण करके अनेकों को जान से मार डाला था। इस दंगे में संघ के एक कर्मठ कार्यकर्ता की भी हत्या कर दी गयी थी।

हैदराबाद पहुंचते ही श्री गुरुजी ने स्वयंसेवकों से पूछा—उस हुतात्मा स्वयंसेवक के घर में कौन है ?

लोगों ने बताया कि उसके पीछे उसकी विधवा पत्नी है। तब श्रीगुरुजी स्वयं उसके पास जाकर मिले, उसे सान्त्वना दी और कार्यकर्ताओं को उस शहीद की पत्नी के जीवन-निर्वाह की व्यवस्था के लिये आवश्यक निर्देश दिये।

इस प्रकार श्री गुरुजी सदैव ही संघ के प्रत्येक कार्यकर्ता के योग-क्षेम की चिन्ता राष्ट्र-कार्य के समान ही रखते थे। इन्हीं दिनों कराँची में साधु टी० एल० वास्वानी की अध्यक्षता में श्री गुरुजी की विराट सभा हुई थी, उस सभा में श्री गुरुजी द्वारा कहे गये शब्दों से वहाँ के हिन्दुओं में आशा का संचार हो उठा था।

(पांच)

सरदार पटेल की अन्तिम यात्रा में

जब सरदार पटेल नहीं रहे, उस समय श्री गुरुजी भी उनकी अन्तिम यात्रा में शामिल होने के लिये मध्य प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमन्त्री श्री द्वारिका प्रसाद जी मिश्र के साथ बम्बई आये थे। वह सरकारी विमान ही था और स्वयं मिश्र जी ने यह जानते हुए भी कि नेहरूजी तथा अन्य कई नेता संघ के बारे में क्या सोचते हैं, श्री गुरुजी को अपने साथ उस विमान में लाने में किसी प्रकार की हिचक का अनुभव नहीं किया।

उस समय अन्त्य यात्रा में जल्दी पहुंचने का भी प्रश्न था। अर्थी के साथ पूरे रास्ते श्री गुरुजी भी रहे। उस समय प्रधान मन्त्री पं० नेहरू राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद तथा वहाँ उपस्थित थे राजर्षि श्री पुरुषोत्तम-दास टण्डन आदि सभी से गुरुजी की कुछ-न-कुछ बात-चीत होती रही थी।

लौटते समय गुरुजी ने सरकारी विमान से वापस जाना उचित नहीं समझा। कारण बतलाते हुए उन्होंने कहा था–उस समय जल्दी थी। अन्य उपाय नहीं था। अब साधन भी है और जल्दी का भी प्रश्न नहीं है।

फिर वे ट्रेन से लौटे। आवास तक जाने के लिये भी वहाँ कई सरकारी कारें थीं और आग्रह भी किया गया था श्री गुरुजी से, परन्तु उस समय भी उन्होंने सरकारी गाड़ी का उपयोग करना ठीक नहीं समझा। इस संदर्भ में उचित-अनुचित सम्बन्धी उनका विचार, बहुत स्पष्ट रहा करता था।

(छ:)

गाँधी-हत्या से शोकाकुल

आन्ध्र तथा तमिलनाडु प्रदेशों का दौरा करते हुए श्री गुरुजी ३० जनवरी १९४८ को मद्रास में थे। इस दिन प्रातःकाल मद्रास के मुत्तइया चेट्टियार विद्यालय के प्रांगण में उन्होंने अपने कार्यकर्ताओं के समक्ष भाषण दिया था फिर शाम को 'श्री रामकृष्ण लंच होम' के श्री अय्यर जी ने श्री गुरुजी के सम्मान में एक कार्यक्रम रखा था, जिसमें नगर के अनेक प्रतिष्ठित नागरिकों को आमन्त्रित किया गयाथा। इस कार्यक्रम में श्री गुरुजी के भाषण के बाद उपस्थित नागरिकों के मध्य चाय वितरित की जाने लगी। ठीक इसी समय रेडियो पर यह शोक समाचार सुनने को मिला कि आज सायंकाल दिल्ली के बिड़ला भवन में जब महात्मा गाँधी प्रार्थना के लिये जा रहे थे तब किसी ने गोली चलाकर उनकी हत्या कर दी।

यह समाचार सुनकर श्री गुरुजी स्तब्ध रह गये। उनके चाय की प्याली ज्यों-कि-त्यों रखी रह गयी। श्री गुरुजी कुछ देर तक चुप बैठे रहे, फिर तुरन्त कार्यक्रम स्थगित करके संघचालक श्री राजगोपालाचारी जी के निवास स्थान को चले गये। यहाँ पहुंचते ही उन्होंने पं० नेहरू, सरदार पटेल तथा श्री देवदास गाँधी को सान्त्वना के तार भेजे। विजयवाड़ा के अगले कार्यक्रम को स्थगित करके श्री गुरुजी ने नागपुर लौटने का निश्चय किया। ३१ जनवरी को श्री गुरुजी वायुयान द्वारा नागपुर पहुंचे तथा तत्काल उन्होंने भारत की सभी शाखाओं को महत्मा गाँधी की स्मृति में तेरह दिन तक संघ-शाखाएँ बन्द रखकर शोक मनाने का आदेश दिया।

इस नृशंस तथा दुर्भाग्यपूर्ण हत्या के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए श्री गुरुजी ने एक वक्तव्य भी दिया—आधुनिक युग के सर्वाधिक आदरणीय व्यक्ति की ऐसी नृशंस हत्या एक असाधारण पाशविक घटना है। इस कारण मेरे मन में जो भीषण दुःख उत्पन्न हुआ है, उसे व्यक्त करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूं। यह एक महत्व पूर्ण वात है कि हत्यारा इसी देश का तथा हिन्दू है। यह जानकर कि ऐसा कुकृत्य करने वाला हमारा ही देशबन्धु है, प्रत्येक विचारवान व्यक्ति का मस्तक इस शब्दातीत रूप से शोकाकुल अवस्था में भी, लज्जा से झुक जायेगा। देश के इस संकटकाल में एकता तथा शान्ति की स्थापना करने वाले व्यक्ति की नितान्त आवश्यकता थी, जिसकी पूर्ति के लिये महात्मा जी सबसे योग्य थे। उनकी

हृथ्या करने वाले ने राष्ट्र का अक्षम्य अपराध किया है। अतीव व्यथा से अपना दुःख व्यक्त करते हुए हम भविष्य की ओर देख रहे हैं। इसहृदय विदारक घटना से, मुझे आशा है, लोग प्रेम तथा सेवा का पाठ सीखेंगे तथा उसे व्यवहार में लायेंगे।

(सात)

दीनदयाल जी का शोक समाचार

अत्यन्त कठिन और विचलित करने वाले प्रसंग पर भी उनको अस्थिर होते नहीं देखा, उनका भगवान पर ऐसा अडिग विश्वास था। प्रयाग में शिविर था। दिनाँक ११ फरवरी १९६८ को ९ बजे रेडियो ने पं० श्री दीन दयाल जी की हत्या का समाचार प्रसारित किया। एक कार्यकर्ता यह समाचार लेकर आया। श्री गुरुजी को समाचार बैठक के बाद दिया गया।

शव वाराणसी ले जाया गया है और वहीं कुछ पता चल सकता है यह सोच कर जल्दी-जल्दी समारोप करने का तय हुआ। लगभग सामान्य रीति से उनका बौद्धिक हुआ। हम सभी के चेहरे न चाहते भी अन्दर की वेदना से कलान्त थे, मात्र गुरुजी शान्त थे। कार से गुरुजी तथा अन्य प्रमुख व्यक्तियों को लेकर काशी के लिये चला।

काशी नगर में पता लगाते हुए हम लोग लाश घर में पहुंचे, जहाँ दीनदयाल जी का पार्थिव शरीर जाँच के लिये रखा हुआ था। अन्दर जाते ही चीत्कार और आँसुओं की झड़ी लग गयीं। सिसकियाँ भरते हुए कार्यकर्ता अपने परम प्रिय मित्र, सखा और नेता के दर्शन कर रहे थे। मात्र गुरुजी उस दारुण दृश्य को देखकर भी शान्त थे। अन्दर कितनी हलचल मची हुई थी यह किसको पता था? उनका सबसे प्रिय विश्वसनीय कार्यकर्ता, सहयोगी इस प्रकार क्रूर हत्या का शिकार हुआ था, परन्तु उसको भी प्रभु की इच्छा मानकर मन और बुद्धि पर उनका जैसा नियंत्रण था, उसका एक अद्भुत चित्र हम लोगों के सामने था।

जिस समय रात्रि के समय सैनिक हवाई जहाज उनके शव को लेकर दिल्ली के लिये उड़ा और हम सभी ने उनके पार्थिव शरीर को अन्तिम

प्रणाम किया, हम सभी (भाऊराव देवरस, बै० नरेन्द्रजीत सिंह) रो रहे थे, लेकिन गुरुजी की सारी वेदना एक दीर्घ निःश्वास के रूप में ही बाहर के लोग जान सके।

(आठ)

श्री दीनदयाल जी के निधन पर

सन् १९६८ के फरवरी मास में उत्तर प्रदेश के कई स्थानों पर शीत-शिविर लगे हुए थे। प्रयाग के शीत शिविर के समारोप-दिवस पर श्री गुरुजी प्रयाग आये हुए थे। अचानक संवाद मिला कि मुगलसराय में पं० श्री दीनदयाल जी उपाध्याय की हत्या कर दी गयी है। यह शोक-समाचार ही ऐसा भीषण और हृदय-विदारक था, जो वज्राघात को भी तुच्छ बना दे। समारोप-कार्यक्रम जल्दी कर के शीत-शिविर को विसर्जित कर दिया गया। श्री गुरुजी तुरन्त वाराणसी के लिये चल पड़े। श्री दीनदयाल जी के शव को देखकर श्री गुरुजी के दिल पर क्या बीती होगी, उसकी कल्पना हम साधारण-जन के लिये सम्भव ही नहीं।

दूसरे दिन शव को दिल्ली वायुयान से रवाना करना था। शव को विदाई देने के लिये श्री गुरुजी हवाई-अड्डे गये। साथ में श्री भाऊराव देवरस भी थे। श्री भाऊराव कब तक स्वयं को रोक पाते ? जब श्री भाऊराव उत्तर प्रदेश के प्रान्त-प्रचारक थे तो श्री दीनदयाल जी सह-प्रान्त प्रचारक थे। एक-एक पुरातन स्मृति उभर रही थी, एक-एक स्नेह-तन्तु हृदय को झकझोर रहे थे, एक-एक अश्रुकण आँखों में विकल हो रहे थे, पर अभी तक सबको जबरदस्ती दबा रखा था। इस अन्तिम विदाई के समय सारा संयम छिन्न-भिन्न हो गया, आँखों से आँसू बह चले और कण्ठ से रुदन फूट पड़ा। तुरन्त श्री गुरुजी ने कहा—भाऊ ! तुमि काय करतो ? (भाऊ ! तुम क्या कर रहे हो ?)

श्री गुरुजी के ऐसा कहते ही वे आँसू आँखों के भीतर ठिठक गये और वह सिसक होठों के पीछे रुद्ध हो गयी, भीतर-ही-भीतर घुटने के लिए भीतर-ही-भीतर गलने और गलाने के लिये।

दिल्ली जाने वाले वायुयान में शव को रख दिया गया। वायुयान दिल्ली की ओर उड़ चला और श्री गुरुजी चल पड़े जौनपुर के शीत-शिविर में भाग लेने के लिये। कार में एक गम्भीर गमगीन खामोशी हावी थी। कोई किसी से क्या बोले, क्या कहे? जौनपुर के शीत-शिविर के समारोप कार्यक्रम में श्री गुरुजी का भाषण हुआ। एक काली छाया श्री गुरुजी के दिल और दिमाग पर छायी हुई थी, पर न तो उसकी किंचित झलक शब्दों के माध्यम से और न उसकी किंचित झलक आँसुओं के रूप में! श्री गुरुजी ने कहा—'मैं भी कैसा निर्मम और कठोर हूं-कितना पत्थर हृदय हूं कि मातृ-चरणों पर एक-से-एक बलि चढ़ाता जा रहा हूं और मेरी आँखों में आँसू की की एक बूंद भी नहीं? राजनीति के कीचड़ में रहकर भी जिसका जीवन कमल के समान निर्लिप्त और निर्मल रहा, इतना ही नहीं, जो अपने साथियों को भी राजनैतिक मालिन्य से दूर रख सका, ऐसे दीनदयाल जी की हत्या हो जाने के बाद भी मेरे अधरों पर शोक के शब्द नहीं? अपितु मेरे मुख से भारत माँ के चरणों में निवेदन के रूप में पुनः पुनः ये ही शब्द निकलते हैं कि माँ! तू कितनी बलि लेगी? जितनी भी बलि लेनी हो, ले ले। माँ! हम तेरे सेवा-व्रती सपूत हैं। तू यही पायेगी कि हमारे कदम पीछे नहीं हटे हैं और तू यही देखेगी कि हमारे मस्तकों के फूलों को ढेर तेरे चरणों पर लगा हुआ है।'

जौनपुर का कार्यक्रम पूरा करके श्री गुरुजी गोरखपुर के शीत-शिविर में भाग लेने के लिये आये। गोरखपुर में वे विख्यात धार्मिक मासिक पत्रिका 'कल्याण' के सम्पादक श्री हनुमान प्रसाद जी पोद्दार से मिले। श्री पोद्दार-जी ने श्री दीनदयाल जी के आकस्मिक प्रयाण पर अत्यन्त शोक व्यक्त किया। श्री गुरुजी ने कहा—भाईजी! राजनीति के क्षेत्र का कार्यभार दीनदयाल पर सौंपकर मैं निश्चिन्त था कि उसके रहते हुए उसकी संस्था को और उसके साथियों को कालुष्य छू नहीं सकेगा, पर अब काफी चिन्ता से घिरा हूं। दीनदयाल जैसा निस्स्वार्थ और कर्त्तव्य परायण व्यक्तित्व मिलना कठिन है, जिसके निर्मल जीवन की पवित्रता संक्रमित होकर दूसरों को भी पवित्र बना देती थी।

दुर्भाग्य से भारत में पाश्चात्य अनुकरण के प्रभाव से राजनीति का पंजा फैलता चला जा रहा था और उसके चंगुल में जीवन के सभी क्षेत्र जकड़ते चले जा रहे थे। 'करेला और नीम चढ़ा' के अनुसार छल-कपट-भ्रष्टाचार ने राजनैतिक क्षेत्र को और भी विषाक्त बना डाला था। स्वयंसेवक जैसे

शुद्ध चरित्र के धनी को राजनीति की काजल-कोठरी में भेजना उसके धवल-यश पर भी कालिमा की रेखाएँ लगवाने का संकट मोल लेना था। इसके बाद भी इस कार्य क्षेत्र के लिये श्री गुरुजी ने चुना पं० श्री दीनदयाल-जी उपाध्याय को। अनेकों वर्षों तक स्वयंसेवकत्व के उज्वल आदर्श को राजनैतिक शुद्धाचार में प्रतिबिम्बित करते-करते दीनदयाल जी बलिदान हो गये। ऐसे दीनदयाल जी के चले जाने पर श्री गुरुजी के अन्तर का संतप्त और सचिन्त होना स्वाभाविक था।

(नौ)

अपने कार्यकर्ता की जय-जयकार

पं० श्री दीनदयाल जी उपाध्याय के आकस्मिक निधन के बाद नागपुर में एक बैठक हुई थी, उसमें श्री गुरुजो ने जो थोड़े-से शब्द कहे थे, उन्हें सुनने वाला कभी भूल नहीं सकता। 'कार्यकर्ता' के जय-जयकार की बात उस दिन उन्होंने कही थी और कहा था–'उसका जय-नाद करते हुए आनन्दातिरेक में हो सकता है, मैं स्वयं को भी भूल जाऊँ।'

यह सम्भव है कि मेरे लिखने में यहाँ इन शब्दों में कुछ हेर-फेर हो गया हो परन्तु उन शब्दों की सूत्र रूप में सनातन व्याख्या 'मैं नहीं, तू ही' है। अपने कार्यकर्ता की जय-जयकार में आह्लादि-आनन्दित होने की यह बात अविस्मरणीय है, निखिल नेतृ-वर्ग के लिये अनुकरणीय भी है। फिर उसी क्षण श्री गुरुजी ने धीर भाव से बड़े ही शान्त एवं व्यथित स्वर में श्री दीनदयाल जी की निर्मम हत्या के संदर्भ में कहा था—मैं ढाल पर खड़ा हूं और अब अपने को रोक नहीं पा रहा हूं।

इन शब्दों ने वहाँ समुपस्थित कार्यकर्ताओं के हृदय हिला दिये थे।

(दस)

मर्मस्पर्शी दृश्य के साक्षी

सन् १९६८ के मार्च मास की २३ और २४ को नागपुर में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की अखिल भारतीय केन्द्रीय सभा और केन्द्रीय कार्यकारी मण्डल की बैठकें थीं। पहले दिन बैठकें समाप्त हो गयीं। दूसरे दिन प्रातः साढ़े आठ बजे कार्य आरम्भ हुआ। सरकार्यवाह के चुनाव के पश्चात् श्री गुरुजी ने अपना अन्तिम भाषण दिया। इसे जब आरम्भ किया तो पण्डित श्री दीनदयालजी उपाध्याय की दुःखदायक मृत्यु का उन्होंने उल्लेख किया। उनके मुख से निकले हुये शब्द ऐसे थे कि सुनने वालों की आँखों में आँसू आ गये। सर्वश्री रज्जू भैय्या, मिट्ठनलाल, भाऊराव देवरस और अन्य कितने ही कार्यकर्ता आँखें पोंछते ही रह गये।

इस समय श्री गुरुजी ने अपने विषय में जो दो-चार शब्द कहे, उन्हें सुनकर स्वयंसेवकों को बहुत सख्त चोट लगी। आपने कहा– 'अब मैं अपने आपको ढलानपर खड़ा पाता हूं। मैं फिसल रहा हूं। मुझे इस बात का पता नहीं कि मैं एकाएक ही नीचे जा पहुंचूंगा या धीरे-धीरे नीचे जाऊँगा। पहले मुझे इस शरीर पर अभिमान था, अब वह अभिमान नहीं रहा।'

इन शब्दों की पृष्ठभूमि में पण्डितजी की क्रूरतम हत्या काम कर रही थी। उनकी हत्या की जानकारी श्री गुरुजी को इलाहाबाद में हुई थी। वे वाराणसी पहुंचे। पण्डित दीनदयालजी के मृतक शरीर को देखकर उनके मुख से ये शब्द निकले– 'अरे! इसे क्या हो गया है?' इसके पश्चात् उनका दाहिना हाथ अपने प्रिय स्वयंसेवक के चेहरे पर चला गया। यह हाथ ऐसे फिरा, जैसे पिता का हाथ प्यारे बेटे के चेहरे पर फिर रहा हो।

इसके पश्चात् वे दोबारा उस समय पहुंचे, जब पण्डित दीनदयालजी का मृतक शरीर वायुयान में रखा जा रहा था, ताकि उसे दिल्ली ले जाया जा सके। इसे देखकर वे नत-मस्तक हो गये, जैसे अपनी आत्मा को बिदा कर रहे हों।

वाराणसी से वे फिर जौनपुर आये, क्योंकि वहाँ स्वयंसेवकों का कार्यक्रम चल रहा था। रास्ते में उन्होंने किसी से कुछ भी न कहा। उनके मुख से कोई बात न निकली। ऐसा कहा जाता है कि वाराणसी में जब उन्होंने लोगों को रोते हुए देखा तो ये शब्द उनके अधरों से फूट पड़े— मैं तो पाषाण हृदय हूं। मेरी आँखों में आँसू भी तो नहीं हैं।

परन्तु जौनपुर जाकर उन्होंने अपने हृदय की बात कह ही तो दी– मैं काशी गया था दीनदयालजी के शरीर को देखने के लिए। विमान के द्वारा मृतक शरीर को दिल्ली ले जाया जा रहा था। उसे बिदा करने के बाद यहाँ आया हूं। परन्तु मैंने आँसू नहीं बहाये। पता नहीं, लोगों ने मेरे विषय में क्या समझा होगा। हमारे प्राचीन ग्रन्थों में ऐसे शब्द आये हैं कि जो कार्यार्थी है, वह दुःख और सुख, दोनों को सहन करते हुए काम करता है। इस समय मेरे मन की अवस्था कुछ वैसी ही हो गयी है। मैं सुख-दुःख, इन दोनों से बचकर चलने के लिए प्रस्तुत हुआ हूं। परन्तु इस आघात को तो सहन करना ही पड़ेगा। इतना बोलने के लिए भी मुझे अपने मन को नियन्त्रण में रखने के वास्ते बहुत परिश्रम करना पड़ रहा है। ईश्वर की कृपा से ही मन को काबू में रख सका हूं। परन्तु इसका परिणाम शरीर की थकावट के रूप में बहुत अधिक हुआ है। मैं अपने समक्ष मर्मभेदी दृश्य देखकर आया हूं, इसलिए सोचा कि इसका उल्लेख कर दूं।

: १८ :

वचन का पालन

(एक)

अपना वचन निभाया

धर्मवीर डा० बालकृष्ण शिवरामजी मुंजे के प्रति श्री गुरुजी के मन में नितान्त आदर-भावना थी। वैसे स्वर्गीय डा० मुंजे का राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के साथ अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। डा० मुंजे ने 'भोंसला सैनिक विद्यालय' की स्थापना की थी। डा० हेडगेवारजी इस विद्यालय की कार्यकारिणी के सदस्य रहे और उनके परामर्श से ही उक्त विद्यालय की योजना का प्रारूप बना था। डा० हेडगेवारजी के निधन के पश्चात् डा० मुंजे की बड़ी इच्छा थी कि श्री गुरुजी कार्यकारिणी के सदस्य बन जायें, परन्तु श्री गुरुजी ने उनसे कहा— श्री घटाटेजी कार्यकारिणी में हैं ही, अत: उसमें मेरा ही अस्तित्व माना जाये।

आगे चलकर डा० मुंजे ने यह इच्छा व्यक्त की कि स्वयं श्री गुरुजी भोंसला सैनिक विद्यालय का भार सँभाल लें। इस पर श्री गुरुजी ने उनसे कहा—'आप जब तक हैं, तब तक उसका भार सँभालने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता है और मैं आश्वासन देता हूं कि संस्था के भविष्य के विषय में आप निश्चिन्त रहें, हम लोग संस्था के प्रति अपनी जिम्मेदारी कदापि नहीं भूलेंगे।'

दिनांक ३ मार्च १९४८ को डा० मुंजे की अचानक मृत्यु हो गयी। उस समय श्री गुरुजी और मैं, दोनों ही कारागार में थे। गाँधी-हत्या के सिलसिले में हम लोगों को बन्दी बनाया गया था, यह तो सर्वविदित है ही। डा० मुंजे के अन्तिम दिनों में हम दोनों में से किसी की भी उनके साथ भेंट नहीं हो सकी थी, अतः हमें यह ज्ञात नहीं हो सका कि सैनिक विद्यालय के सम्बन्ध में उनकी अन्तिम इच्छाएँ क्या थीं।

कारागार से मुक्त होते ही श्री गुरुजी ने विद्यालय की ओर अधिक ध्यान देने के लिए मुझसे कहा। अधिक ध्यान देने के हेतु की ओर संकेत करते हुए श्री गुरुजी ने कहा— अपने देश में युवकों को सैनिक शिक्षा की नितान्त आवश्यकता है। अतः हम लोगों का कर्तव्य है कि हम यह विद्यालय उत्तम रीति से चलायें। डा० मुंजे की महानता इस बात में थी कि उन्होंने पर-तन्त्रता के दिनों में भी हिन्दू-युवकों में क्षत्रिय-वृत्ति को जाग्रत् करने का प्रयत्न किया तथा इसके लिए सम्पूर्ण देश का भ्रमण किया। उनके विद्या-लय में सभी प्रान्तों के हिन्दू-युवक शिक्षा ग्रहण करने के लिए आया करते थे। हिन्दू समाज की एकात्मता का दृश्य वहाँ देखने को मिलता है। उन्होंने धनिकों को और राजा-महाराजाओं को इस कार्य के निमित्त धन देने के लिए प्रेरित किया और इस विद्यालय को स्वावलम्बी बनाया। यद्यपि यह विद्या-लय छोटा है,फिर भी हिन्दू-युवकों में क्षत्रिय-वृत्ति को जाग्रत् करने की दिशा में वह एक महान् प्रयत्न है। इस विद्यालय में शिक्षा प्राप्त किये हुए अनेक युवक सेना में उच्च पदों पर कार्य कर रहे हैं तथा देश-रक्षा के कार्यों में उन्होंने अद्भुत पराक्रम दिखलाया है। अतः हम लोगों का कर्तव्य है कि विद्यालय के सुचारु रूप से संचालन के लिए इसकी ओर हम ध्यान दें।

डा० मुंजे के निधन के बाद भोंसला सैनिक विद्यालय की स्थिति शोच-नीय हो गयी। यह देखकर श्री गुरुजी का हृदय व्यथित हो उठा। श्री गुरुजी ने मुझसे कहा– विद्यालय की उन्नति के लिये प्रयत्न आवश्यक हैं। इसकी उन्नति के लिए आप उन सभी लोगों से मिलें, जिनके हृदय में डा० मुंजे के प्रति सद्भाव है तथा विद्यालय के प्रति जनता के मन में सहानुभूति जगाने के लिए आप देश का व्यापक दौरा करें।

श्री गुरुजी की इच्छानुसार मैंने राजस्थान मध्यभारत मध्यप्रदेश उत्तर-प्रदेश बिहार दिल्ली हैदराबाद आदि प्रदेशों का प्रवास किया। मैंने लोगों को बताया कि हमें पैसा नहीं चाहिये, हमें विद्यार्थी चाहिये। सब स्थानों पर प्रतिष्ठित नागरिकों से मेरी भेंट हो सके, इसकी सारी व्यवस्था श्री गुरुजी ने

की । श्री गुरुजी ने सभी सम्बन्धित स्थानों पर पहले से ही सूचना भिजवा दी थी । इससे मेरा प्रवास पूर्णरूप से सफल रहा । श्री गुरुजी ने डा० मुंजे को जो आश्वासन दिया था, उसकी स्मृति उन्हें भलीभाँति थी । संघ-कार्य की सम्पूर्ण जिम्मेदारी को वहन करते हुए भी उन्होंने भोंसला सैनिक विद्यालय की ओर ध्यान देकर अपना वचन निभाया ।

(दो)

शंकराचार्य-पद का प्रस्ताव

श्री जगन्नाथपुरी पीठ के जगद्‌गुरु श्री शंकराचार्यजी महाराज का देहान्त हो चुका था । एक लम्बी अवधि से यह स्थान रिक्त पड़ा था । श्री द्वारिकापुरी पीठ के जगद्‌गुरु श्री शंकराचार्यजी महाराज ने श्री गुरुजी को सूचना दी— मेरी इच्छा है कि इस पद को आप सुशोभित करें ।

यह संदेश पाते ही श्री गुरुजी दौड़े-दौड़े गुजरात गये । वहाँ जगद्‌गुरु श्री शंकराचार्य जी महाराज से भेंट की तथा निवेदन किया— आदेश देने के पूर्व आप मेरी एक विनती सुन लीजिए । कहीं ऐसा न हो जाये कि आदेश के उल्लंघन करने का कलंक मेरे माथे पर लग जाये ।

जगद्‌गुरु श्री शंकराचार्यजी महाराज ने कहा— आप अपनी बात अवश्य कहें ।

श्री गुरुजी ने निवेदन किया—मैं अपने इस जीवन को एक कार्य संघ-कार्य के लिए समर्पित कर चुका हूं । एतदर्थ डा० हेडगेवार को मैंने वचन दिया है । यह बात सारा राष्ट्र जानता है और इस संघ-कार्य का महत्व आप भी बहुत अच्छी प्रकार से समझते हैं । अतः मेरी विनती है कि मुझे क्षमा किया जाये तथा संघ-कार्य ही करने के लिये छोड़ दिया जाये ।

श्रा गुरुजी की विनती स्वीकृत हो गयी । तब जयपुर के संस्कृत कालेज के प्राचार्य श्री चन्द्रशेखरजी शास्त्री से बात करना तय हुआ । मैं नागपुर में था । मुझे आदेश हुआ कि मैं उनकी (अर्थात् श्री गुरुजी की) और प्राचार्यजी की भेंट की व्यवस्था करूँ । श्री गुरुजी जयपुर पधारे । डा० श्री हरिकृष्णजी जावा के घर पर भेंट हुई । लगभग एक घण्टा वार्ता चली ।

श्री गुरुजी ने निवेदन किया— द्वारिका पीठाधीश्वर जगद्गुरु श्री शंकराचार्य जी महाराज से यह जानकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई कि उन्होंने आपको श्री जगन्नाथपुरी के पीठ के श्री शंकराचार्य-पद को सुशोभित करने के लिये चुना है। इसी कारण मैं यहाँ तक चलकर आया हूं । आपका उज्ज्वल चरित्र प्रकाण्ड विद्वत्ता प्रखर बुद्धिमत्ता, ये सब निःसन्देह बहुत श्रेष्ठकोटि के हैं। बस, मेरी एक छोटी–सी विनती यह है कि इस पद के लिये कुछ तपस्या भी चाहिये। आप केवल दो मास के लिए कहीं हिमालय में जाकर तप और कर आयें तो सोने में सुहागा हो जायेगा।

श्री गुरुजी कितने सूक्ष्मदर्शी थे इस तथ्य का परिचायक है यह बातचीत।

: १९ :

सजगता

(एक)

गलती मैं करता यदि---

कैंसर का आपरेशन होने के बाद सन् १९७१ में श्री गुरुजी प्रथम बार लखनऊ पधारे। संघ-कार्यकर्ताओं के एक शिविर के पश्चात् उनके अभिनन्दनार्थ नागरिकों का एक विशाल कार्यक्रम आयोजित किया गया था। बैरिस्टर बनर्जी की अध्यक्षता में एक स्वागत समिति बनी थी। पं० श्री घनानन्दजी पाण्डे उसके उपाध्यक्ष थे। लखनऊ के एक प्रसिद्ध उद्योगपति श्री विद्यासागरजी स्वागत-समिति के मन्त्री थे। केसरबाग बारादरी की बगल में रामपाल सिंह पार्क में कार्यक्रम को सम्पन्न करने की आयोजना थी। आमन्त्रित सज्जनों से पण्डाल पटा पड़ा था। लोग बाहर भी खड़े थे। १५ मिनट पूर्व स्थान ग्रहण करने के लिये आमन्त्रितों से अनुरोध किया गया था, परन्तु निश्चित समय से आधा घण्टा पूर्व ही सब आ चुके थे। श्री गुरुजी के आने का समय अब एकदम समीप था, लेकिन स्वागत समिति के मन्त्री श्री विद्यासागर जी नदारद। हम लोगों की बेचैनी बढ़ने लगी। उन्हें ही प्रारम्भिक भाषण एवं परिचय कराने का कार्यक्रम सम्पन्न कराना था। कार्यक्रम के संचालन की रूप-रेखा भी उन्हीं के पास थी।

इसी बीच समाचार आया कि उनके घर पर कोई आकस्मिक घटना घटित हो गयी है, अतः वे समय पर नहीं आ सकेंगे। अब सोचने का समय नहीं था। उक्त समाचार और गुरुजी, दोनों साथ-साथ ही आये थे। जब तक श्री गुरुजी मंच पर विराजमान हुए, गीतादि हुआ। भाषण आरम्भ होने के पूर्व श्री गुरुजी का परिचय कराने का कार्यक्रम भी सुन्दर रीति से सफल न हुआ तो अच्छी बात नहीं रहेगी, अतः नगर-कार्यवाह होने के नाते यह दायित्व मुझे ही वहन करना पड़ा। पीछे मंच पर थे पूज्य श्री गुरुजी, प्रान्त-संघचालक बैरिस्टर नरेन्द्रजीत सिंह जी, बैरिस्टर बनर्जी एवं श्री घनानन्द जी पाण्डे—सामने अपार जन-समूह के अतिरिक्त प्रथम पंक्ति में संघ के ऐसे वरिष्ठ अधिकारी विराजमान थे कि जिनके सामने बोलना तो दूर रहा, मुँह खोलने का भी साहस नहीं होता, परन्तु फिर भी परिचय तो कराना ही था। मन-ही-मन ईश्वर का नाम लेकर मैं दस मिनट तक न जाने क्या-क्या बोलता रहा। बोलने के क्रम में मैं यह भी कह गया कि अब हम अपने महान् नेता द्वारा मार्ग-दर्शन प्राप्त करें।

फिर क्या था ? श्री गुरुजी बोलने के लिये खड़े हुए। उन्होंने कहा—आप लोगों ने अभी सुना कि एक 'महान् नेता' आप लोगों को मार्ग-दर्शन करायेंगे। यह सुनकर मैं अपने आस-पास और आमने-सामने चारों ओर देखने लगा कि वह 'महान नेता' कहाँ हैं कि जिसके द्वारा मार्ग-दर्शन मिलेगा। लेकिन कहीं कोई दिखायी नहीं दिया। महान क्या, कोई छोटा नेता भी नहीं दिखा। यदि यह मेरे बारे में कहा गया था, तब तो मैं नेता होना तो दूर की वात है, एक छोटा कार्यकर्ता भी नहीं हूं। मातृभूमि की सेवा में लगा हूं। जो वन पड़ता है, करता हूं। नेता होने की क्षमता मुझमें कहाँ है ?

यह मार्गदर्शन हमारे लिये अचूक एवं शिक्षाप्रद था। नेता होने की अपेक्षा देश का सेवक होना अधिक पवित्र उदात्त एवं महत्वपूर्ण है। मुझे अपनी गलती समझ में आ चुकी थी। मुझे ऐसा लगा कि श्री गुरुजी नाराज हो गये हैं। अतः लखनऊ से प्रस्थान करने के पूर्व संध्या के बाद सीधे उनके पास पहुंच कर मैं बोला—गुरुजी ! आज बहुत बड़ी गलती हो गयी मुझसे। मैंने असावधानीवश आपके कार्यक्रम में आपके लिये 'नेता' शब्द का प्रयोग कर दिया। मैं शायद अपना स्वयंसेवकत्व भूल गया था।

वे एकदम अट्टहास कर उठे। फिर कहने लगे—ऐसा ही होता है। मैंने ऐसा सुना कि अचानक ही तुम्हें परिचय कराने के लिये खड़ा हो जाना पड़ा था। मन्त्री महोदय किसी कारणवशात् आ नहीं पाये थे।

मैंने कहा—हाँ। इसके बाद मैंने श्री गुरुजी को उनके नहीं आने का कारण बताया।

तब श्री गुरुजी बोले—तुम्ही नहीं, उस समय तुम्हारे स्थान पर जो कोई भी होता, वह भी ऐसे ही किसी शब्द का प्रयोग अवश्य करता। वह जनता द्वारा आयोजित सार्वजनिक कार्यक्रम था न। स्वागत समिति की ओर से जो कुछ कहा जायेगा, उसे मानना ही पड़ेगा। जनता के कार्यक्रम में संघ के सरसंघचालक गये थे। जन-बोली में जो कुछ चलता है, वहाँ भी वही चला लेकिन अपना काम ऐसे नाटकों के समय उसमें खो जाना नहीं है, बल्कि उस समय भी अपने स्वयंसेवकत्व का स्मरण बनाये रखना है। इससे मन में विकार, अहं अथवा दम्भ उत्पन्न नहीं होता। जाओ, प्रसन्न रहो। तुमने कोई गलती नहीं की। गलती मैं करता यदि अपना स्वयंसेवकत्व भूल जाता।

मैं चला आया। लेकिन आज तक मुझे अपना स्वयंसेवकत्व विस्मृत करने का क्लेश बना हुआ है और तभी से प्रभु से प्रार्थना करता रहता हूं कि हे सर्वशक्तिमान ! जीवन में कोई ऐसा दुर्भाग्यपूर्ण क्षरण न आये, जब स्वयंसेवकत्व विस्मृत हो जाये। श्री गुरुजी द्वारा प्राप्त यह मार्ग-दर्शन कितना अनमोल, निस्पृह और दम्भ-शून्य है तथा समाज-सेवा की प्रेरणा देनेवाला है।

●

(दो)

सदैव सजग मस्तिष्क

एक बार उनके साथ प्रवास करते समय मैं उन्हें छिन्दवाड़ा के एक अध्यापक के एक अनुसंधान के बारे में बता रहा था। अनुसन्धानकर्ता का कथन था कि हमारे यहाँ के द्वादश ज्योतिर्लिंग वर्षा आकर्षित करने वाले केन्द्र थे और उन पर होने वाली पूजा-अर्चा-यज्ञ-हवन-आदि का बादलों के बढ़ने व वर्षा के उचित वितरण पर प्रभाव पड़ता था। उस अध्यापक ने पंचमढ़ी में राष्ट्रपति श्री राजेन्द्र बाबू के समक्ष अपनी योजना प्रस्तुत करके यह माँग की थी कि वर्षा ऋतु के पूर्व पन्द्रह दिनों के लिये द्वादश ज्योतिर्लिंगों के स्थान पर वैदिक पद्धति से यज्ञ-हवनादि करवाये जायें और वर्षा पर उनके प्रभाव का अध्ययन किया जाये। प्रतिदिन प्रत्येक केन्द्र पर

रु. २००/०० के हिसाब से कुल खर्च ३६ हजार आयेगा। यदि सुपरिणाम निकले तो यह बहुत बड़ी उपलब्धि होगी।

वर्णन करते समय मैं १५ दिन के स्थान पर २ मास बोल गया। किन्तु जैसे ही मैंने रु. २००/०० प्रतिदिन के हिसाब से ३६ हजार की बात कही कि तत्काल श्री गुरुजी ने बताया कि ३६ हजार से बहुत अधिक आयेगा मैं चकित हुआ और जब हिसाब लगाया तब ध्यान में आया कि योजना दो मास की नहीं, केवल १५ दिन की थी। जब यह बात मैंने श्री गुरुजी को बतायी, तब उन्होंने कहा कि हाँ, १५ दिन के हिसाब से ३६ हजार ठीक हैं।

श्री गुरुजी की इस सजगता के कारण किसी भी बात को अधूरे या गलत ढंग से बताना सम्भव ही नहीं था। श्री गुरुजी का मस्तिष्क सदैव सजग रहता था। किसी भी बात को वे न केवल पूरी तन्मयता से सुनते थे प्रत्युत उसमें की त्रुटि की ओर भी तत्काल इंगित कर दिया करते थे।

: १० :

भविष्य के गर्भ में

(एक)

और वे चेतावनियाँ

श्री गुरुजी की यह विशेषता रही है कि जिस व्यक्ति से सम्बन्ध नहीं भी आया हो, उस व्यक्ति के व्यक्तित्व को और उसके उद्देश्य को अपनी अति तीक्ष्ण बुद्धि के कारण समझ-बूझ लेते थे। अवश्य ही यह उनकी अपनी विशेषता थी और मेरी ऐसी धारणा है कि यह उनकी अतीन्द्रिय शक्ति का परिचायक है।

सन् १९५३ ई० की एक घटना है। भारतीय-जनसंघ ने एक निर्णय लिया कि भारतीय संविधान से ३७० वीं धारा हटवाने के लिए तथा जम्मू-कश्मीर को अन्य राज्यों के समान दर्जा दिलवाने के लिए सत्याग्रह किया जाये। यह सत्याग्रह श्रीनगर में होने वाला था। जब श्री गुरुजी बैठक ले रहे थे, तब किसी ने यह बात कही। इस बात को सुनते ही अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए श्री गुरुजी ने तुरन्त कहा– 'वाघाच्या गुहेत जाण्या सारखा अविचार होईल।' (अर्थात् यह तो शेर की गुफा में प्रवेश करने जैसा अविचारपूर्ण कार्य होगा।)

श्री गुरुजी के ये शब्द आज भी मेरे मन में गूंज रहे हैं। इसके बाद जब श्री गुरुजी को यह समाचार मिला कि डा० श्री

श्यामाप्रसादजी मुखर्जी सत्याग्रह करने के लिए श्रीनगर जा रहे हैं, तब श्री गुरुजी ने उनके पास वहाँ न जाने के लिए सन्देश भेजा। परन्तु श्री गुरुजी के सन्देश के प्राप्त होने के पूर्व ही डा० श्री श्यामाप्रसादजी श्रीनगर के लिए प्रस्थान कर चुके थे। श्री गुरुजी को जो भय था, वही घटित हो गया और उस सत्याग्रह में डा० श्री श्यामाप्रसादजी के जीवन की बलि चढ़ गयी।

यही बात ज्यों-की-त्यों घटित हुई श्री शास्त्रीजी के साथ। भारत-पाकिस्तान-युद्ध की समाप्ति के बाद ताशकन्द में बैठक होने वाली थी और अपने प्रधानमन्त्री श्री लालबहादुरजी शास्त्री उस बैठक में भाग लेने के लिए जाने वाले थे। श्री गुरुजी ने पत्र लिख कर श्री शास्त्रीजी से अनुरोध किया था कि आप ताशकन्द न जायें, यह इसलिए कि शुभ लक्षण दिखलायी नहीं दे रहे हैं। किन्तु परिस्थितियों से विवश होकर श्री शास्त्रीजी को ताशकन्द जाना पड़ा और श्री शास्त्रीजी के ताशकन्द जाने का क्या परिणाम निकला, यह सर्वविदित है।

(दो)

भविष्यदर्शी

सन् १९६२ में राजस्थान के प्रवास पर जब श्री गुरुजी आये तो चित्तौड़ में भी उनका सार्वजनिक कार्यक्रम था। अपने भाषण में श्री गुरुजी ने यह रहस्योद्घाटन किया—'मेरे पास पक्की जानकारी है कि चीन भारत पर आक्रमण करने वाला है। हमारे देश के नेता तो 'हिन्दी-चीनी भाई-भाई' के नारे लगा रहे हैं और दिल्ली के लालकिले में चीन के प्रधानमन्त्री का स्वागत कर रहे हैं, पर चीन आक्रमण करेगा।'

दो दिन बाद यही बात उन्होंने अलवर के भाषण में भी दोहरायीं। दोनों जगह ही श्री गुरुजी के भाषण की तीव्र प्रतिक्रिया हुई। तथाकथित बुद्धिजीवी वर्ग ने कहा— यह कैसा गैरजिम्मेवार नेता है? कैसी झूठी बातें बोलता है? यह अवश्य पागल है। जो बात सरकार भी नहीं जानती, देश के नेता नहीं जानते, उसे यह कैसे बोलता है? इसे कहाँ से पता चल गया? यह सर्वथा अविश्वसनीय बात है।

और दैवयोग से अगले ही दिन आकाशवाणी ने देश को यह समाचार देकर स्तम्भित कर दिया कि चीन की सेनाओं ने भारत पर आक्रमण कर दिया है। श्री गुरुजी दिल्ली पहुंच चुके थे। दिल्ली के नेताओं में घबराहट और परेशानी थी। अनेकों नेता लाला श्री हंसराज जी की कोठी पर श्री गुरुजी से मिलने के लिए आये। सब सर्वप्रथम एक ही बात पूछते थे– आपको कैसे पता लगा कि चीन का आक्रमण होगा ?

श्री गुरुजी ने कहा– जो कोई ईमानदारी से देखना चाहेगा, उसको तो सब कुछ दिखलायी दे सकता है। मेरी आँखों पर राजनीति का या सत्ता का चश्मा तो चढ़ा नहीं है, इसलिए मुझे दिखलायी देता है। दिखता तो देश के नेताओं को भी है, पर राजनीतिवश बोलते नहीं हैं। उनको यही चिन्ता खाती रहती है कि उन्होंने जो ऊँचे-ऊँचे सिद्धान्त बोले हैं, उनका क्या होगा?

सभी चुप थे। और चार दिन बाद देश के एक नेता ने स्पष्ट ही स्वीकार कर लिया कि हमको तो पता था कि चीन की छेड़छाड़ कई वर्षों से चल रही है, पर हमने देश को बताया नहीं।

(तीन)

चीन के बारे में चेतावनी

ऊपर से देखने पर श्री गुरुजी साधु-संन्यासी की तरह लगते थे, अतः लोगों की ऐसी कुछ-कुछ धारणा थी कि श्री गुरुजी राजनीति के बारे में उदासीन हैं और वे राजनीति के बारे में कुछ जानते नहीं। लेकिन वस्तुतः ऐसा था नहीं। राजनीति से अलिप्त होते हुए भी राजनीति के बारे में उनका गहन अध्ययन था। राजनैतिक गतिविधियों का निरीक्षण वे बहुत सूक्ष्मता से करते थे।

मुझे जहाँ तक स्मरण है, यह बात सन् १९५१ की है, तब तिब्बत पर चीन का आक्रमण हो चुका था तथा उसके पाँव आगे फैलने के लिए उद्यत हो रहे थे। उस समय श्री गुरुजी ने एक वक्तव्य देकर चीन के विस्तारवाद के बारे में सरकार का ध्यान आकृष्ट करते हुए चेतावनी दी थी कि 'चीन की इस चाल को समझकर भारत को इसे आगे बढ़ने से रोकने के लिये कदम

उठाना चाहिए।' इसके साथ ही उन्होंने स्पष्ट रूप से रूस को भी कहा था कि 'चीनी विस्तारवाद को अन्ततः रूस को भी रोकना होगा, नहीं तो आगे चलकर उसको भी पछताना पड़ेगा।' ये वे दिन थे, जब चीन को रूस का पिछलग्गू राष्ट्र माना जाता था।

उस वक्तव्य से सभी को आश्चर्य होना स्वाभाविक ही था कि श्री गुरुजी ने रूस को ऐसी चेतावनी क्यों दी? लेकिन आगे चलकर जब चीन और रूस के बीच सीमा को लेकर विवाद खड़ा हुआ तो श्री गुरुजी का वह दूर-दर्शितापूर्ण वक्तव्य समय की कसौटी पर खरा उतरा, जिसमें उन्होंने रूस को भी अगाह किया था।

(चार)

चुनाव-फल के बारे में अनुमान

एक घटना सन् १९६७ की है। तब मैं लोकसभा के चुनाव के लिए भोपाल क्षेत्र से उम्मीदवार था। उन्हीं दिनों रायपुर का प्रवास पूरा करके लौटते समय मैं थोड़ी देर के लिए नागपुर रुका था। उस समय श्री गुरुजी से भेंट हो गयी। उन्होंने मुझे देखकर सहजभाव से पूछा— कहिये, आपका चुनाव-आन्दोलन कैसा चल रहा है?

मैंने सहज ही उत्तर दिया— बाकी सब ठीक है, किन्तु हिन्दू महासभा के एक नेता उस क्षेत्र में खड़े हैं। वे जो वोट काटेंगे, वे अपने ही होंगे। अपने कार्यकर्ताओं के अनुमान से वे पच्चीस-तीस हजार के लगभग वोट काटेंगे।

इस पर श्री गुरुजी ने कहा— अरे, इतने कहाँ से मिलेंगे? ज्यादा-से-ज्यादा लिये तो पांच-छः हजार ले लेंगे।

चुनाव का नतीजा निकला। उन महानुभाव को लगभग छः हजार ही वोट मिले थे। यह देखकर मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। राजनीति में किसी प्रकार की रुचि वे नहीं लेते थे। चुनाव-राजनीति से तो वे कोसों दूर रहते थे, फिर भी कार्यक्षेत्र में प्रत्यक्ष-कार्य-रत कार्यकर्ताओं की अपेक्षा उनका अनुमान कितना अधिक सही था?

: ११ :

अटूट आत्म विश्वास

(एक)

पुनः प्रारम्भ करूंगा

सन् १९४४ के दिसम्बर मास में नागपुर में प्रमुख कार्यकर्ताओं की एक बैठक बुलायी गयी थी, जो कई घंटों तक चली। उसमें सभी कार्यकर्ताओं ने श्री गुरुजी की उपस्थिति में दिल खोलकर अपने-अपने विचार रखे। उन दिनों तत्कालीन परिस्थिति के कारण कार्यकर्ताओं के दिल में तरह-तरह के संदेह उत्पन्न हो रहे थे। उस बैठक में श्री गुरुजी की भूमिका केवल श्रोता के रूप में थी। तरह-तरह के सुझाव आये। उस निःसंकोच वायुमण्डल में कुछ लोगों ने अपने विचार बहुत आवेश में आकर प्रकट किये। अन्त में एक ने कहा—मेरे सुझाव के अनुसार संघ की कार्य पद्धति में यदि अमूल परिवर्तन नहीं हुआ तो अब तक खड़ा किया हुआ सारा काम टूट जायेगा।

इस चर्चा का समारोप श्री गुरुजी को अगले सप्ताह करना था। नागपुर-संघ के माननीय बाबासाहेब घटाटे के निवास-स्थान पर सभी कार्यकर्ता एक कमरे में पंक्तिबद्ध बैठ गये। उन सबके सामने श्री गुरुजी एक छोटे से आसन पर जमीन पर बैठे थे। पिछले सप्ताह की चर्चा में उपस्थित किये गये विभिन्न विचारों का वे विमर्श कर रहे थे। होते-होते उनका प्रतिपादन-

प्रवाह उस मुद्दे पर आया, जिसका निवेदन सबसे अधिक आग्रहपूर्वक किया गया था।

उस बात का उल्लेख करते हुए श्री गुरुजी ने कहा—अपने इस कार्यकर्ता के कथनानुसार यदि हमने अपनी कार्यपद्धति में परिवर्तन नहीं किया तो संघ का सम्पूर्ण ढाँचा टूट जायेगा।

यह कहते हुए वे एकदम गम्भीर हो गये। उनकी दृष्टि सामने की दीवार को भेदकर दूर क्षितिज की ओर लगी हो, ऐसा प्रतीत हो रहा था। लगता था, जैसे वे भूल गये हैं कि उनके सामने कुछ लोग बैठे हैं। बाह्य वातावरण को पूर्णरूपेण से भूल कर वे आत्मचिन्तन में कुछ क्षण मग्न हो गये और उसी अवस्था में अपने को ही सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा—Well, if every thing crumbles down, I will begin from the beginning (अच्छा, यदि सब चीजे समाप्त हो जायेंगी, तब मैं पुनः नये सिरे से उन्हें प्रारम्भ करूँगा)।

(दो)

सुदृढ़ व्यक्तित्व : ठोस कार्य : अडिग विश्वास

मुस्लिम-तुष्टिकरण की जिद का कुपरिणाम, संगठन के क्षेत्र में अपनी असफलता से पैदा हुआ मत्सर, सत्ता के कारण आँखों में छाया हुआ नशा, अपने दल में न आने वाले सभी व्यक्तियों को राष्ट्रद्रोही मानने की भावना आदि से सत्तारूढ़ काँग्रेसी दल का मन परेशान रहने लगा। यह परेशानी और भी बढ़ गयी संघ की बढ़ती हुई शक्ति और प्रभाव को देखकर। अपने स्वार्थ की सिद्धि में संघ केवल बाधक ही नहीं, घातक भी हो सकता है, अतः परेशान लोगों द्वारा संघ के विरुद्ध अप-प्रचार किया जाने लगा। उस परेशानी को देखकर दिल्ली की एक सभा में श्री गुरुजी ने कहा—आज की स्थिति देखकर मुझे कवि तुलसीदास जी का एक कथन याद आता है। उन्होंने कहा है कि एक मूर्ख कुत्ता सूखी हड्डी चूस रहा था। सिंह को देखकर वह मूर्ख कुत्ता अपनी सूखी हड्डी लेकर भागा। उस कुत्ते ने यही समझा कि यह सिंह कहीं सूखी हड्डी को छीन न ले।

पाकिस्तान ने पश्चिमी पंजाब में तथा अन्य स्थानों पर जो अभूतपूर्व अमानवतापूर्ण अत्याचार हिन्दुओं पर किये थे, उनके विवरण जब योरप तथा अमेरिका के समाचार पत्रों में छपने लगे तब अपने पापों को छिपाने के लिये पाकिस्तानी सरकार ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के विरुद्ध एक पुस्तिका हजारों की संख्या में छपवायी तथा संयुक्त राष्ट्र में बँटवायी। संघ पर पाकिस्तान ने ऐसे कपोल-कल्पित एवं निराधार आरोप लगाये कि उन्हें पढ़कर साधारण मनुष्य को भी हँसी आ जाती। नेहरू सरकार ने उस पुस्तिका का मुंह-तोड़ उत्तर देने के बजाय संघ को ही दण्ड देने का निश्चय किया।

अब भाषणों तथा समाचार पत्रों द्वारा संघ को साम्प्रदायिक, प्रतिक्रियावादी, फासिस्ट आदि कहकर बदनाम किया जाने लगा, किन्तु श्री गुरुजी ने इसकी तनिक भी परवाह नहीं की और संघ-कार्य बढ़ता ही चला गया। ३० जनवरी १९४८ के समाचार पत्र में पं० नेहरू का अमृतसर में दिया हुआ भाषण छपा, जिसमें कहा गया था—हम संघ को उखाड़ कर ही रहेंगे।

इस दिन श्री गुरुजी मद्रास में थे। मद्रास के मुत्तइया चेट्टियार विद्यालय में कार्यकर्ताओं का एक कार्यक्रम हो रहा था। इस कार्यक्रम में कार्यकर्ताओं के समक्ष श्री गुरुजी ने कहा—संघ ऐसी धमकियों से डरने वाला नहीं है। संघ के सामने कितने ही संकट लाये जायें, हम उन्हें दूर कर देंगे। यह कार्य किसी की कृपा के बल पर नहीं बढ़ा है, जो दूसरों के आँख दिखाने से नष्ट हो जायेगा। यह कार्य कागजी प्रस्ताओं के सहारे भी नहीं बना है, अतः यह किसी कागजी प्रस्ताव या कागजी आदेश से नष्ट भी नहीं हो सकता।

इस विरोध में ही तो श्री गुरुजी के आत्म-विश्वास की गहराई की कुछ झलक मिल पाती थी। जितना-जितना बढ़ता जाता यत्र-तत्र विरोध, उतना -उतना उभरकर सामने आता था उनका आत्म विश्वास और उतनी-उतनी प्रखर होती जाती थी उनकी ओजस्विनी वाणी। ये प्रसंग ही सिद्ध करते हैं कि श्री गुरुजी का व्यक्तित्व कितना सुदृढ़ था, उनका कार्य कितना ठोस था और उनका विश्वास कितना अडिग था।

(तीन)

कुपित कार्यकर्ताओं के बीच

भारतीय गणतन्त्र राज्य का प्रथम निर्वाचन सन् १९५१-५२ में सम्पन्न हो चुका था। सारे देश में, सत्ता में काँग्रेस आ गयी थी। चुनाव के पूर्व पंजाब की हवा कुछ और थी। पंजाब का वातावरण देखते हुए ऐसा लगता था कि जनसंघ अवश्य वहाँ सत्ता में आयेगा। और कहीं अन्यत्र सफलता मिले अथवा न मिले, परन्तु जनसंघ वालों को यह विश्वास था कि वे वहाँ सरकार अवश्य बनायेंगे। सन् १९४७ में देश के विभाजन के समय जिस प्रकार के पराक्रम-शौर्य-समाजसेवा-आदि के अनुपम कार्य स्वयंसेवकों ने किये थे, उसके कारण उनकी सर्वत्र प्रशंसा हो रही थी। इस कारण संघ स्वयंसेवकों के मन का भी ऐसा भाव था कि पंजाब में काँग्रेस हारेगी और जनसंघ मन्त्रिमण्डल बनायेगा।

चुनाव हुआ और फल यह निकला कि जनसंघ को एक भी स्थान नहीं मिला। शत-प्रतिशत हार हुई। संघ-स्वयंसेवकों को ऐसा लगा कि यह संघ की हार हो गयी। बस, फिर क्या था? घोर निराशा छा गयी। ऐसी निराशा, मानो सबकी हिम्मत टूट गयी हो। बुद्धि का सन्तुलन भी चला गया और बड़ा विचित्र वायुमण्डल बन गया।

श्री गुरुजी को इसकी सूचना दी गयी। वे पंजाब प्रान्त में आये। लुधियाना में प्रान्त के प्रमुख-प्रमुख कार्यकर्ता बुलाये गये। बैठक शुरू हो गयी। बैठक में उपस्थित सभी कार्यकर्ताओं के समक्ष श्री गुरुजी ने कहा—मैंने सुना है कि आपको मुझसे बहुत कुछ कहना है। मैं आपके सामने बैठा हूं। आप लोग अपनी बात कहिये।

लोगों ने बोलना आरम्भ किया। क्रमशः स्वर उग्र होता चला गया। कई लोग तो बड़े असंतुलित होकर बोले। एक के बाद एक कार्यकर्ता लोग तेज स्वर में बोलते चले गये। श्री गुरुजी आँखें बन्द किये दो घण्टे तक सुनते रहे। हम कुछ प्रमुख लोग बड़े दुखी हो रहे थे और मन-ही-मन घबरा रहे थे कि अब क्या होगा? क्षुब्ध वातावरण की गरमाहट से हम सबका मन बड़ा आन्दोलित हो रहा था।

दो घण्टा बीत जाने पर जब कोई नहीं बोला तो श्री गुरुजी ने आँखें खोलीं और कहा—मैंने सब 'गपोड़बाजी' सुन ली है। सब लोग निकरें पहनो और शाखा पर जाकर कबड्डी खेलो।

इतना कहकर श्री गुरुजी अपने कमरे में चले गये। कार्यकर्ता लोग और भी भड़क गये। आपस में खूब बोलते रहे। शाखा से कबड्डी खेलकर लौटे तो श्री गुरुजी का भाषण हुआ। अपने भाषण के आरम्भ में श्री गुरुजी ने पहले दो बातें कहीं—आज मेरे जीवन का सबसे भाग्यशाली दिन है। मेरा यह विश्वास पक्का हो गया है कि संघ के कार्यकर्ता अन्ध-विश्वासी नहीं हैं, स्वतन्त्र चिन्तक हैं। दूसरी प्रसन्नता मुझे यह है कि किसी ने भी पागल होकर आत्म-हत्या नहीं की।

इसके बाद श्री गुरुजी ने कहा—'जिस समाज को अपना आत्म-गौरव विस्मृत हो चुका है, जिस समाज की कान्ति पर मलिनता की कई परतें पड़ गयी हैं, जिस समाज का स्वाभिमानी जीवन शव-तुल्य हो गया है, जिस समाज का सत्व अनेकानेक आवरणों के नीचे सोया हुआ है, उस समाज को जगाने के लिये न जाने कितने लोगों को संन्यासी-का सा जीवन स्वीकार करना पड़ेगा। वेष से नहीं, मन से,'भाव से सच्चा संन्यासी बनकर और आराम का यशका मोह छोड़कर अपने समाज के एक-एक बन्धु के पास जाओ, उनसे मिलो। चुनाव में बिजयी होने का और राजतन्त्र का एक यन्त्र बनने का सपना छोड़कर अपने बन्धुओं को राष्ट्र-जीवन का संजीवन मन्त्र सुनाओ, जिससे उनमें नव-जीवन का संचार हो। अतः भाई! फकीरी की सोचो फकीरी की नेतागिरी की नहीं।

श्री गुरुजी लगभग ड़ेढ़ घंटा बोले होंगे। वे कार्यकर्ता, जो पहले बहुत उखड़ रहे थे, सब नत-मस्तक थे। वे भीतर-ही-भीतर गले जा रहे थे और अब उनका अन्तर उत्सर्ग की भावना से उर्मिल हो रहा था। वहाँ से उठे तो सभी कार्यकर्ता पूर्ववत् पूर्ण श्रद्धापूरित होकर और संघ-कार्य में जुट जाने का संकल्प लेकर ही उठे।

(चार)

कार्य सफल होकर रहेगा

द्वितीय विश्व युद्ध का आरम्भ हुआ था सन् १६३६ में और पूज्य श्री डाक्टर जी का निधन हुआ सन् १६४० में। अपने निधन के पूर्व ही श्री

डाक्टरजी ने श्री गुरुजी को संघ का सरसंघचालक नियुक्त कर दिया था। महायुद्ध भीषण रूप से चल रहा था। उसमें सफलता प्राप्त करने के लिये अंग्रेजों ने भारत का समस्त जन-जीवन अपने नियन्त्रण में पूर्ण रूप से ले रखा था। अंग्रेजी सरकार को इस बात से बड़ा ही आश्चर्य हो रहा था कि इतने बड़े विशाल संगठन के सब स्वयंसेवकों ने श्री डाक्टर साहब द्वारा नियुक्त किये गये व्यक्ति को बिना किसी प्रकार के विरोध के एकमत से अपना नेता स्वीकार कर लिया। इसके साथ ही संघ की शक्ति का भी उन्हें ज्ञान हुआ और बड़ी सावधानी से अंग्रेजी सरकार संघ-कार्य की ओर गृद्ध-दृष्टि से देखती रही।

युद्धकाल में यहाँ-वहाँ लोग युद्ध की बातें कहते-सुनते-बोलते थे परन्तु श्री गुरुजी की बैठक में किसी ने यदि विषय छेड़ा तो वे अपनी वाणी पर संयम रखते हुए मौन रहते थे। युद्ध समाप्त होने पर श्री गुरुजी बोले—दूसरों से द्वेष के आधार पर निर्माण किया गया कार्य कभी सफल नहीं हो सकता और ऐसा द्वेष-प्रेरित-कार्य परमात्मा की इच्छा के विरुद्ध रहता है। हमारा कार्य अपने राष्ट्र पर निरतिशय प्रेम पर आधारित होने के कारण ईश्वरीय कार्य है, अतः सफल होकर रहेगा।

(पाँच)

नस-नस में आत्मविश्वास

सन् १९४६ में संघ-शिक्षा-शिविर हरदा में भी लगा था। शिविर का समारोपोत्सव सार्वजनिक समारोह के रूप में सम्पन्न हुआ। इस समारोह में श्री गुरुजी उच्च व्यास पीठ पर खड़े होकर भाषण दे रहे थे। लाउड स्पीकर नहीं था। बोलते-बोलते वे व्यासपीठ के किनारे तक आकर खड़े हो गये। शिविर के सर्वाधिकारी वकील श्री भाऊराव वेडेकर आशंकित हो उठे कि यदि श्री गुरुजी किंचित् भी आगे बढ़े तो गिर पड़ेंगे। श्री गुरुजी को सावधान करना आवश्यक समझकर श्री वेडेकरजी ने उन्हें आगे बढ़ने से सचेत किया।

श्री गुरुजी एकदम बोल उठे—आप चिन्ता मत कीजिये । क्या मैं गिरने के लिये खड़ा हुआ हूं ?

आत्मविश्वास श्री गुरुजी की नस-नस में भरा हुआ था ।

(छः)

अद्भुत गाम्भीर्य अनोखा धैर्य

एक बार बैठक के समय यह समाचार ज्ञात हुआ कि सरकार संघ पर पुनः प्रतिबन्ध लगाने का विचार कर रही है । कुछ लोगों ने चिन्ता व्यक्त की । श्री गुरुजी बोले—परम पूजनीय श्री डाक्टर साहब ने शून्य में से यह सारा कार्य अपने सत्व के सहारे निर्माण किया है । वे हमारे प्रेरणा-स्रोत हैं । हम भी सत्व के सहारे बढ़ेंगे । अतः चिन्ता करने का कोई कारण नहीं ।

राम कथा के गायक महर्षि वाल्मीकि ने भगवान श्री रामचन्द्र जी का वर्णन करते हुए कहा है 'समुद्र इव गाम्भीर्येण धैर्ये हिमवानिव' । समुद्र का-सा वही अद्भुत गाम्भीर्य और हिमालय का-सा वही अनोखा धैर्य प्रतिक्षण श्री गुरुजी के व्यवहार में प्रस्फुटित होता रहा ।

: ११ :

अद्भुत क्षमता, अनोखी प्रतिभा

(एक)

कोलाहल में भी एकाग्रता

'श्री गुरुचरित्र' नामक ग्रंथ का पाठ महाराष्ट्र में भक्तिभावपूर्वक किया जाता है। इस ग्रंथ के इक्यान्नवें पारायण के अवसर पर श्री गुरुजी को एक स्थान पर आमन्त्रित किया गया था। यह स्थान एक गली में था। जिन्होंने श्री गुरुजी को बड़ी श्रद्धापूर्वक आमन्त्रित किया था, उनके एक पड़ोसी ने असहयोग की पराकाष्ठा कर दी। इक्यावनवें पारायण के अवसर पर जो कार्यक्रम आयोजित था, उस कार्यक्रम में बाधा डालने के लिए उस पड़ोसी ने लाउड-स्पीकर पर सुगम संगीत प्रसारित करना आरम्भ कर दिया। पड़ोसी की इस निन्द्य चेष्टा से कार्यक्रम के आयोजक लोग बहुत व्यथित थे। तेज आवाज में प्रसारित हो रहे सुगम संगीत का प्रभाव वक्ता के भाषण पर होना अपरिहार्य ही था। विशाल-विशाल सभाओं के शान्तिपूर्ण वातावरण में भाषण देने का जिन्हें अभ्यास हो, ऐसे श्री गुरुजी के लिए तो यह व्यवधान वस्तुतः बड़ा ही असह्य सिद्ध होगा। आयोजकों का मन चिन्तित था, पर कोई उपाय भी नहीं था।

श्री गुरुजी आये और उनका भाषण उसी कोलाहल के

बीच हुआ, वह भाषण भी हुआ बड़ा उत्तम, बड़ा भावपूर्ण, बड़ा विचारोद्बोधक। श्री गुरुजी ने दिखला दिया कि यदि विचारों की स्पष्टता, अभिव्यक्ति की सुन्दरता और मन की एकाग्रता है तो चारों ओर का कोलाहल कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

(दो)

श्रीनगर की यात्रा में

श्री गुरुजी में असाधारण एकाग्रता थी। चंचलता का उनमें नितान्त अभाव था। इसका प्रत्यक्ष दर्शन तो गढ़वाल के श्रीनगर की यात्रा में हुआ। श्रीनगर में राष्ट्रीय-स्वयंसेवक-संघ का प्रथम विशाल कार्यक्रम हो रहा था। यात्रा का आरम्भ हरिद्वार से हुआ। हम अनेक लोग दो कारों में यात्रा कर रहे थे। पहाड़ी-यात्रा थकने वाली होती ही है। इसके फलस्वरूप जहाँ-जहाँ पहाड़ी अड्डों पर कार 'गेट' मिलने तक रुकती, हम सब लोग कार से उतर पड़ते, टहलते, शरीर को चुस्त करने के लिए पानी-वानी पीते, किन्तु श्री गुरुजी की बात ही अलग थी। वे तो कार में एक बार जो बैठे तो श्रीनगर जाकर ही उतरे। वे सचमुच 'स्वस्थ' थे।

(तीन)

'सुरक्षित-भाषा' में उत्तर

बात सन् १९७१ ई० के मार्च मास के प्रारम्भ की है। दक्षिण भारत की यात्रा करते हुए हम वर्धा से नागपुर पहुंचे थे। 'आर्य-स्पेशल' ट्रेन के लगभग चार सौ यात्री नागपुर पहुंचने के पश्चात् संघ-कार्यालय और सर-संघचालक श्री गुरुजी के दर्शन के लिये उत्सुक थे। यात्रियों के मन में दक्षिण भारत की यात्रा के अनेक दर्शनीय स्थानों की याद ताजा थी। मन में सबसे अधिक जो

स्मृति जड़ जमाकर बैठी थी, वह थी कन्याकुमारी में विवेकानन्द शिला-स्मारक की अद्भुत रचना और भारत के ऐन दक्षिणी छोर पर एक सशक्त सांस्कृतिक चौकी के रूप में उसकी उपयोगिता। जिस किसी के भी मन में उस स्मारक की कल्पना आयी हो, उसके इस कल्पना-वैभव की प्रशंसा करनी पड़ेगी। जिन लोगों ने एकनिष्ठ भाव से उस अद्भुत स्मारक की रचना करके समस्त भारत की जनता में उसको लोकप्रिय बना दिया, वे भी कम साधुवाद के पात्र नहीं।

जानने वाले जानते हैं कि उस स्मारक की कल्पना से लेकर उसके निर्माण के पूर्ण होने तक मूल प्रेरणा किसकी थी। शायद स्पष्ट रूप से किसी एक व्यक्ति के नाम का इंगित करना कठिन हो, परन्तु इस प्रेरणा के स्रोतों में किसी-न-किसी स्तर पर श्री गुरुजी का स्थान अनन्यतम है, इसे इंकार नहीं किया जा सकता।

इस भाव-भूमि के साथ जब यात्री नागपुर के रेलवे स्टेशन पर उतरे तो उनके मन में संघ-कार्यालय, डा० हेडगेवारजी की समाधि और श्री गुरुजी के दर्शनों की लालसा अस्वाभाविक नहीं कही जा सकती। प्रातःकाल ही, बाजार अभी खुले भी नहीं थे और लोगों की चहल-पहल भीड़-भड़क्का अभी शुरू भी नहीं हुआ था, स्पेशल ट्रेन के यात्रियों का यह दल अनुशासनबद्ध स्वयंसेवकों की तरह गीत गाता और नारे लगाता जब संघ-कार्यालय पहुंचा तो श्री गुरुजी भी यात्रियों की इस भव्य शोभायात्रा को देखकर प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। कार्यालय के विशाल भवन में सब यात्री, जिनमें स्त्रियों की संख्या भी कम नहीं थी, पंक्तिबद्ध बैठ गये।

थोड़ी देर बाद श्री गुरुजी आये। उन्होंने सब यात्रियों को करबद्ध होकर नमस्कार किया और इसके बाद सबको आशीर्वाद-सा देते हुए उन्होंने वहाँ से जाने की तत्परता प्रकट की। परन्तु यात्रियों को इतने मात्र से कृत-कृत्यता कैसे अनुभव होती ? यात्रियों की उत्सुकता केवल आँखों के माध्यम से ही नहीं, अपितु कानों के माध्यम से भी झाँक रही थी। सब यात्रियों ने एक स्वर से श्री गुरुजी से कुछ संदेश देने के लिए आग्रह किया। श्री गुरुजी, विनम्रता की साक्षात् मूर्ति कहने लगे— मैं क्या सन्देश दूं ?

परन्तु उत्सुक यात्रियों के अन्तःकरण फिर प्रार्थना के स्वर में गूंज उठे— कुछ तो कहिये ही !

तब श्री गुरुजी जैसे— ध्यानस्थ हो गये। आँखें सबको देखते हुए भी जैसे किसी भावलोक में खो गयीं। फिर अत्यन्त शान्ति और मृदु स्वर में उनकी

वाणी का प्रवाह बह पड़ा। जिन्होंने श्री गुरुजी के व्याख्यान सुने हैं, वे उनकी भाषा और विचारों के प्रवाह के सदा कायल रहे हैं। परन्तु उस दिन का वह भाषण, भाषण नहीं था। शायद उसे बातचीत भी न कहा जा सके। उसे आत्माभिव्यक्ति का एक ऐसा प्रकार कहना उचित होगा, जिसमें कहीं कला की दृष्टि से बनावट या वाक्छल की भी गुंजाइश नहीं। वे जैसे अपना हृदय खोलकर सबके सामने रख रहे थे। उनके उस वक्तव्य में कहीं भी अहम्मन्यता, सरसंघचालकत्व का नेतृत्वबोध, अपने-आपको औरों पर थोपने की प्रवृत्ति या उपदेशात्मकता जैसी कोई चीज ही नहीं थी। थी केवल आत्मार्पण की अदम्य आकांक्षा। राष्ट्र के लिए अपने–आपको समर्पित कर देने की जो निर्धूम ज्वाला उनके मन में सतत प्रज्वलित रहा करती थी, जैसे उसी ज्वाला की एक चिनगारी वे उन सब यात्रियों के हृदय में भर देना चाहते थे। उनकी वाणी की सौम्यता इस बात की निशानी थी कि उन्हें उस ज्वाला का उत्ताप नहीं, सातत्य ही अभीष्ट था।

श्री गुरुजी जब यात्रियों के मध्य से विदा हुए, तब सब यात्री ही जैसे सोते से जागे। अब तक आत्मलीनता की जिस स्थिति में थे, उससे हटे। अपने बाहरी परिवेश का अनुभव हुआ। मन में एक नयी प्रेरणा लेकर यहाँ से सब यात्री हेडगेवारजी की समाधि के दर्शन के लिए चल दिए। श्री गुरुजी फिर द्वार पर खड़े होकर सबको विदाई के नमस्कार से आप्लावित करते रहे।

कुछ देर बाद श्री गुरुजी अपने निजी कक्ष में आकर बैठे। दो-तीन व्यक्ति ही उनके साथ और थे। आपस की सामान्य चर्चा होने लगी। मैंने इस एकान्त अवसर को श्री गुरुजी से वैयक्तिक-भेंट के लिए उचित समझा। दरबार तो खुला हुआ था ही। मैं भी नमस्कार करके एक ओर बैठ गया। श्री गुरुजी ने प्रश्नवाचक दृष्टि से मेरी ओर देखा। श्री गुरुजी के भाषण सुनने और उनके आस-पास बैठने का अवसर तो अनेक बार आया, परन्तु सीधा बातचीत का प्रसंग यह पहला ही था। मैं भी किसी औपचारिक भेंट की दृष्टि से वहाँ नहीं गया था, परन्तु उस समय मन में एक बात घुमड़ रही थी, जिसका समाधान श्री गुरुजी से ही हो सकता था।

बंगलादेश में क्रांति का शंख फूँका जा चुका था। पाकिस्तानी सैनिक नृशंस अत्याचार करने पर उतारू थे और जनता जैसे करवट ले रही थी। उसी दिन यह समाचार आया था कि टिक्काखाँ को, जिन्हें पूर्वी पाकिस्तान का जनान्दोलन समाप्त करने के लिए सर्वाधिकार देकर भेजा गया था,

गोली लगी है। बंगलादेश का भविष्य तब तक अनिश्चित था और घटनाएँ क्या रूप लेंगी, इसके बारे में कुछ भी कह सकना कठिन था। परन्तु मन में बार-बार यह तड़प उठती थी कि भारत के पूर्वी छोर पर घटने वाले इतने महत्वपूर्ण घटनाचक्र में हम भारतवासी भी कुछ योगदान कर सकें, तो कितना अच्छा हो। भारत सरकार तब तक केवल निरपेक्ष भाव से मूक-दर्शन मात्र बनी हुई थी।

मैंने श्री गुरुजी से पूछा– जिस प्रकार आपके संघ के स्वयंसेवकों का जाल भारतवर्ष के प्रत्येक राज्य में बिछा हुआ है, क्या उसी प्रकार पूर्वी पाकिस्तान में भी संघ की कुछ गतिविधियां हैं?

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इससे पहले मैं उनको अपना परिचय दे चुका था और श्री गुरुजी पत्रकार-जगत के अपने परिचित अन्य कुछ विशिष्ट लोगों के बारे में कुशल-क्षेम पूछ चुके थे। मुझे लगा कि श्री गुरुजी शायद मुझसे इस प्रकार के प्रश्न की आशा नहीं करते थे। या शायद मेरे पत्रकार होने का भाव उनके मन पर हावी रहा हो, क्योंकि मैं यह समझता हूं कि जो दो-तीन व्यक्ति वहाँ बैठे थे, वे सब उनकी अन्तरंग मण्डली के ही लोग थे। इसलिए किसी से छिपाने की कोई बात रही हो, ऐसा मानने को जी नहीं चाहता। परन्तु श्री गुरुजी ने मुझे जो उत्तर दिया, उससे मुझे ऐसा लगा कि मैं कहीं उनके किसी कथन को प्रचारित न करूँ, इसलिए पहले से ही पेशबन्दी करके उन्होंने बहुत सुरक्षित भाषा का प्रयोग किया।

श्री गुरुजी बोले– पूर्वी पाकिस्तान में हमारी गतिविधियाँ क्या हो सकती हैं? आप जानते हैं कि पाकिस्तान की सरकार का हमारे प्रति क्या रवैय्या हो सकता है। वह हमें कैसे बर्दाश्त करेगा? इसलिए संघ के तो वहाँ किसी भी प्रकार के कार्य का प्रश्न ही पैदा नहीं होता।

मैंने ऊपर श्री गुरुजी द्वारा 'सुरक्षित-भाषा' के प्रयोग की बात कही है। यह इसलिए कि इससे पहले अपनी त्रिपुरा-यात्रा के दौरान मैं एक ऐसे व्यक्ति से भेंट कर चुका हूं, जो पूर्वी बंगाल का निवासी था और संघ का स्वयंसेवक था। अब तो सार्वभौम-सत्ता-सम्पन्न बंगला देश का उदय हो ही चुका है, अतः अब इस रहस्य को उद्‌घाटित करने में किसी प्रकार की आपत्ति की सम्भावना नहीं है।

त्रिपुरा की राजधानी अगरतला में 'हिन्दुस्थान समाचार' के प्रतिनिधि हैं श्री केशवचन्द्रजी सूर शायद कलकत्ता के समाचारपत्रों को छोड़कर यदि अन्य किसी पत्र या संवाद–समिति का कोई प्रतिनिधि अगरतला में है तो

वह केवल 'हिन्दुस्थान-समाचार' का ही है। इन श्री केशवचन्द्रजी सूर से मैं मिला। उनसे बातचीत करने पर पता लगा कि केवल त्रिपुरा ही नहीं, प्रत्युत पूर्वी पाकिस्तान के समाचार भी वे अपनी संवाद-समिति को भेजते हैं। मैंने उनसे पूछा— पूर्वी पाकिस्तान के समाचार जानने के लिए आपके पास साधन क्या हैं ?

उन्होंने निस्संकोच भाव से कहा— मैं स्वयं पूर्वी बंगाल का निवासी हूं। मेरे अनेक स्वयंसेवक साथी अभी तक पूर्वी बंगाल में ही हैं। उनके ही द्वारा मुझे समाचार प्राप्त होते रहते हैं।

श्री सूरजी की इस बात में कितनी सच्चाई थी और उनके द्वारा प्राप्त किये जाने वाले समाचारों की प्रामाणिकता कैसी असंदिग्ध रही होगी, इसकी पुष्टि आगे लिखी बात से जानी जा सकती है। सन् १९६५ के भारत-पाक-संघर्ष के दौरान त्रिपुरा के मुख्य-मन्त्री एक दिन स्वयं श्री सूरजी के निवास स्थान पर पहुंचे थे और सरकारी सूत्रों से प्राप्त किसी समाचार-विशेष की प्रामाणिकता के बारे में उन्होंने श्री सूरजी की गवाही चाही थी। 'हिन्दुस्थान-समाचार' के अविवाहित प्रतिनिधि और अपनी धुन के धनी श्री केशवचन्द्रजी सूर उस दिन सब पत्र-प्रतिनिधियों की ईर्ष्या के पात्र बन गये, जिस दिन मुख्य-मन्त्री स्वयं उनके निवास स्थान पर पहुंचे थे। उसके बाद से अन्य पत्रों के प्रतिनिधियों की दृष्टि में भी श्री सूरजी जैसे निरीह व्यक्ति का महत्व बढ़ गया और वे भी पूर्वी पाकिस्तान का समाचार जानने के लिए श्री सूरजी का मुँह जोहने लगे।

इस प्रत्यक्ष जानकारी के आधार पर यह मानने को मेरा मन नहीं चाहता कि पूर्वी बंगाल में संघ की कोई गतिविधि नहीं थी। फिर श्री गुरुजी ने वैसा उत्तर क्यों दिया ? इसका कारण मैं यही समझता हूं कि वे इस बात को प्रकाश में नहीं आने देना चाहते थे। शायद और कोई व्यक्ति होता तो इस बात को लेकर ही शेखी बघारने का प्रयत्न करता और इस श्रेय से अपने को मण्डित करना चाहता कि जो काम सरकार भी नहीं कर सकती, वह हम कर रहे हैं। परन्तु श्री गुरुजी ने 'सुरक्षित-भाषा' में मेरे प्रश्न का उत्तर देकर जहाँ उच्च कोटि की राजनयिक दूरदर्शिता का परिचय दिया, वहाँ यह भी स्पष्ट हो गया कि उनका निजी या संघ का व्यक्तित्व राष्ट्र से भिन्न कुछ नहीं है। राष्ट्र के हित में ही उनका सारा व्यक्तित्व तिरोहित हो गया है।

: १३ :

अनुशासन-प्रियता

(एक)

व्यबस्था का अनुपालन

सन् १९७३ में मैं तृतीय वर्ष का शिक्षरण लेने के लिये नागपुर के संघ-शिक्षा-शिविर में गया। घर से चलते समय मन बड़ा प्रसन्न था कि प्रतिदिन श्री गुरुजी के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त होगा। पर सौभाग्य की यह सलोनी कल्पना अपना मूर्त रूप नहीं ले सकी। श्री गुरुजी अस्वस्थ चल रहे थे। फिर भी श्री गुरुजी ने प्रान्तशः स्वयंसेवकों की बैठकें लीं। जब हमारे प्रान्त की बारी आयी तो हम सब स्वयंसेवक ठीक समय पर प्रातः काल सवा-आठ बजे हेडगेवार भवन पहुंच गये। जिस कमरे में बैठक होने वाली थी, उसमें श्री गुरुजी पहले से विराजमान थे। सब स्वयंसेवक पंक्ति-बद्ध बैठ गये, लेकिन शिविर के सर्वाधिकारी जी नहीं आये थे। जब वे आये, तभी बैठक आरम्भ हुई। श्री गुरुजी स्वयं अपनी ओर से व्यवस्था और अनुशासन का पूर्ण पालन करते थे।

(दो)

अनुशासन का आदर्श

संघ शिविर में एक सामान्य स्वयंसेवक के नियमों का कड़ाई से पालन करके अनुशासन-पालन का आदर्श उपस्थित करने वाले श्री गुरुजी बार-बार याद आते हैं। सन् १९५३ या सन् १९५४ की बात होगी। सुधागढ़ (पाली) में कुलावा जिले का शीत-शिविर लगा हुआ था। श्री गुरुजी भी इस शिविर में आये थे।

संघ ने सामाजिक जीवन में अनेक अच्छे आदर्श उपस्थित किये हैं। उन आदर्शों में से एक यह भी है कि शिविरों में स्वयंसेवक गण जहाँ तम्बुओं में रहते हों, वहीं शिविर का संचालन करने वाले प्रमुख व्यक्तियों को भी रहना चाहिये। इन सबके लिये गेस्टहाउस, डाकबँगला, एयरकंडीशन या ओबेराय शेरेटन आदि कुछ नहीं। एक ही भूमि पर सब साथ बैठें, सूर्यास्त के समय सभी एक ही साथ प्रार्थना कहें और सभी एक साथ नाश्ता-भोजन करें। सार्वजनिक जीवन की अहमन्यता, बड़े-छोटे का भेद, जातियों-जमातों के बीच की खाईं कम-से-कम संघ स्थान पर पूरी तरह पाट दी गयी है। उच्च आदर्श को आचरण में उत्तर देने के पीछे यदि कोई प्रेरणा और हेतु है तो वह है श्री गुरुजी का कथनी-करनी में एकता स्थापित करने वाला प्रभावशाली व्यक्तित्व।

पाली के शिविर में ठण्ड कड़ाके की पड़ रही थी। यह नियम था कि प्रातः चार बजे बिगुल बजते ही सबको उठना चाहिये। हमारे तम्बू में के कई स्वयंसेवक बिगुल बजते ही उठे और हाथ मुंह धोने के लिये तम्बू से बाहर आये। बड़ी ठण्डी हवा चल रही थी। ठण्ड से सारा शरीर काँप रहा था। इतनी ठण्ड में भी हमने जो देखा, उससे हमारे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। श्री गुरुजी अपने तम्बू के बाहर सूर्यनमस्कार कर रहे थे। श्री गुरुजी का शौच-मुखमार्जन तो बहुत पहले निपट ही चुका था, बल्कि उनका स्नान भी हो चुका था।

(तीन)

नाराजगी और बढ़ी

श्री गुरुजी पंजाब से लौटकर नागपुर जा रहे थे । आगरा और मथुरा में उनके लौटने की सूचना थी । मैं मथुरा से ही साथ हो गया था । आगरा कैंट स्टेशन पर नगर के लगभग दो सौ कार्यकर्ता बुला लिये गये थे, जिससे उनकी भेंट श्री गुरुजी से हो सके। नागपुर वाला डिब्बा प्लेटफार्म पर अन्दाज से कहाँ रुकेगा, इसे देखकर उन कार्यकर्ताओं को व्यवस्थित बैठाने की योजना थी । इन सबकी सूचना श्री गुरुजी को भी थी ।

आगरा कैन्ट स्टेशन पर ही स्वयंसेवकों को आना था, पर कैंट स्टेशन से पहले राजामण्डी स्टेशन पर दो-चार स्वयंसेवक और उन स्वयंसेवकों के कुछ मित्र आ गये । श्री गुरुजी ने डिब्बे के अन्दर बैठे-बैठे ही एक स्थानीय कार्यकर्ता से पूछा—डिब्बे के बाहर ये लोग कौन हैं ?

उस कार्यकर्ता ने कहा—अपने स्वयंसेवक हैं ।

इतना सुनते ही श्री गुरुजी नाराज हो गये और बाहर खड़े स्वयंसेवकों से बोले—जब कैंट स्टेशन पर बुलाया गया है, तब यहाँ क्यों आये ?

बाहर खड़े हुए लोगों में से एक अनजाने ने कहा—दर्शन करने ।

उसका ऐसा कहना था कि श्री गुरुजी की नाराजगी और बढ़ गयी । उसी नाराजगी के स्वर में श्री गुरुजी ने कहा—दर्शन करना है तो मन्दिर में जाओ । स्वयंसेवक को जहाँ बुलाया गया है, वहीं जाना चाहिये । इसी को अनुशासन कहते हैं ।

इतने में गाड़ी चल दी । मुझे लगा, अब क्या होगा ? अकारण और अचानक ऐसा प्रसंग घटित हो गया, जिससे श्री गुरुजी का मन क्षुब्ध हो उठा । इस क्षोभ का असर यदि अगले कार्यक्रम पर पड़ा, तब तो सारा ही रंग बदरंग हो जायेगा । पर गाड़ी के चलते ही पुनः हँसी-मजाक शुरू हो गया, मानों कुछ हुआ ही नहीं था ।

(चार)

अनुशासन के अधीन

श्री गुरुजी की यह आस्था थी कि अनुशासन, सामर्थ्यशाली राष्ट्र-जीवन का अति महत्वपूर्ण और नितान्त आवश्यक आधार है। उस अनुशासन के ही रूप में आज्ञा का पालन और व्यवस्था का सम्मान। श्री गुरुजी अनुशासन के पालन पर बहुत जोर देते थे और वे स्वयं अपने जीवन में उसका पालन करते थे।

एक बार आन्ध्र प्रान्त में श्री गुरुजी प्रवास पर आये। रेलगाड़ी एक स्टेशन पर प्रातः साढ़े-चार बजे पहुंचती थी। जंक्शन होने के कारण रेलगाड़ी वहाँ आधा घण्टा रुकती थी। सोचा यह गया था कि साढ़े-चार से पाँच बजे के बीच श्री गुरुजी शौचादि से निवृत्त हो लेंगे। थरमस में चाय तैयार रखी जायेगी। चाय लेकर वहाँ से सौ मील की दूरी पर स्थित गन्तव्य स्थान के लिये कार से तुरन्त निकल पड़ेंगे, जिससे कि उस स्थान पर कार्यक्रम के लिये समय पर पहुंच सकें।

रात्रि में रेलगाड़ी में बैठने के बाद जब श्री गुरुजी को दूसरे दिन का कार्यक्रम बताया गया तो उन्होंने मुझसे पूछा—रेल के डिब्बे में पाखाने में जो एक छोटी-सी सूचना लिखी रहती है, क्या उसे पढ़ा है ?

मैंने कहा—हाँ।

श्री गुरुजी ने कहा—उसमें लिखा है कि गाड़ी जब स्टेशन पर खड़ी हो तो पाखाने का उपयोग नही करना चाहिये। मैं इस नियम का सदैव पालन करता हूं। इसीलिये उस समय रेल के डिब्बे मे शौचादि से निवृत्त होना सम्भव नहीं होगा।

फिर हम लोगों ने दूसरी व्यवस्था की। लाखों लोग रेलगाड़ी में यात्रा करते हैं, परन्तु इस प्रकार ध्यान देकर व्यवस्था का सम्मान करने वाला बिरला ही कोई होगा।

इसी प्रकार की नागपुर की भी एक घटना सुनी है। उन दिनों नागपुर की पुलिस ने एक विचित्र नियम बनाया था। चौराहों पर वाहनों को यदि बाँयी ओर से दाहिनी ओर जाना हो तो पुलिस अथवा चौराहे को चक्कर लगाकर जाना पड़ता है किन्तु पैदल चलने वालों के लिये यह नियम नहीं था, पर नागपुर की पुलिस ने यह विचित्र नियम पैदल चलने वालों के लिये भी

अनिवार्य बना दिया। यह विचित्र नियम सभी को बड़ा अटपटा लगा और लोग पुलिस को पागल कहने लगे।

किसी ने उस नियम का पालन नहीं किया। उसका पालन करने वाले नागपुर में एक ही व्यक्ति थे और वे थे श्री गुरुजी। प्रवास से लौटकर जब भी श्री गुरुजी नागपुर आते तो प्रतिदिन अपनी पूज्य माताजी, जो किराए के मकान में रहती थीं, उनसे मिलने जाते। मार्ग में एक चौराहा आता। जब तक वह नियम लागू रहा, श्री गुरुजी उस चौराहे का चक्कर लगाकर ही दाहिनी तरफ बढ़ते।

मोटर में भी बैठते समय वे पूछते थे कि आपकी क्या व्यवस्था है? मुझे कहाँ बैठना है? जहाँ बताया जाता था, वहीं पर बैठते थे। अपने स्वयं को उन्होंने अनुशासन के अधीन कर दिया था।

(पाँच)

मनमाने परिवर्तन का परिणाम

सन् १६७१ की मकर-संक्रान्ति के अवसर पर भोपाल में मध्यभारत प्रान्त के कार्यकर्ताओं की बैठक का आयोजन था, जिसमें श्री गुरुजी मकर-संक्रान्ति के दूसरे दिन उपस्थित रहने वाले थे। मकर-संक्राति का उत्सव एक दिन आगे बढ़ा देने से श्री गुरुजी के भाषण का लाभ समस्त स्वयंसेवकों को मिल सकेगा, यह सोचकर पूर्व-निर्धारित कार्यक्रम में हम लोगों ने परिवर्तन कर लिया और नगर के गण्यमान्य सज्जनों को भी उसमें आमन्त्रित कर दिया। किन्तु इस परिवर्तन की न तो अनुमति ली और न इसकी पूर्व-सूचना ही भेजी।

श्री गुरुजी के भोपाल पहुंचने पर जब मैंने उन्हें उपर्युक्त कार्यक्रम की सूचना दी तो उन्होंने कहा—किससे पूछकर तुमने यह कार्यक्रम आयोजित किया था? यहाँ तो केवल प्रान्तीय कार्यकर्ताओं की बैठक का कार्यक्रम निश्चित हुआ था। इसलिये मैं अब केवल आये हुए कार्यकर्ताओं से बातचीत करूँगा। उत्सव में मैं बिल्कुल नहीं बोलूंगा। क्या यह आवश्यक है कि जब भी मैं आऊँ, तब भाषण होना ही चाहिये? अब उत्सव में तुम्हीं बोलना।

मैं स्तब्ध हो गया। गलती तो हो ही चुकी थी। यदि केवल स्वयंसेवकों की बात होती तो प्रान्त-संघचालक माननीय श्री शास्त्री जी से भाषण देने का निवेदन कर लेता किन्तु चिन्ता यह थी कि जिन गण्यमान्य सज्जनों को निमन्त्रण पत्र देकर श्री गुरुजी का भाषण सुनने के लिये आमन्त्रित किया गया है, उनका क्या होगा ? इस बात को सोच-सोच कर मैं जरा व्यग्र हो रहा था और माननीय श्री शास्त्री जी से तथा माननीय भाऊसाहेब भुस्कुटे से मैं प्रार्थना करता रहा कि इस बार श्री गुरुजी को बोलने के लिये राजी कर लें, फिर कभी आगे यह गलती नहीं होगी।

उत्सव आरम्भ होने के कुछ पूर्व जब मुझे ज्ञात हुआ कि श्री गुरुजी ही बोलेंगे तब मैं चिन्ता-मुक्त हुआ और यह भी तभी निश्चय कर लिया कि निर्धारित कार्यक्रम में मनमाना परिवर्तन करने की गलती फिर कभी नहीं दोहराऊँगा। निर्धारित कार्यक्रमों के यथावत पालन के आग्रह के कारण ही संघ में वह अनुशासन दिखलायी देता है, जिसकी सब लोग प्रशंसा करते हैं।

(छः)

सरकार्यवाह का आदेश

सन् १९७३ में जब संघ-शिक्षा-शिविर देश के विभिन्न स्थानों पर आरम्भ हुए तो श्री गुरुजी का स्वास्थ्य इस योग्य नहीं था कि वे सभी शिविरों में जायें। उनके नागपुर में रहने की ही व्यवस्था की गयी थी। शिविरों में न जा सकने की बात उन्हें बड़ी अप्रिय लग रही थी। एक दिन वे कुछ व्यथित-से होकर बोले—मेरे प्रवास का कार्यक्रम बनाओ। देश भर में संघ शिक्षा शिविर चल रहे हैं और मैं यहाँ बैठा हूं। कम-से-कम शिविर में आये हुए स्वयंसेवकों से तो मैं मिल लूँ।

उनकी सेवा में रहने वाले कार्यकर्ता ने बताया—डाक्टरों का कहना है कि आप प्रवास पर न जायें, आपका स्वास्थ्य इस योग्य नहीं है।

श्री गुरुजी उस कार्यकर्ता से बोले—मैं जो कहता हूं, वह करो। डाक्टर क्या कहता है वह महत्वपूर्ण है कि सरसंघचालक जो कहता है, वह ?

उस कार्यकर्ता ने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह सीधे तत्कालीन सरकार्यवाह माननीय श्री बालासाहब जी देवरस के पास गया और श्री गुरुजी की इच्छा कह सुनायी। कुछ क्षण तो माननीय श्री बालासाहब चुप रहे, फिर बोले— जाओ, गुरुजी से कह दो कि सरकार्यवाह का आदेश है कि जब तक डाक्टर न कहें तब तक आप अपने कमरे से नीचे नहीं उतरेंगे।

कार्यकर्ता ने जाकर सरकार्यवाह द्वारा कही गयी बात उन्हीं के शब्दों में ज्यों-की त्यों दुहरा दी। श्री गुरुजी मौन होकर कुछ क्षण सोचते रहे, फिर बोले—यदि सरकार्यवाह का आदेश है तब तो उसे मानना ही पड़ेगा।

इतना कहकर श्री गुरुजी अपनी कुर्सी पर शान्तचित्त होकर आराम से लेट गये। अनुशासन और आदेश-पालन का ऐसा अद्वितीय उदाहरण क्या कहीं ढूँढे मिलेगा? संगठन के सर्वोच्च व्यक्ति को भी अपने कनिष्ठ अधिकारी के अनुशासन में रहना चाहिये, यह आदर्श प्रस्तुत करना उन्हीं के बूते और बुद्धि की बात थी, अन्यथा और कोई होता तो…।

●

(सात)

मर्यादा का पालन

१९५७-५८ के आस-पास की बात है। नासिक में हाई स्कूल के मैदान में वारकरी सम्प्रदाय का 'नाम सप्ताह' था। उस दिन स्वर्गीय श्री मामासाहब दाण्डेकर का कीर्तन था। श्री गुरुजी कीर्तन में आये। उनके साथ दो स्वयंसेवक भी थे। मैं भी मामासाहब के पीछे सहायक के रूप में था। श्री गुरुजी को देखते ही उन्हें सामने लाकर बैठाया जाये, इस हेतु भीड़ में से होता हुआ मैं उनके पास पहुंचा और आगे चलने के लिये प्रार्थना की। उस समय गुरुजी ने कहा—नहीं। इस समय कीर्तन का कार्यक्रम चल रहा है। लोगों के बीच में से होते हुए आगे जाने से कीर्तन की मर्यादा का उल्लंघन होता है। यह ठीक नहीं लगता।

ऐसा कहकर गुरुजी बरामदे में ही बैठ गये। श्री मामासाहब की नजरों से गुरुजी बच न सके। उन्होंने गुरुजी को देखकर कीर्तन की दिशा ही बदल दी। उस दिन अत्यन्त सुन्दर कीर्तन हुआ। इस प्रसंग की स्मृति होते ही आज भी महान पुरुषों की महानता का ध्यान हो आता है।

●

: १४ :

श्रद्धावनत का भावार्चन

(एक)

श्रद्धा का वह भाव

सन् १९४३ में मैं काशी में था। श्री गुरुजी ने एक पत्र देकर मुझे जौनपुर के राजासाहब के मैनेजर पं० श्री राजनारायण जी मिश्र के पास भेजा। सम्माननीय श्री मिश्रजी का अपने संघ-कार्य में नया प्रवेश ही हुआ था। श्री गुरुजी जौनपुर के संघचालकत्व का दायित्व उन्हें सौंप रहे थे। वे अवकाश-प्राप्त रेवेन्यू सेक्रेटरी थे। मैंने उन्हें श्री गुरुजी का पत्र दिया तो बड़ी श्रद्धा से उसे अपने मस्तक से लगाया और फिर खोलकर पत्र पढ़ा। पत्र पढ़कर वे स्तब्ध रह गये और फिर बोले–जैसी परम पूजनीय श्री गुरुजी की आज्ञा। वैसे मैं यह दायित्व लेना नही चाहता था क्योंकि बड़े पुत्र की नौकरी का प्रश्न है, वह डिप्टी-कलेक्टर है, पर पूजनीय श्री गुरुजी का आदेश है तो उसे मैं श्रद्धापूर्वक स्वीकार करता हूं।

श्री गुरुजी उन दिनों में केवल ४० वर्ष के थे और सम्माननीय श्री मिश्र जी लगभग ७० के होंगे परन्तु श्रद्धा का वह भाव सभी में भर गया था।

(दो)

वर्षा द्वारा अभिनन्दन

जनवरी १९७१ की घटना है। तमिलनाडु के शाखा-कार्यवाहों का दो दिन का शिविर मद्रास में हुआ। शिविर के समारोप-समारोह के बाद श्री गुरुजी निवास-स्थान पर लौट गये। जब कार्यकर्ता गण श्री गुरुजी से मिलने के लिये चले तो जोर की वर्षा हुई और निवास-स्थान तक पहुंचते-पहुंचते सभी लोग भीग गये। उस समय श्री गुरुजी चाय पी रहे थे। श्री गुरुजी मुझसे बोले—देखो, आज भी वर्षा हुई। अब तुम्हारा क्या कहना है ?

मुझे अकस्मात स्मरण हो आया दो वर्ष पूर्व की घटना का, जब मैंने उन्हें तमिल भाषा के प्राचीन कवि अवय्यर के काव्य की कुछ पंक्तियों का भावार्थ बतलाया था। जब-जब श्री गुरुजी मद्रास आया करते, तब-तब वर्षा हुआ करती, इसी बात को ध्यान में रखकर ही मुझे उन काव्य-पंक्तियों की अनायास स्मृति हो आयी थी। उन पंक्तियों का भावार्थ यह है कि अपने बीच एक भी पुण्यवान पुरुष हो तो उसके लिये सबको प्रसन्नता प्रदान करने वाला मेघ वर्षा करता ही है।

मैंने श्री गुरुजी से उस समय कहा था—श्रद्धेय अवय्यर ने एक हजार वर्ष पूर्व जो कहा था, वह आज भी सत्य है। जब-जब आपका आगमन मद्रास में होता है, तब-तब वर्षा होती है।

मेरी बात सुनकर श्री गुरुजी हँस पड़े थे।

(तीन)

सेंगरी की वे फलियाँ

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर लगे प्रतिबन्ध के काले मेघ हट चुके थे। उत्तर प्रदेश के पश्चिमी-भाग के कार्यकर्ताओं का सम्मेलन हरिगढ़ (अलीगढ़) में था। एक निर्धन वृद्ध नागरिक श्रद्धावश अपने खेत से सेंगरी की फलियाँ श्री गुरुजी को भेंट करने लाया। श्री गुरुजी ने अत्यन्त आत्मीय भाव से उन्हें अपनाया और फलियाँ एक स्थान पर रख दी गयीं। किसी को उनका

स्मरण न रहा। मध्याह्न में भोजन के पूर्व वहाँ उपस्थित एक स्वयंसेवक से श्री गुरुजी ने कहा—देखो भूलना नहीं। उन फलियों का शाक मेरे लिये अवश्य बनवाना। वे बड़े स्नेह से भेंट कर गये हैं।

उपस्थित लोगों का हृदय उनकी इस वत्सलता को देख श्रद्धा से भर गया।

(चार)

वे पवित्र फूल

भुसावल रेलवे स्टेशन की छोटी-सी घटना है। उन दिनों (१९४९) श्री गुरुजी का अविस्मरणीय तूफानी दौरा चल रहा था। स्थान-स्थान पर उत्साह था और उल्लास से भरा हुआ जन-सागर और भव्य स्वागत समारम्भ। भुसावल स्टेशन पर भी ऐसा ही एक दृश्य था। जनता के पुलकित अन्त:करण का उल्लास पुष्पों की सुगंध के रूप में चारों ओर फैला हुआ था।

इस भीड़ के बीच में एक मेहतर (भंगी) जमीन पर पड़े फूलों को चुन रहा था। जब किसी ने कारण पूछा तो वह सरलता के साथ बोला—बाबूजी! ये पवित्र फूल एक महान् देवता-पुरुष के चरणों पर समर्पित हुए हैं। इनको लोगों के पैरों तले कुचलते मैं कैसे देखूं?

: १५ :

केशव और माधव

(एक)

गुरुजी को खोज लिया

१९३९ से ही डाक्टर साहब का स्वास्थ्य कुछ ठीक नहीं रहता था। संघ-कार्य पर्याप्त मात्रा में फैल चुका था। अब संघ-शिक्षा-शिविर पूना और नागपुर दो स्थानों पर होते थे। संघ-कार्य सारे प्रांतों में प्रसृत हो चुका था अतः अहोरात्र परिश्रम करना पड़ रहा था। उनके स्वास्थ्य की दृष्टि से मित्र वर्ग और स्वयंसेवक उनसे विश्राम करने के लिए आग्रह कर रहे थे। यह आग्रह टालना उनके लिए असम्भव था। इस अवस्था में कार्य को ठीक प्रकार से समझकर उनकी कल्पना के अनुसार कार्य चलाने वाला कर्मठ, संन्यस्त, निश्चयी आधुनिक विद्याविभूषित व्यक्ति वे खोज रहे थे। शायद १९३९ के आसपास उन्होंने उस व्यक्ति (प० पू० गुरुजी) को अपने मन में निश्चित भी कर लिया था।

१९३७ से ही वे एक आध्यात्मिक प्रवृत्ति के आधुनिक विद्याविभूषित, श्री रामकृष्ण परमहंस के विचारों से प्रभावित व्यक्ति को संघ-कार्य से पर्याप्त मात्रा में परिचित करा रहे थे। वे जानते थे कि श्री रामकृष्ण परमहंस ही ऐसे आध्यात्मिक व्यक्ति थे, जिन्होंने अपने जीवन में सारे सम्प्रदायों की भिन्न-भिन्न साधना-

प्रणाली के अनुसार भिन्न-भिन्न समय पर साधना करके सब सम्प्रदायों के अन्दर समायी हुई आन्तरिक एकात्मता का प्रत्यक्ष अनुभव किया था। ऐसी महान् आत्मा का भक्त ही भारत जैसे अनेक सम्प्रदायों के देश में किसी भी सम्प्रदाय से विद्वेष न रखते हुए अपने प्राचीन गौरवपूर्ण जीवनादर्शों को उपस्थित कर सकता है। इसी कारण वे उनके (गुरुजी के) पीछे लगे रहे और अपने प्रयत्नों में यशस्वी होकर रहे।

(दो)

केशव-माधव-मिलन

सन् १९२९-३० ई० में डा० हेडगेवार संघकार्य प्रारम्भ करने के लिए काशी गये। यही प्रथम अवसर था, जब ये दो महान् विभूतियाँ परस्पर सन्निकट आयीं। काशी की एक बैठक में कई प्रौढ़ व्यक्ति एकत्रित हुए थे। श्री गुरुजी भी उनमें थे। डा० हेडगेवारजी ने संघ की विचारधारा इस रीति से व्यक्त की कि वह अत्यन्त स्पष्ट थी और साथ ही मन को स्वीकार्य भी। इसी कार्यक्रम के अन्त में डा० हेडगेवारजी ने काशी की संघ-शाखा के संघचालक के रूप में श्री गुरुजी की नियुक्ति की घोषणा की। उसी दिन काशी की संघशाखा का प्रारम्भ हुआ और साथ ही श्री गुरुजी के ध्येय-जीवन का भी आरम्भ।

प्राध्यापकों एवं विद्यार्थियों के अन्तःकरण संघ की विचारधारा से प्रभावित हो रहे थे, अतः संघकार्य दिन-प्रति-दिन सुदृढ़ एवं व्यापक होता गया। एक बार काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय का स्नेह-सम्मेलन था। संघ-स्वयंसेवकों के अनुशासनपूर्ण व्यवहार की छाप अधिकारियों पर ऐसी अधिक थी कि उन्होंने समारोह की सारी व्यवस्था श्री गुरुजी के हाथों सौंप दी। सारा प्रबन्ध बड़ा सुन्दर था। महिलाओं के आने-जाने के लिए अलग से प्रबन्ध किया गया था। समारोह के समय एक प्राध्यापक महोदय महिलाओं के लिये निश्चित प्रवेश द्वार से अन्दर जाने लगे। स्वयंसेवकों ने उन्हें रोका और पुरुषों के लिए बने प्रवेश द्वार से जाने के लिये अनुरोध किया। ये प्राध्यापक पण्डित श्री मदनमोहनजी मालवीय के अत्यन्त प्रियजन

थे, अतः वे अपने लिये सारे द्वार उन्मुक्त मान रहे थे । यह जानकर भी उन्हें रोका गया । अनुशासन तो अनुशासन ही है । व्यवस्था सम्बन्धी नियम कैसे भंग करने दिया जा सकता था ? अनुशासन के मामले में अत्यन्त कड़े रहने वाले वहाँ के कार्यवाह श्री सदगोपालजी ने उन प्राध्यापक महोदय को महिला-प्रवेशद्वार से अन्दर नहीं जाने दिया । उन्हें अपना अपमान सहन नहीं हुआ और वे लौट गये । समारोह भली प्रकार से पूर्ण हुआ और संघ के अनुशासन तथा व्यवस्था की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की गयी ।

समारोह की समाप्ति के बाद इस घटना का विवरण पण्डित श्री मालवीयजी के पास पहुंचा । पण्डित श्री मालवीयजी ने श्री गुरुजी को और श्री सदगोपालजी को बुलवाया । श्री गुरुजी ने सारी घटना श्री मालवीयजी को सुनायी और कहा— व्यवस्था की सारी जिम्मेदारी हम पर सौंपी गयी थी । व्यवस्था सम्बन्धी नियम का पालन हर एक व्यक्ति को करना चाहिये । इस नियम के कारण ही महिला-प्रवेशद्वार से अन्दर जाते समय उनको रोका गया था। इसमें हमारे द्वारा कौन-सा गलत कार्य हुआ ? यदि हमसे वस्तुतः गलती हुई हो तो एक बार नहीं, सौ बार क्षमा माँगने के लिए हम तैयार हैं, पर जब हमारी करनी न्यायपूर्ण एवं समयोचित है तब क्षमा माँगने का प्रश्न ही नहीं उठता ।

डा० हेडगेवारजी को जब यह पता चला तो श्री गुरुजी की अनुशासन-प्रियता और निर्भीकता को देखकर उनको बड़ी प्रसन्नता हुई । इस घटना का उल्लेख डा० हेडगेवार जी अपनी बैठकों में अनेक बार किया करते थे ।

लगभग सन् १९३७ में श्री गुरुजी नागपुर में डा० हेडगेवारजी के अधिक निकट सहवास में आये । तब तक संघकार्य में काफी व्यापकता आ चुकी थी । उसी वर्ष अन्य प्रान्तों की भाँति काँग्रेस ने मध्य-प्रांत में भी विजय प्राप्त करके अपना मन्त्री-मण्डल बनाया । इसके बाद प्रान्तीय काँग्रेस समिति का अधिवेशन नागपुर में हुआ । उस समय की एक बात है । अधिवेशन की विषय-निर्धारण-समिति ने चर्चा के लिए एक विषय 'राष्ट्रीय-स्वयंसेवक-संघ' को रखा । इस सम्बन्ध में विविध जानकारी इकट्ठी करने के लिये डा० हेडगेवारजी से पत्र-व्यवहार करने का भार और अधिकार प्रान्तीय काँग्रेस समिति के कार्यवाह को दिया गया । उन्होंने डा० हेडगेवार जी को पत्र लिखा— संघ के बारे में काँग्रेस की भूमिका क्या है, यह बात अनेक लोगों द्वारा पूछा जा रहा है । अतः हम लोगों ने अधिवेशन में चर्चा का एक विषय

'संघ' को भी रखा है। आपको संघ का ध्येय और नीति स्पष्ट रूप में हमें तुरन्त सूचित करना चाहिए।

श्री गुरुजी ने जब यह पत्र देखा तो उन्होंने श्री डाक्टरजी से कहा—मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यह पत्र सीधे ढंग से नहीं लिखा गया है। चुनाव में प्राप्त विजय से उनका दिमाग ठिकाने पर शायद नहीं है। अतः इस पत्र का 'योग्य' उत्तर देना चाहिये।

डाक्टर साहब को श्री गुरुजी का विचार सही प्रतीत हुआ। उन्होंने काँग्रेस-कार्यवाह को लिखा— पिछले बारह वर्षों से हम यह कार्य करते आ रहे हैं। अब तक अनेक आम सभाओं में संघ का उद्देश्य विस्तार के साथ बताया जा चुका है। आप भी नागपुर में ही रहते हैं। अतः संघ के बारे में स्वाभाविक ही आपको जानकारी है। उससे अधिक बताने लायक मेरे पास कुछ है, ऐसा नहीं लगता।

काँग्रेस-कार्यवाह ने डाक्टरजी के इस पत्र का जो उत्तर भेजा, उससे श्री गुरुजी का संदेह सत्य ही सिद्ध हुआ। उन्होंने लिखा— आपका उत्तर मूल विषय को बगल देने वाला है। जो प्रश्न हमने अपने पत्र में पूछा था, उसका उत्तर पत्र में नहीं है। अतः नीचे दिये गये विषयों पर आप स्पष्टीकरण दें।

इसके साथ ही उन्होंने एक लम्बी प्रश्नावली अपने पत्र के साथ डाक्टर जी के पास भेज दी। डाक्टरजी ने काँग्रेस-कार्यवाहजी के पत्र के उत्तर में लिखा- मेरे उत्तर को आपने 'बगल देने वाला' उत्तर बतलाया। परमेश्वर की कृपा से ऐसे शब्द मेरे पास नहीं हैं। अपने पत्र-व्यवहार में आपको अधिक जिम्मेदारी के साथ शब्दों का प्रयोग करना चाहिए। किसी परीक्षा में बैठकर प्रश्नों का उत्तर देने का समय बीत चुका है। संघ और काँग्रेस के परस्पर सम्बन्धों के बारे में तो यही कहना है कि अपने-अपने क्षेत्र में काम करने का पूर्ण अवसर देकर सम्पूर्ण देश के कल्याण की दृष्टि से परस्पर आदर का भाव रखना ही उचित रहेगा।

काँग्रेस के अधिवेशन में संघ पर चर्चा के लिए यह सारा पत्र-व्यवहार सबके सामने रखा जाना आवश्यक था। यह पत्र-व्यवहार देखकर अध्यक्ष श्री जमनालालजी बजाज को अपने पक्ष की भूल दिखलायी दी। उसमें भी 'बगल देना' शब्द के प्रयोग में तो भारी गलती थी। इस पत्र-व्यवहार को दिखलाने से तो काँग्रेस के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव भी लाया जा सकता है, अतः सभी सदस्यों के सामने इस पत्र-व्यवहार को रखने का साहस उन्हें नहीं हुआ। परिणाम यह हुआ कि अधिवेशन के विषय-तालिका से संघ को

निकाल दिया गया। चर्चा के लिए 'संघ' विषय को महत्वपूर्ण स्थान देने की बात पहले सोची गयी थी, पर अब छोड़ दिया गया।

डाक्टरजी एवं श्री गुरुजी के परस्पर सम्बन्ध दिन-प्रति-दिन बढ़ रहे थे। सन् १९४० में नागपुर में संघ-शिक्षा-शिविर चल रहा था। डाक्टरजी इस शिविर में केवल दो दिन भाग ले सके। पहले श्री गुरुजी को भाषण देने के लिए कहा गया। उस भाषण का विषय था 'शिवाजी द्वारा जयसिंह को लिखा गया पत्र'। अत्यन्त ओजस्वी वाणी में गुरुजी का भाषण तीन घंटे तक चलता रहा। वक्तृत्व में विषय का उद्घाटन और प्रतिपादन मानों अपनी पूर्ण गरिमा के साथ अभिव्यक्त हुआ था। भाषण हृदय को पुलकित और विचारों को उत्प्रेरित करने वाला था। इस भाषण को सुनकर डाक्टर जी के मन में श्रीगुरुजी के प्रति अभिमान और आनन्द की भावना भर आयी। बाद में जब डाक्टर जी रुग्ण-शय्या पर पड़े तब मिलने के लिए आने वाले स्वयंसेवकों से पूछते कि सबसे उत्तम भाषण किसका रहा। रह-रहकर श्री गुरुजी के भाषण की सराहना होती।

पहले डाक्टर जी चिन्तातुर होकर कहा करते थे कि 'मुझे जैसा व्यक्ति चाहिये, अभी तक नहीं मिला', परन्तु उनको अन्तिम दिनों में एक बड़ा ही समाधान था। श्री गुरुजी की उपलब्धि से उनके आन्तरिक समाधान एवं श्रेष्ठ आनन्द का भाव उनके चेहरे पर स्पष्ट दिखलायी देता था। विशेषत: अन्तिम कुछ दिनों में श्री गुरुजी के प्रति अपने सूक्ष्म अवलोकन के बारे में वे मुझसे खुलकर कहा करते थे।

डाक्टर जी जब नासिक में अस्वस्थ थे, उन दिनों उनकी सेवा-सुश्रूषा श्रीगुरुजी ने कैसे की, यह एक बार डाक्टरजी ने मुझ से बतलाया था। एक दिन तो पूरे छः घंटे तक डाक्टरजी की नाड़ी धीमी चलती रही। रात्रि-रात्रि जागरण करके छोटी-छोटी आवश्यकताओं के प्रति भी श्री गुरुजी कितना सतर्क रहा करते थे, इसका वर्णन करते हुए डाक्टरजी कहते थे कि एक शब्द में कहें तो वे माँ के समान ही सेवा करते थे। श्री गुरुजी पर डाक्टरजी का अत्यन्त विश्वास था।

मैं हमेशा उनके पास ही रहा करता था। अपनी मृत्यु के तीन दिन पहले उन्होंने मुझे अपने पास बुलाया और एक विचित्र प्रश्न किया— संघ के सर्वश्रेष्ठ अधिकारी की मृत्यु हो जाने पर क्या उसकी अन्त्य-यात्रा सैनिक पद्धति से निकाली जायेगी ?

यह पूर्णत: स्पष्ट था कि मन को व्यथित करने वाला यह प्रश्न

किसके बारे में किया जा रहा है । विषय को टाल देने के लिये मैंने कहा— आपकी औषधि लेने का समय हो गया है ।

मेरे मन का भाव उनके ध्यान में आ गया । मुझे और निकट बुलाकर उन्होंने कहा— संघ के सर्वश्रेष्ठ अधिकारी की मृत्यु होने पर उसकी अन्त्य-यात्रा सैनिक पद्धति से निकाला जाना उचित नहीं होगा ।

फिर थोड़ी देर तक रुककर उन्होंने कहा– संघ क्या है, इस बात की पूरी कल्पना गुरुजी को है । संघ के बारे में अनेक लोगों की अनेक कल्पनाएँ हैं, परन्तु श्री गुरुजी का विचार परिपूर्ण है ।

उस दिन डाक्टरजी द्वारा कहे गये ये शब्द मुझ तक ही सीमित रहे । आखिर वह अशुभ घड़ी भी आ ही गयी । संघ-कार्य की सारी जिम्मेदारी श्री गुरुजी को सौंपकर डाक्टरजी ने सदा के लिए विदाई ले ली । श्री गुरुजी तथा अन्य सभी अत्यन्त शोकाकुल हृदय से वहाँ खड़े थे । डाक्टर साहब का अन्तिम दर्शन करने के लिए संघ-शाखाओं के हजारों स्वयंसेवक नागपुर दौड़े चले आये । तब अन्तिम यात्रा की तैयारी चल रही थी, तब कई स्थानीय व्यक्तियों ने सुझाव दिया कि अन्त्य-यात्रा सैनिक पद्धति से निकालनी चाहिये । जिन्होंने यह सुझाव दिया था, उनकी ऐसी मान्यता थी कि संघ जैसा अनु-शासन-बद्ध जितना शक्तिशाली जैसा प्रबल संगठन है, ऐसे संगठन के जन्म-दाता की अन्त्य-यात्रा वस्तुतः सैनिक पद्धति से होनी चाहिए । उन लोगों ने केवल सुझाव ही नहीं दिया, अपितु आग्रह भी किया ।

डाक्टरजी द्वारा सौंपे गये कार्य की जिम्मेदारी को स्वीकार करते ही उसी दिन उसी क्षण श्री गुरुजी के व्यक्तित्व की विचित्र परीक्षा हो रही थी । इस परीक्षा की घड़ी में भी श्री गुरुजी खरे निकले और उनका व्यक्तित्व निखरकर सबके सामने आया । श्री गुरुजी किसी के दबाव में आये नहीं । डाक्टरजी का कहना ही सच निकला । श्री गुरुजी को संघ-कार्य की समग्र कल्पना थी । संघ कोई निजी सैनिक संगठन नहीं है । संघ तो एक ऐसा विशाल परिवार है, जिसमें कल या परसों सम्पूर्ण समाज का समावेश हो जायेगा, डाक्टरजी इस परिवार के प्रमुख थे, अतः उनका अन्तिम संस्कार सादगीपूर्वक ही किया जाना चाहिए । पिता के निधन होने पर जिस प्रकार पुत्र सारे कार्य करता है, वैसे ही सब क्रिया-कर्म श्री गुरुजी ने किया । श्री गुरुजी ने ही चिता को अग्नि-स्पर्श कराया । निधनोपरान्त सारे कार्यों को पारिवारिक स्वरूप ही प्रदान किया गया ।

डाक्टरजी के चले जाने के बाद उनके कार्य की सारी जिम्मेदारी बड़े

लड़के के नाते श्री गुरुजी ने स्वीकार की और संघ-कार्य की प्रगति और विस्तार ही बतला रहा है कि उन्होंने इस गुरुतर दायित्व का निर्वाह किस प्रकार किया। कार्य की प्रगति को देखकर मन में यह भाव उत्पन्न हो कि पिता ही पुत्र के रूप में पुनः जन्म लेकर आया है, तो उसमें कोई आश्चर्य नहीं।

●

(तीन)

जीवन में परिवर्तन

यह सर्वथा सही है कि यदि कोई स्वयं में परिवर्तन न लाने की बात ठान ले तो राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ जैसे लोक-संग्रही संगठन में वह सफलता-पूर्वक काम नहीं कर सकता। लोगों को जोड़ना, उन्हें राजी रखना, उनमें ध्येय-निष्ठा जगाना, उन्हें अनुशासन प्रिय बनाना और उन्हें स्नेह-सूत्र में बाँधना ही संगठन-कार्य है। इसके लिये संगठन-कर्ता को जितना लक्ष्योन्मुख और आग्रही रहना होता है, उसे व्यक्तिगत सम्बन्धों के मामले में उतना ही कोमल और स्नेहार्द्र रहना पड़ता है। लोगों को संगठित करने का यह आचरण-सूत्र जितने अधिक रूप में मूर्तिमान् था श्री डाक्टरजी के जीवन में, उतने ही अधिक रूप में साकार था उन श्री गुरुजी के जीवन में, जिन्हें श्री डाक्टरजी की जीवन-चर्या को अत्यन्त निकट से अवलोकन-अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हुआ था। श्री गुरुजी के जीवन में जैसा विलक्षण परि-वर्तन आया, उसे देखकर अनेक लोग, जिन्हें श्री गुरुजी की पूर्व-जीवन-धारा से परिचय-पहिचान थी, वे अनेक लोग आश्चर्य-चकित रह जाया करते थे।

अपने विशद ज्ञान, अपने बुद्धि-वैभव, अपनी प्रखर तर्क-क्षमता के कारण लोगों को चुनौती देना, लोगों का आह्वान करना और फिर सामने वाले की बोलती बन्द कर देना श्री गुरुजी के स्वभाव का एक अंग था। ऐसी ही थी श्री गुरुजी की पूर्व-प्रकृति। अपनी विद्वत्ता की व्यापकता को व्यक्त करना और तर्क-कठोर-युक्तिवाद के द्वारा प्रतिपक्ष वाले के धुर्रे बिगाड़ देने की प्रवृत्ति श्री गुरुजी के पूर्व-जीवन में विद्यमान थी। श्री डाक्टरजी का श्री गुरुजी ने जो प्रथम भाषण सुना, वह उन्होंने सद्भावपूर्वक नहीं, अपितु उपेक्षा के साथ,

अहंकार-जनित-अलिप्तता के साथ सुना। किन्तु यह उपेक्षा, यह रूखापन, यह अलिप्तता अधिक दिन तक टिक नहीं पायी। श्री गुरुजी ने यह अनुभव किया कि यदि सचमुच लक्ष्य-सिद्धि के लिए समाज के बीच कार्य करना है तो केवल पाण्डित्य अथवा मात्र तार्किकता किसी काम की वस्तु नहीं है। ये सब व्यर्थ और बाधकस्वरूप ही हैं।

श्री गुरुजी के जीवन पर श्री डाक्टरजी के जीवन का प्रभाव विलक्षण रूप से हुआ और इस प्रभाव का ही परिणाम था कि श्री गुरुजी का जीवन संघमय हो गया। मानसिक रोड़े दूर हो जाने के बाद श्री गुरुजी की सम्पूर्ण अनमोल गुण-सम्पदा संघ-कार्य के लिए समर्पित हो गयी। ऐसा प्रतीत होता है मानो यह सारा क्रम बड़े अलौकिक और ईश्वरीय संकेत के अनुसार घटित हुआ है। अपने उत्तराधिकारी का श्री डाक्टरजी ने चयन किया। श्री गुरुजी ने अपने आराध्य को पहिचान कर उसके प्रति अपने जीवन को समर्पित कर दिया। अकड़ गयी, ऐंठ गयी, अहंकार गया, अभिमान गया, उपहास गया, बस, जीवन में बच रहा मात्र समर्पण-भाव— विनम्र एवं पूर्ण समर्पण।

(चार)

योग्य दिशा की ओर

सन् १९४० के मई मास में संघ-शिक्षा-शिविर पूना के न्यू इंगलिश स्कूल में लगा था। कुछ दिनों बाद श्री डाक्टरजी श्री गुरुजी के साथ शिविर में शाम के समय पधारे। उनके पधारने के कुछ समय पूर्व ही दिन में एक हिन्दुत्ववादी नेता का गरमागरम भाषण बौद्धिक के रूप में हुआ था।

वक्ता ने हिन्दू समाज पर अहिन्दुओं द्वारा होने वाले आक्रमण की चर्चा करते हुए राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का आह्वान किया प्रत्याघात करने के लिए। उन्होंने महाभारत की द्यूतक्रीड़ा का उदाहरण देते हुए कहा था कि आज हमें भीमसेन की आवश्यकता है, जिसने द्रोपदी की दुरावस्था देखकर सहदेव से अग्नि लाने के लिए कहा था। धर्मराज युधिष्ठिर की निन्दा करते हुए उन्होंने ऐसे विचार व्यक्त किये थे कि द्यूतक्रीड़ा खेलने वाले हाथों को ही

जला दिया जाना चाहिये। वक्ता महोदय ने एक तरह से संघ की तथा डाक्टर श्री हेडगेवार की ही परोक्ष रूप से आलोचना की थी।

उसी दिन रात्रि में श्री डाक्टरजी की इच्छानुसार भोजनोपरान्त श्री गुरुजी का बौद्धिक हुआ। इस बौद्धिक में श्री डाक्टरजी भी उपस्थित थे। श्री गुरुजी ने कहा– इस समय समाज में चारों ओर प्रक्षोभोत्पादक परिस्थितियाँ हैं। ऐसी कठिन परिस्थिति के होते हुए भी समाज में जन-जन को संगठित कर सकने वाले, योग्य दिशा की ओर बढ़ सकने वाले तथा अपने चरित्र सम्पन्न सदाचरण के द्वारा समाज को अपने पीछे ले चलने वाले असंख्य दृढ़व्रती कार्यकर्ताओं का निर्माण ही आज के लिए सही मार्ग है। धर्मराज की निन्दा करने वाले चाहे जो बोलें, किन्तु हम सब यह न भूलें कि धर्मराज थे, इसीलिये बाकी चारों भाई इकट्ठे रह सके और विजय प्राप्त कर सके। आज हमारे बीच ऐसे ही एक धर्मराज हैं, इसीलिये समाज की ऐसी शोचनीय और असंगठित अवस्था में भी संघकार्य बढ़ रहा है। धर्मराज का जीवन हमारे इतिहास का गौरव है, वे धर्मराज हमारे समाज के आदर्श हैं।

(पाँच)

अटपटी, किन्तु सोद्देश्य बात

व्यक्ति को परख लेने की शक्ति डा० हेडगेवारजी में अत्यन्त अचूक थी। श्री गुरुजी में निहित क्षमताओं, दुर्लभ गुणों तथा राष्ट्रकार्य के प्रति असीम-उत्कट लगन को डाक्टरजी ने आरम्भ में ही पहचान लिया था। श्री डाक्टरजी को पूर्ण विश्वास था कि मेरे बाद माधवराव संघकार्य की जिम्मेदारी को सँभाल लेंगे और कार्य-विस्तार कर सकेंगे और इसी सम्भावना से प्रेरित रहते थे श्री डाक्टरजी के व्यवहार श्री गुरुजी के प्रति।

श्री गुरुजी जब काशी हिन्दू विश्व विद्यालय में अध्यापन कर रहे थे, उन दिनों की बात है। सन् १६३२ में संघ का विजयादशमी महोत्सव निकट आ रहा था। श्री डाक्टरजी ने मुझसे कहा कि पत्र लिख कर श्री गुरुजी को नागपुर बुलवा लो। श्री डाक्टरजी की इच्छानुसार श्री गुरुजी और उनके

सहयोगी स्वयंसेवक श्री सदगोपालजी नागपुर पहुंचे। उत्सव के दिन श्री डाक्टरजी ने मुझे दो पुष्पहार लाने का आदेश दिया।

उत्सव में स्वयंसेवकों द्वारा प्रात्यक्षिक होने पर श्री डाक्टरजी ने अपने प्रास्ताविक भाषण में कहा कि अन्य प्रांतों में भी संघकार्य का प्रचार हो रहा है। काशी जैसे स्थान पर संघ का प्रचार करने वाले श्री माधवराव गोलवलकर यहां आये हुए हैं। ऐसा कह कर उन्होंने वे पुष्पहार श्री गुरुजी और श्री सदगोपालजी को पहना दिये। संघ की कार्य-पद्धति में कभी न बैठने वाली यह अटपटी बात श्री डाक्टरजी ने श्री गुरुजी के प्रति की, पर यह बात थी सोद्देश्य। इस क्रिया से हम लोगों के मन में सहज कल्पना आ गयी कि श्री डाक्टरजी के मन में श्री गुरुजी के लिए किस प्रकार के विचार चल रहे हैं।

(छः)

तत्परता और निष्ठा से प्रभावित

संघकार्य का दायित्व सँभालने के योग्य बनाने की दृष्टि से श्री डाक्टरजी का सदा यह प्रयास रहा करता था कि श्री गुरुजी अधिक से अधिक मेरे सान्निध्य में रहें। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए श्री डाक्टरजी का आग्रह यहाँ तक रहता कि प्रवास में भी श्री गुरुजी मेरे साथ रहें। सन् १६३६ का प्रसंग है। पूना में 'भगवा झण्डा' नामक चित्रपट का उद्घाटन होने वाला था। उद्घाटन के अवसर पर सिनेपट वालों ने श्री डाक्टरजी से उपस्थिति के लिये बड़ा अनुरोध किया था। श्री डाक्टरजी पूना गये, साथ में श्री गुरुजी भी।

इस समारोह से लौटते समय वे दोनों विश्राम करने के लिये देवलाली, गये, जहाँ माननीय बाबासाहेब घटाटे भी थे। वहीं श्री डाक्टरजी को तेज बुखार हो गया। किसी भी प्रकार वह बुखार उतर नहीं पा रहा था। श्री डाक्टरजी बुखार में भी संघकार्य की ही चर्चा करते। उस चर्चा में अपने सगे-सम्बन्धियों के नामों का उल्लेख तक नहीं होता था। यही क्यों, जब स्वास्थ्य

अधिक गम्भीर हो गया तब भी श्री डाक्टरजी ने यही कहा कि इसकी सूचना नागपुर न भेजी जाये।

श्री गुरुजी ने पूछा— क्या, किसी को नागपुर से बुला लिया जाये ?

श्री डाक्टरजी ने तुरन्त कहा— इसकी क्या आवश्यकता है ? तुम जो हो यहाँ ! नासिक श्री नानातेलंग और अपने संघ के स्थानीय कार्यकर्ताओं के रहते हुए मुझे कोई चिन्ता नहीं है।

इसी अवसर की एक और बड़ी प्रिय घटना है। वहाँ के डाक्टर श्री दामले ने श्री गुरुजी से कहा— श्री डाक्टरजी को विश्राम की आवश्यकता है। उनके लिये रात्रि-जागरण उचित नहीं। यथा-सम्भव रात को दस बजे तक श्री डाक्टरजी को सो जाना चाहिए।

श्री गुरुजी ने निवेदन किया— इस दृष्टि से हमारे प्रयास चल रहे हैं, किन्तु आप भी स्वयं श्री डाक्टरजी को कह कर देखें।

यह बातचीत श्री डाक्टरजी के कानों तक पहले ही पहुंच गयी थी। सो जाने की सलाह देने के लिये जब डा०श्रीदामले रात को आये तो श्री डाक्टरजी ने डा० श्री दामले से वार्तालाप आरम्भ कर दिया। सारे लोग चर्चा में इतने लीन थे कि समय का भान ही नहीं रहा। इसी बीच श्री गुरुजी ने डा० श्री दामले को घड़ी दिखला कर समय का ध्यान दिलाया। इस समय रात के बारह बज चुके थे।

जिस प्रकार स्वामी श्री विवेकानन्दजी ने अपने गुरु के जीवन को गहराई से परखा और निरखा, उसी प्रकार श्री गुरुजी ने श्री डाक्टरजी के जीवन को बहुत निकट से निरखा है परखा है और श्री डाक्टरजी के जीवन में परिव्याप्त संघकार्य के प्रति सतत तत्परता और अटूट निष्ठा ने श्री गुरुजी को बहुत प्रभावित किया है।

(सात)

दस बजे

श्री डाक्टरजी के निधन के बाद, दसवें दिन अकोला में सभी प्रमुख कार्यकर्ताओं की बैठक थी। श्री गुरुजी ने कहा— मैं अकोला नहीं आऊँगा, क्योंकि नागपुर में श्राद्ध के लिये रुकना है।

मैं सबेरे अकोला पहुंचा। स्नान आदि के पश्चात बैठक आरम्भ हुई। मुझसे यह पूछा गया— क्या श्री डाक्टरजी से तुम्हारी कुछ बातचीत हुई थी ?

मैंने पूरा विवरण प्रस्तुत कर दिया। जब चिकित्सा करने वाले डाक्टरों ने श्री डाक्टर जी का लम्बर पंचर करने की बात कही तो श्री डाक्टरजी ने मुझसे कहा— 'कृष्णा ! गुरुजी को बुला लो'।

तब श्री गुरुजी को बुलाया गया। श्री डाक्टरजी ने श्री गुरुजी से कहा— 'माधवराव ! यह सारा कार्य और ये सारे कार्यकर्ता तुम्हारे जिम्मे किये। अब मेरा लम्बर पंक्चर करो या और कुछ करो'।

मेरी बात सुनकर सभी ने कहा कि अब कोई बात शेष नहीं रही। माधवराव सरसंघचालक बनेंगे। उस समय सबेरे के दस बजे थे।

जब हम नागपुर लौटे तो श्री गुरुजी स्टेशन पर उपस्थित थे। मुझे देखते ही उन्होंने पूछा— कृष्णा ! कितने बजे।

मैंने कहा— दस बजे।

श्री गुरुजी बोले—तो ठीक जम गया।

वास्तव में बात यह हुई थी कि श्राद्ध के समय कौवा पिण्ड को नहीं उठा रहा था। श्री डाक्टरजी के निकटवर्ती बार-बार आश्वासन दुहरा रहे थे, पर कोई लाभ नहीं हो रहा था। आखिरकार, श्री गुरुजी ने सभी को अलग किया और स्वयं आगे बढ़े। उन्होंने कहा— आपका सौंपा हुआ कार्य पूरा होगा। प्राणपण से उसे निभाऊँगा।

और वाक्य पूर्ण होने के पूर्व ही कौवा पिण्ड ले गया। उस समय ठीक दस बजे थे।

(आठ)

शब्दों के पीछे अनुभूति का बल

एक बार सम्माननीय डा०श्री श्यामाप्रसाद मुखर्जी कुछ गम्भीर समस्याओं पर विचार-विमर्श करने की इच्छा से डाक्टर हेडगेवारजी से मिलने के लिए आये। उस समय डाक्टर साहब अत्यधिक बीमार थे। वे बिल्कुल इस

स्थिति में नहीं थे कि अधिक समय तक बातचीत कर सकें। श्री गुरुजी ने डाक्टर मुखर्जी से निवेदन किया– आप मुझसे प्रारम्भिक बात कर लें। फिर कुछ शेष यदि रह जाता है तो आप अन्तिम उत्तर के लिये डाक्टर साहब से मिल सकते हैं।

वे राजी हो गये। डा० मुखर्जी तथा श्री गुरुजी में एक लम्बी बहस हुई। उन्होंने कई प्रश्न पूछे और श्री गुरुजी उन प्रश्नों का उत्तर देते रहे। बार-बार वे अपने प्रश्नों को दोहराते और गुरुजी बिना थके बार-बार उनके प्रश्नों के उत्तर देते। यह सब हो जाने पर श्री गुरुजी ने अपने मन में समाधान मान लिया और उन्होंने मन-ही-मन सोचा कि अब डा० मुखर्जी औपचारिक रीति से डाक्टर साहब से मिलकर चले जायेंगे।

डाक्टर साहब से मिलाने के लिये श्री गुरुजी डा० मुखर्जी को ले गये। डाक्टर साहब से मिलने पर डा० मुखर्जी ने पुनः वे ही प्रश्न पूछे, जिनका उत्तर गुरुजी दे चुके थे। गुरुजी सचिन्त हो उठे कि यह बातचीत यदि देर तक चलती रहेगी तो डाक्टर साहब की तबीयत पर इसका प्रभाव बुरा पड़ेगा। संयोग की बात डाक्टर साहब ने थोड़े ही शब्दों में उत्तर दे दिया।

डाक्टर साहब ने जो उत्तर दिया, उसमें वही अर्थ सन्निहित था, जो गुरुजी के द्वारा दिये गये उत्तर में था, परन्तु गुरुजी आश्चर्यचकित थे, जब डाक्टर मुखर्जी ने डाक्टर साहब से कहा कि अब मैं पूर्णतः सन्तुष्ट हूं। डाक्टर साहब ने वही बात कही थी, जो गुरुजी अपने उत्तरों में कह चुके थे, परन्तु डा० मुखर्जी को सन्तोष हुआ डाक्टर साहब के उत्तर से।

इस घटना का गुरुजी के जीवन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। गुरुजी ने अनुभव किया कि व्यक्ति के चरित्र-तप-त्याग की मात्रा के अनुपात में ही उसके शब्दों में शक्ति का समावेश होता है। तर्क और बहस बुद्धि के चमत्कार हो सकते हैं पर ये सब उस सर्वोच्च शक्ति के समक्ष तुच्छ हैं। शब्दों के पीछे यदि हृदय की अनुभूति नहीं होती तो वे कोरे शब्द व्यर्थ ही जाते हैं।

(नौ)

पूजा की श्रेष्ठ विधि

श्री गुरुजी के मन में बड़ा अन्तरद्वन्द था कि किस पथ को अपनाऊँ– ऐकान्तिक साधना को अथवा सामाजिक सेवा को। पूज्य श्री डाक्टरजी से

श्री गुरुजी का सहवास क्रमशः बढ़ता चला गया। श्री डाक्टरजी ने अपने आचरण से यह संस्कार श्री गुरुजी के अन्तःकरण पर भलीभाँति अंकित कर दिया कि व्यक्तिगत उन्नति की अपेक्षा समष्टिगत उन्नति अधिक महत्वपूर्ण है और अन्ततोगत्वा अपनी जीवन-लीला के समाप्त होते-होते श्री डाक्टर जी ने राष्ट्रीय-स्वयंसेवक-संघ का उत्तरदायित्व श्री गुरुजी के कन्धों पर रख दिया।

उत्तरदायित्व सौंपने की दृष्टि से श्री डाक्टरजी योजनापूर्वक रीति से श्री गुरुजी को आगे करते गये। श्री डाक्टरजी ने उनको सरकार्यवाह नियुक्त किया और उस वर्ष विजयादशमी महोत्सव पर उत्सव में उन्हें बोलने के लिए कहा। संगठन की उस शैशवावस्था में ऐसा करना आवश्यक भी था। फिर २१ जुलाई १९४० को मासिक श्राद्ध-दिवस पर श्री गुरुजी ने पूज्य श्री डाक्टर साहब को अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए कहा– फूलों से किसी देवता की पूजा करना, पूजा का गौण मार्ग है। 'शिवो भूत्वा शिवं यजेत्', यही पूजा की श्रेष्ठ विधि है। हम सब भी श्री डाक्टर साहब बनें, यही उनकी श्रेष्ठ पूजा होगी।

: १६ :

संगठन कार्य और नेतृत्व

(एक)

कठोर जीवन का प्रभाव

सरसंघचालक होने से पूर्व मैंने परम पूजनीय श्री गुरुजी को टेबुल पर पद्मासन में बैठ कर भाषण देते हुए सुना है। परन्तु सरसंघचालक होने के बाद उन्होंने अपने में ऐसी कोई विशेषता नहीं रखी, जिससे वे लोगों को अलग-से या विशिष्ट-से दिखलायी दें। वे दिन में केवल एक बार थोड़ा-सा भोजन करते थे। चाय के सिवाय दिन भर वे कुछ नहीं लेते थे, दूध फल इत्यादि भी नहीं। जब समाज में असंख्य लोग ऐसे दिखायी देते हैं, जिनको ठीक से खाने के लिये भी नहीं मिलता, तब शरीर धारण की आवश्यकता से अधिक खाने के लिये उनका मन तैयार नहीं होता था। फोटो खिंचवाने में उन्हें अत्यन्त अरुचि थी। 'इससे मेरी आयु कम होती है, मुझे कष्ट होता है' ऐसा वे कहते थे। कभी-कभी हाथ से या तौलिये से वे मुंह ढक लिया करते थे। अत्यन्त रुग्ण अवस्था में भी किसी कार्यक्रम को स्थगित नहीं करते थे। सन् १९७३ में जयपुर तथा कुछ अन्य विभागों के कार्यकर्ताओं का दो दिन का कार्यक्रम था, सार्वजनिक भाषण भी था। स्वास्थ्य बहुत खराब था, ज्वर भी था। एक दिन तो १०५ डिग्री ज्वर रहते हुए भी, उन्होंने अपने सारे कार्यक्रम निभाये। यद्यपि कार्यक्रम का सारा भार तो श्री गुरुजी पर रहा करता था, इस पर भी अच्छे स्वास्थ्य वाला व्यक्ति ८, १०

दिन से अधिक उनके साथ चल नही पाता था और उसे कुछ विश्रान्ति की आवश्यकता अनुभव होने लगती थी। उनका जीवन एक कठोर साधना का जीवन था।

जो भी व्यक्ति उनके सम्पर्क में आता था, वही उनका प्रशंसक बन जाता था। आन्ध्र का सन् १९५० का संघ-शिक्षा-शिविर नेल्सर में लगा था। स्व० श्री बेझवाड़ा रामचन्द्र रेड्डी ने उस वर्ग के सर्वाधिकारी पद का उत्तर-दायित्व स्वीकार किया था। श्री रेड्डी पैंतीस वर्ष की आयु में मद्रास विधान सभा के अध्यक्ष बने थे। बाद में लोकसभा के भी सदस्य रहे। संघ-शिक्षा-शिविर में श्री गुरुजी के सहवास में वे तीन दिन रहे और अत्यधिक प्रभा-वित हुए। जब श्री गुरुजी मद्रास जाने लगे, उस समय मोटर स्टार्ट नहीं हुई। फिर मोटर को धक्का लगाना पड़ा। श्री रेड्डी भी सबके साथ धक्का लगाने लगे, ऐसा प्रभाव पड़ा था श्री गुरुजी के सहवास का। आगे आजीवन उनका श्री गुरुजी के साथ घनिष्ट सम्बन्ध बना रहा।

(दो)

संवेदनशील शरीर

विलासपुर में स्वयंसेवकों का एक छोटा-सा कार्यक्रम आयोजित था। उस कार्यक्रम में श्री गुरुजी का बौद्धिक हो रहा था। सारे स्वयंसेवक शान्त भाव से बैठे हुए थे तथा मन लगाकर बौद्धिक सुन रहे थे। सर्वत्र पूर्ण शान्ति थी। वातावरण में यदि कुछ सुनायी दे रहा था तो मात्र श्री गुरुजी का भाषण।

भाषण देते-देते श्री गुरुजी अचानक रुके और एकदम कड़क भरे स्वर में डाँटते हुए उन्होंने कहा—कौन है यह धृष्ट ? आबा ! जरा देखना तो !

सारे स्वयंसेवक चौंक पड़े। शाखा के मुख्य शिक्षक और स्थानीय प्रचा-रक सोच नहीं पा रहे थे कि अचानक ऐसा क्या हो गया ? जिस ओर श्री गुरुजी ने अँगुली उठायी थी, उसी ओर श्री आबाजी थत्ते चल दिये। उन्हीं के पीछे मुख्य शिक्षक तथा प्रचारक भी चल पड़े। निर्दिष्ट स्थान पर पहुंचकर उन्होने देखा तो यह पाया कि एक स्वयंसेवक ने चोरी से चुपचाप

कैमरे में श्री गुरुजी का फोटो ले लिया है । वह स्वयंसेवक नया था, उसे पता नहीं था कि ऐसा करना उचित नहीं है । उसके हाथ से कैमरा लिये जाने के बाद श्री गुरुजी अपने बौद्धिक में पूर्ववत् लीन हो गये । पहले भी अपने बौद्धिक में पूर्णतः खोये हुए थे, फिर भी बौद्धिक देते-देते न जाने कैसे उसे देख लिया ? बौद्धिक के प्रवाह में भी उनकी दृष्टि कितनी चौकन्नी रहती थी?

श्री गुरुजी को फोटो खिंचवाना पूर्णतः अप्रिय था । श्री गुरुजी का शरीर इतना संवेदनशील था कि फोटो लेने पर उनके शरीर में जलन-सी होने लगती थी । कोई भी स्वजन फोटो लेने का प्रयास अथवा आग्रह करता तो श्री गुरुजी यही कहते—क्या तुम यही चाहते हो कि मेरी मृत्यु शीघ्र हो जाये ?

बम्बई में शत-वर्षीय वेद-मूर्ति श्री सातवलेकर जी का शतायु-समारोह हो रहा था । श्री गुरुजी उस समारोह में आमन्त्रित थे । संयोग से मैं भी उस समारोह में गया हुआ था । जब श्री गुरुजी उस समारोह में पहुंचे तो उन्होंने देखा कि चारों ओर फोटोग्राफर कैमरा लिये हुए खड़े हैं । मना करने पर कोई मानने वाला था नहीं । अतः श्री गुरुजी ने अपने मुँह पर अपना गमछा डाल लिया । इस समारोह में श्री गुरुजी के छायाचित्र गमछा-सहित हा आये हैं ।

हाँ, एक बार उन्होंने खुलकर पूरी छूट दे दी, अपने महाप्रयाण के कुछ मास पूर्व बंगलौर के कार्यक्रम में । पत्रकार परिषद में आये हुए पत्रकारों को एवं अन्य लोगों को छाया चित्र उतारने की उन्मुक्त अनुमति प्रदान कर दी । 'छायाचित्र लेने वाला मेरी आयु का शोषण करता है और मृत्यु की ओर ढकेलता है' ऐसा कहने वाले श्री गुरुजी ने ही अब इस प्रकार से सोचना आरम्भ कर दिया—'अब जीवन-स्नेह समाप्त होता आया है, ज्योति क्षीण-तर हो रही है, छायाचित्र उतार कर और अधिक क्या शोषण हो सकेगा ? अतः होने दीजिये आप सभी का समाधान ।'

(तीन)

मैं अकेला नहीं हूं

उत्तर प्रदेश के पश्चिमी जिलों के स्वयंसेवकों का शिविर वृन्दावन में लगा था । उन दिनों मैं भी वृन्दावन में ही था । मैं भी शिविर में गया । मैं

जानता था कि मेरे यहाँ प्रसाद पाने से श्री गुरुजी को प्रसन्नता होती है, अतः चलने के पूर्व मैंने उन्हें निमन्त्रण देते हुए कहा—कल प्रसाद पाने आश्रम में आइयेगा।

श्री गुरुजी बोले—मैं अकेला नहीं हूं। बताइये, हम कितने व्यक्ति आयें ?

मैंने कहा—चाहे जितने व्यक्ति आप अपने साथ लायें।

श्री गुरुजी हँसते हुए बोले—हम तो चार-पाँच सौ हैं।

मैंने और भी हँसते हुए कहा—क्या हर्ज है ? आप सभी ही आइये।

दूसरे दिन बड़े ठाट-बाट से बैण्ड-बाजा बजाते हुए चार-पाँच सौ गण-वेष-धारी स्वयंसेवकों के साथ श्री गुरुजी आश्रम में पधारे। सभी ने बड़े प्रेम से प्रसाद पाया। उस दिन तो श्री गुरुजी हँसते ही रहे।

(चार)

उनका वह उत्तर

सन् १९४६ के फरवरी मास में कलकत्ता नगर की बात है। एक दिन शाम को कुछ प्रतिष्ठित नागरिकों के साथ चाय-पान का कार्यक्रम था। वहाँ एक प्रौढ़ डाक्टर साहब ने श्री गुरुजी से कहा—आपके संघ के ध्येय से मैं सहमत हूं। किन्तु मैं अब तक यह नहीं समझ पा रहा हूं कि इतने विशाल ध्येय की सिद्धि ऐसे तुच्छ साधनों के द्वारा कैसे होगी ? दक्ष-आरम्-दण्ड-खड्ग-शूल-कबड्डी आदि क्षुद्र कार्यक्रमों के माध्यम से इतना उच्च और अच्छा ध्येय क्या कभी प्राप्त हो सकेगा ?

श्री गुरुजी ने हँसते हुए पूछा—डाक्टर साहब ! इन दिनों आपकी एलोपैथी की मास्टर ड्रग कौन सी है ?

उत्तर आया—पेन्सिलिन।

फिर श्री गुरुजी ने प्रश्न किया—यह पेन्सिलिन किस चीज से बनायी जाती है ?

डाक्टर साहब ने बताया—सब जानते हैं कि जिस सड़े हुए अन्न की दुर्गन्ध को हम बर्दाश्त नहीं कर सकते, ऐसे अन्न से यह ड्रग बनाया जाता है।

श्री गुरुजी बोले—क्या इसका तात्पर्य यह नहीं है कि योग्य लोगों के हाथ में आकर खराब चीज का भी सदुपयोग हो सकता है ? (Does it not mean that even the worst thing can yield the best results at the hand of Experts ?

डाक्टर साहब ने कहा—हाँ।

इस पर तुरन्त श्री गुरुजी ने उसमें एक और वाक्य जोड़ दिया—और यहीं हम हैं, संगठन-विज्ञान के विशेषज्ञ। (And here we are the experts in the Science of Organisation.)

[पाँच]

अपनी बात समझाना

एक बार विश्वविद्यालय में पढ़ने वाले स्वयंसेवक श्री गुरुजी से मिलने के लिये आये। बातचीत अनौपचारिक रूप से ही चल रही थी। संघ-कार्य के विस्तार से ही देश और समाज का हित हो सकता है, इस बात को बताते हुए श्री गुरुजी ने उन स्वयंसेवकों से कहा—अपने समाज के व्यक्ति-व्यक्ति से मिलो, उनसे प्रसन्नचित्त से बात करो।

श्री गुरुजी के ऐसा कहते ही एक स्वयंसेवक ने प्रश्न किया—अपने समाज में लोग इतनी भिन्न-भिन्न प्रकृति के हैं कि क्या कहा जाये। इस प्रकार की भिन्न-भिन्न प्रकृति वाले और विरोधी स्वभाव वाले लोगों से मिलते समय अपने हृदय में प्रसन्नता कसे रह सकती है ?

श्री गुरुजी ने महर्षि पतंजलि के योग-सूत्रों में से एक सूत्र उद्धृत किया।

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्

उस स्वयंसेवक के मन की उलझन को दूर करने के लिये श्री गुरुजी ने इस योगसूत्र का सरल स्पष्टीकरण इस प्रकार किया—

समाज में भिन्न-भिन्न प्रकृति के जो लोग रहते हैं, उन सबका वर्गीकरण करते हुए महर्षि पतंजलि ने सबके चार वर्ग बनाये हैं :—सुखी, दुःखी, पुण्यवान और अपुण्यवान।

जिनके हृदय में भावात्मक दृष्टि से सदैव समाधान रहता है, वे सुखी

हैं। आर्थिक दृष्टि से ये लोग भले सम्पन्न रहें अथवा न रहें, पर इनके मन में सदा सन्तोष रहता है। व्यावहारिक जीवन में इन पर आपत्ति भी आ जाये तो ये लोग विषाद-ग्रस्त नहीं होते। हर्ष हो या कष्ट, समृद्धि हो या विपत्ति, सभी को भगवान का प्रसाद मानते हैं। इसके कारण वे अपने जीवन में सुख और समाधान का अनुभव करते हैं। अपनी योग्यता-प्रतिभा-गुणों के कारण जिस रूप में भी समाज के लोगों की सेवा करने का जो अवसर उन्हें प्राप्त होता है और उसके बदले जो भी रुपया पैसा उन्हें मिलता है, उसी से वे संतुष्ट रहते हैं तथा स्व-कर्तव्य की पूर्ति के आनन्द में वे निमग्न रहते हैं। ऐसे प्रसन्न लोगों को महर्षि पतंजलि ने 'सुखी' कहा है।

दुःखी लोगों से तो हमें हर दिन मिलने का अवसर आता है। इनके जीवन में दुःख और कष्ट ही रहते हैं। गुणवान और चरित्रवान होकर के भी इनके जीवन में एक के पश्चात दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी, इस प्रकार विपत्तियों का ताँता लगा रहता है। उनके ऐसे कष्टपूर्ण जीवन को देखकर अपने को भी यह समझ में नहीं आता कि भगवान ने इनको ऐसी विपन्नावस्था में क्यों डाल रखा है। शारीरिक व्याधि हो अथवा आर्थिक संकट हो अथवा और किसी प्रकार का कष्ट हो, इन लोगों के जीवन पर दुःख-ही-दुःख छाया रहता है।

तीसरा, पुण्यवान लोगों का एक वर्ग है, जिनके व्यावहारिक जीवन में सब प्रकार की समृद्धि रहती है। रुपया-पैसा-वाहनादि का उपयोग प्रचुर मात्रा में ये लोग कर सकते हैं। श्री और सुविधा से सम्पन्न होने के कारण इनका जीवन ऐश्वर्य से भरपूर रहता है। कभी-कभी ऐसे लोग गुणों की दृष्टि से सामान्य स्तर के होते हैं, फिर भी भगवान की कृपा के फलस्वरूप इनका जीवन सुख-सुविधा से परिपूर्ण रहता है।

इन तीनों वर्गों के अतिरिक्त एक और वर्ग के लोगों की ओर महर्षि पतंजलि ने संकेत किया है। ये लोग वृत्ति से नीच होते हैं। अकारण समाज के लोगों को कष्ट देते हैं। अपने छोटे से स्वार्थ को सिद्ध करने के लिए दूसरे का असीम नुकसान कर देने में इनको तनिक भी हिचक नहीं होती। आदि–कवि वाल्मीकि अपने पूर्व-जीवन में जिस प्रकार लूट-मार करके लोगों को कष्ट दिया करते थे, उसी प्रकार की उसी स्तर की क्रिया इन लोगों की भी हुआ करती है। देवर्षि नारद जैसे महापुरुषों के सम्पर्क से ही ऐसे लोगों के जीवन में परिवर्तन आ सकता है। परन्तु सामान्य मनुष्यों के लिए तो वे कष्टकारी ही होते हैं। इन लोगों को महर्षि पतंजलि ने 'अपुण्यवान' कहा है।

अब देखना यह है कि इन चार प्रकार के लोगों से मिलते समय अपने मन का भाव कैसा रहे, जिससे अपने हृदय की प्रसन्नता सदा बनी रहे। इसी का दिग्दर्शन महर्षि पतंजलि ने इस सूत्र में कराया है। जो लोग सुखी हैं, उनके प्रति मैत्री का भाव, जो दुखी हैं, उनके प्रति करुणा का भाव, जो पुण्यवान हैं उनके प्रति आनन्द का भाव और जो अपुण्यवान हैं उनके प्रति उपेक्षा का भाव रखने से अपना चित्त हमेशा प्रसन्न रहता है।

अपने ध्येय-मार्ग में जो-जो अपने साथ आता है अथवा आ सकता है, वह प्रत्येक व्यक्ति अपना मित्र ही होता है। सुखी मनुष्य आज अथवा कल अपना साथी बन सकता है, ऐसी भावना रखकर उनसे हम लोग मिलें तथा उनके प्रति अपना व्यवहार स्नेह और आत्मीयता से पूर्ण रहे।

जो दुःखी हैं, उनके दुःख में समरस होते समय अपने मन में करुणा का भाव अनायास ही उमड़ जाता है। यदि हमारे सहानुभूतिपूर्ण सहयोग से उसके दुःख का भार किसी भी अंश में कुछ हलका होता है तो स्वतः ही उसके मन में हमारे संघ-कार्य के प्रति आत्म-भाव उत्पन्न होगा ही।

जो पुण्यवान हैं, उनके प्रति मन में आनन्द का भाव रहना चाहिए। हमें यही सोचना चाहिए कि यह पुण्यवान व्यक्ति भगवान का अति कृपा-पात्र है और तभी इसके जीवन में विपुल ऐश्वर्य और अमित समृद्धि है। ये लोग अपर क्लास के हैं और इनसे समाज में शोषण और नुकसान होगा, यह विचारधारा गलत है। हमें अपने मन में इस प्रकार सोचना ही नहीं चाहिए। समाज के हित के लिये कई बड़े-बड़े कामों को करते समय ऐसे ही पुण्यवान लोगों का सहयोग लेना अपरिहार्य बन जाता है।

जो अपुण्यवान हैं, उनके प्रति हम जैसे सामान्य स्तर वाले मनुष्यों की वृत्ति उपेक्षा पूर्ण ही रहे। किसी महापुरुष के सम्पर्क से ही उनके जीवन में परि-वर्तन आयेगा। जब तक उनमें ऐसा परिवर्तन नहीं आता, तब तक वे मनुष्यों के लिए कष्टप्रद ही रहते हैं। समाज के ऐसे अपुण्यवान लोगों के प्रति उदा-सीन वृत्ति अपनाये रखने में ही लाभ है।

महर्षि पतंजलि के बताये हुए उपायों को व्यवहार में लाने से अवश्य ही अपनी प्रसन्नता में कभी कमी नहीं आयेगी और अपना संघ-कार्य बढ़ेगा ही।

स्वयंसेवक के स्तर से समरस होकर उनकी बात को समझने और अपनी बात को उन्हें समझाने की उनकी पद्धति निराली ही थी। इस निरालेपन के कारण ही एक ओर श्री गुरुजी सर्वप्रिय होते चले गये और दूसरी ओर संघ-कार्य भी विस्तृत होता चला गया।

(छः)

साइकिल का उपयोग

एक नगर में स्वयंसेवकों का बृहत् सामूहिक कार्यक्रम था । नगर में श्री गुरुजी जहाँ ठहरे थे, उस विश्राम स्थान से संघ-कार्यक्रम में भाग लेने के लिये स्थानीय कार्यकर्ता के साथ कार द्वारा उन्होंने प्रस्थान किया । रास्ते में कार बिगड़ गयी । चालक उसे ठीक करने में संलग्न था, पर कार्यक्रम के आरम्भ होने का समय भी समीप था । गुरुजी को ऐसा लगने लगा कि चालक के प्रयास के बाद भी कार सुधर नहीं पायेगी । पर श्री गुरुजी को निर्धारित समय पर अवश्य पहुंचना था । निश्चित समय पर पहुंचने का आग्रह उनके व्यक्तित्व का सदा से अंग रहा है ।

उन्होंने देखा कि एक स्वयंसेवक साइकिल से संघ-स्थान की ओर जा रहा है । श्री गुरुजी ने उस स्वयंसेवक को बुलाकर रोका तथा उसकी साइकिल का उपयोग कर संघ-स्थान पर कार्यक्रम में भाग लेने के लिए चल दिये और निश्चित समय पर पहुंच भी गये । जिसके साथ गये, जिसकी साइकिल का उपयोग किया, वह स्वयंसेबक अपने को कितना सौभाग्य–शाली मान रहा होगा और वह सोच रहा होगा कि ये गुरुजी कैसे निरभि–मानी हैं जो सर-संघचालक होकर भी एक साधारण व्यक्ति के साथ चल सकते हैं और कितने कार्य-तत्पर हैं कि अवसर पर एक साधारण वाहन का उपयोग कर सकते हैं ।

(सात)

स्थिति संभालने की मनोवैज्ञानिक युक्ति

सन् ५५ की बात है । श्री गुरुजी गाजीपुर पधारे थे । वहाँ गाजीपुर और बलिया दोनों जिलों की संघ-शाखाओं का संयुक्त कार्यक्रम था । रात्रि में श्री गुरुजी की बैठक के समय सभी स्वयंसेवक अपना-अपना परिचय दे रहे थे । एक स्वयंसेवक तुतलाकर बोलता था । परिचय देते हुए ज्यों ही उसने 'नाम' शब्द का उच्चारण किया कि उसकी जबान सहसा रुक गयी । उसकी

यह स्थिति एक-दो मिनट तक रही । वाणी रुद्ध हो जाने के कारण स्वयं-सेवक बड़ा लज्जित हुआ । श्रद्धा और संकोच के अतिरेक से वह बोल नहीं पाया । उस स्वयंसेवक के मन की स्थिति को श्री गुरुजी ने भाँप लिया । श्री गुरुजी मुस्कराये और पूछा– कहाँ से आये हो ?

उत्तर मिला– बलिया से ।

श्री गुरुजी– क्या करते हो ?

स्वयंसेवक– पढ़ता हूं ।

श्री गुरुजी– किस कक्षा में ?

स्वयंसेवक– दसवीं कक्षा में ।

श्री गुरुजी– शाखा में क्या काम करते हो ?

स्वयंसेवक– मुख्य शिक्षक हूं ।

तत्काल ही श्री गुरुजी ने फिर पूछा— अब बताओ कि तुम्हारा नाम क्या है ?

स्वयंसेवक ने अपना नाम आसानी से बता दिया । इस युक्ति को देखकर सभी स्वयंसेवक चकित रह गये । तत्पश्चात श्री गुरुजी मुस्कराते हुए बोले– मैं भी किसी समय शिक्षक रह चुका हूं ।

(आठ)

मुझ भिखारी के पास लड़का कहाँ ?

नवम्बर १६४६ में श्री गुरुजी का पंजाब-प्रान्त में प्रवास चल रहा था । वे जम्मू में भी कार्यक्रम के निमित्त पधारने वाले थे । जम्मू से पूर्व सियाल-कोट जिला का कार्यक्रम था । हम कुछ लोग भी स्यालकोट पहुंचे हुए थे । श्री गुरुजी के निवास की व्यवस्था लाला श्री चरणदासजी एडवोकेट के यहाँ थी । हम लोग उनके निवास-स्थान पर श्री गुरुजी से मिलने के लिये बाहर बैठक में प्रतीक्षा कर रहे थे । उसी समय एक महिला भी श्री गुरुजी से मिलने के लिये आयी थीं । वहाँ के कार्यकर्ताओं ने परिचय दिया कि आप सिन्ध-प्रान्त के प्रचारक श्री राज्यपालजी की माताजी हैं ।

श्री गुरुजी के बैठक में पधारते ही उन्होंने अपनी चादर श्री गुरुजी के

आगे बिछाकर कहा— मेरा लड़का मुझे दे दो। उसके बिना मेरे ग्रहस्थ-जीवन का सब कुछ बिगड़ गया है।

यह सुन श्री गुरुजी एकदम स्तब्ध हो गये। मौन खड़े रहने के कुछ क्षण बाद ही वे बोले— माता, क्या बात है?

तभी श्री राजपालजी की माताजी ने पुनः आग्रहपूर्वक कहा— मेरा लड़का दे दो।

तब हँसते हुये श्री गुरुजी बोले— क्या करोगी लड़का लेकर? वह तो भले र्य में लगा हुआ है। दूसरे लड़के की शादी करके अपना कुटुम्ब चलाओ न?

इतना कहकर श्री गुरुजी एकदम गम्भीर मुद्रा में कुछ देर तक मौन रहें फिर कुछ क्षण के बाद वे पुनः बोले— माँ, तेरे पास दो लड़के हैं। मेरी माँ के पास एक ही लड़का है। और वह भी भिखारी। माँ, मुझ भिखारी के पास तेरा लड़का कहाँ हो सकता है?

यह सुनकर श्री राजपालजी की माताजी ने तुरन्त अपनी चादर पीछे हटा ली और फिर इधर-उधर की बातें हाने लगी।

(नौ)

कष्टों को हँसी में उड़ा देना

सन् १९४३ में मेरठ के देवनागरी कालेज में संघ-शिक्षा-शिविर लगा हुआ था। समारोप के लिए स्थान की कमी के कारण मंच के लिए बरामदे का उपयोग किया गया। मंच इस ढंग से बनाया गया था कि उसका आधा हिस्सा बरामदे के दरवाजे के बाहर था और आधा अन्दर। वक्ता को ठीक दरवाजे के नीचे खड़ा होना था।

श्री गुरुजी सर्वाधिकारी लाला श्री रामेश्वरदयालजी के साथ मंच पर आये। अपनी स्वाभाविक तेज गति के कारण श्री गुरुजी ही पहले मंच पर पहुंच गये। मंच बनाने वालों की असावधानी के कारण मंच के धरातल और दरवाजे की ऊँचाई में बहुत कम अन्तर था। गुरुजी जैसे ही मंच पर चढ़े, मेहराब से उनका सिर इतनी जोर से टकराया कि निकट खड़े लोगों ने

चोट लगने की आवाज स्पष्ट सुनी। परन्तु गुरुजी ने बिना क्रोधित हुए तुरन्त लालाजी की ओर मुड़कर कहा— लालाजी मेरे सिर में बहुत बाल हैं, परन्तु आप बचाइयेगा, आपके बाल नहीं हैं।

कष्टों को भी हँसी में उड़ा देने की उनकी अपनी ही विशेषता थी।

(दस)

अविचल आलोक-पुञ्ज

सन् १९४६-४७ में अपनी माँग पूर्ण करवाने के लिये मुसलमानों ने हिन्दुओं पर अत्यधिक अमानुषिक अत्याचार किये, ऐसे अत्याचार, जिसने मानवता के मुख पर कालिख पोत दी और इतने अत्याचार, जिनकी गणना सम्भव ही नहीं। इन राक्षसी क्रूर वृत्तों को सुन कर किसका तन–मन नहीं काँप उठा। ऐसे रोमांचकारी अत्याचारों के लिये कहा गया है– Truth is stranger than fiction, अर्थात् ये सत्य घटनाएँ गल्प से भी बढ़ कर अकल्पनीय हैं। मुस्लिमलीग की विध्वंसकारी प्रवृत्तियों से और हिन्दुओं पर दिन-प्रति-दिन बढ़ते हुये अत्याचारों से संघ, पंजाब और बंगाल के हिन्दू अपने आपको असुरक्षित अनुभव कर रहे थे। अत्यन्त विस्फोटक स्थिति के बावजूद भी श्री गुरुजी ने उन प्रान्तों का दौरा किया और हिन्दुओं को ढांढस बँधाया तथा संघ के स्वयंसेवकों को ठीक समय पर कर्तव्य की जानकारी करा कर उन्हें सचेत किया। उन्होंने स्वयंसेवकों को निर्देश दिया— स्वतः किसी पर हाथ न उठायें, किन्तु आततायी और अत्याचारों के सामने झुकें भी नहीं। आत्मरक्षा के लिये सब प्रकार की सिद्धता सदा रहनी चाहिये।

इसी विस्फोटक स्थिति में १९४७ के जुलाई मास के तीसरे सप्ताह में संगरूर और फगवाड़ा में संघ-शिक्षा-शिविर चल रहे थे। संगरूर शिविर में १४०० और फगवाड़ा शिविर में २३०० स्वयंसेवक भाग ले रहे थे। इन दोनों शिविरों में श्री गुरुजी ने आसन्न संकट का सामना करने की दृष्टि से स्वयंसेवकों का मार्गदर्शन किया। शिविर चल ही रहे थे कि समाचार मिला कि लाहौर पाकिस्तान में सम्मिलित कर दिया गया है। यह जानकारी मिलते ही समय से पूर्व ही शिविर समाप्त किये जाने का आदेश श्री गुरुजी

ने दिया। १० अगस्त से लाहौर में भी नृशंस अत्याचार आरम्भ हो गये। संघ के स्वयंसेवक लोगों की रक्षा तथा सहायता के कार्य में जुट गये। श्री गुरुजी की प्रेरणा से 'पंजाब सहायता समिति' की स्थापना की गयी। निर्वासितों की सुरक्षा तथा आश्रय के लिए अनेक शिविर खोले गये। काश्मीर में सैकड़ों स्वयंसेवक लड़ते हुए मारे गये' परन्तु इसके फलस्वरूप लाखों हिन्दुओं के प्राणों को बचाया जा सका। उस समय जितने भयंकर अत्याचार अपनी हिन्दू बहिनों और बन्धुओं पर हुए, उतने ही आश्चर्यजनक रूप से स्वयंसेवकों ने आशातीत साहस बटोरा और अपने जीवन को मृत्यु के मुख में झोंक कर हिन्दू समाज की रक्षा की। संघ के स्वयंसेवकों ने पंजाब सिंध और काश्मीर में सचमुच अपना जीवन सार्थक करके दिखा दिया।

संघ की बढ़ती लोक-प्रियता काँग्रेसी नेताओं को खटकने लगी। किसी-न-किसी प्रकार से वे संघ की प्रगति में बाधा उत्पन्न करना चाहते थे। विधान का उल्लंघन किये बिना संघ-कार्य बढ़ता ही चला गया। सन् १९४७ के नवम्बर मास में पूना के पास चिंचवड नामक स्थान पर महाराष्ट्र के एक लाख स्वयंसेवकों की तथा हितचिन्तकों की रैली की योजना बनायी गयी। हजारों स्वयंसेवक कड़ाके की सर्दी में भी दिन-रात काम करने लगे। इस कार्यक्रम में सरदार श्री वल्लभ भाई पटेल भी आने वाले थे। उनके भाषण को प्रसारित करने के लिए आल इण्डिया रेडियो ने संघ के अधिकारियों से परामर्श किया। इधर तो इस प्रकार की जोरदार तैयारियाँ चल रही थीं, उधर राजसत्ता डर गयी। बम्बई के गृह-मन्त्री ने वातावरण की अस्थिरता का बहाना बना कर प्रशासनाधिकारियों द्वारा रैली बन्द करवा दी। प्रान्तीय सरकार की ओर से प्रतिबन्ध लगते ही श्री गुरुजी ने तुरन्त निर्णय लिया कि यदि सरकार प्रान्तीय स्तर की रैली नहीं लगने दे रही है तो प्रान्त के जिलों में जिला-स्तर के सम्मेलन बुलाये जायें। फिर जिला-स्तर की रैलियाँ हुईं। २४ अक्टूबर १९४७ को श्री गुरुजी का दौरा आरम्भ हुआ। महाराष्ट्र के तेरह से अधिक नगरों में स्वयंसेवक और संघ-प्रेमी एकत्रित हुए। चार लाख से अधिक लोगों ने श्री गुरुजी के विचार सुने। सभी जिला-सम्मेलनों में भाग लेकर ५ नवम्बर को श्री गुरुजी पूना पहुंचे। दो मील के मार्ग में दोनों ओर गणवेशधारी स्वयंसेवक खड़े थे। पूना के भाषण में श्री गुरुजी ने कहा— स्वतन्त्रता की प्राप्ति तो अनायास ही छींका टूट जाने के कारण बिल्ली को मिला हुआ मक्खन का गोला है।

इसी प्रकार का एक बड़ा सम्मेलन दिल्ली के पास होने वाला था।

उस पर भी सरकार ने प्रतिवन्ध लगा दिया। फिर उस प्रतिबन्ध-क्षेत्र की सीमा से बाहर वह सम्मेलन सम्पन्न किया गया।

परिस्थिति की प्रतिकूलता चाहे धार्मिक मतान्ध परकीयों द्वारा उत्पन्न की गयी हो अथवा सत्ता मदान्ध स्वकीयों द्वारा थोपी गयी हो, कैसी भी प्रतिकूलता हो, श्री गुरुजी सदैव अडिग रहते थे और अविचल प्रकाश-स्तम्भ की तरह स्वयंसेवकों के प्रगति-पथ को आलोकित करते रहते थे।

(ग्यारह)

संयमी एवं विचार-प्रधान नेतृत्व

श्री गाँधीजी की हत्या के बाद राष्ट्रीय-स्वयंसेवक-संघ को बदनाम करने का जोरदार प्रयास किया गया। शासनरूढ़ काँग्रेसी दल तथा देश के उपद्रवकारी तत्त्वों ने संघ पर आघात करने का भरपूर प्रयत्न किया, पर संघ ने प्रत्याघात नहीं किया। श्री गुरुजी क्रोध से एकाध शब्द भी कह देते तो उस समय राष्ट्रीय बन्धुओं के रक्त की नदियाँ बह सकती थीं, पर श्री गुरुजी के संयमी एवं विचार-प्रधान नेतृत्व के कारण वह घटना टल गयी।

आज हम देखते हैं कि सौ-दो-सौ तरुण एकत्र होकर सहज ही बसें रोक लेते हैं और जला डालते हैं। वे रेलवे पर आक्रमण करके बड़ी गाड़ियों का चलना बन्द करवा देते हैं, बड़ी-बड़ी इमारतें जलाकर करोड़ों रुपयों की राष्ट्रीय सम्पत्ति नष्ट करते हैं, संकट में डालकर सरकार को विचार करने के लिये विवश करते हैं। ये सारे दुष्ट कार्य करने की शक्ति जिनमें स्वाभाविक ही है, ऐसे हजारों तरुण संघ के स्वयंसेवक के रूप में प्रत्येक प्रान्त के बड़े-बड़े शहरों में हैं, फिर भी उन्होंने अपना हाथ नहीं उठाया। तरुणों की ऐसी अनुशासित शक्ति को देखकर सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है श्री गुरुजी के मन की विशालता का, राष्ट्र के प्रति उनके भाव का और उनके द्वारा संघ-स्वयंसेवकों में निर्मित अनुशासन-प्रियता का।

(बारह)

आलोचना का जहर

विराट हिन्दू समाज को संगठित करने का कार्य जबसे श्री गुरुजी ने अपने कन्धों पर लिया, तबसे उन्होंने अपने आपको इस ढंग से ढाला कि जिसके परिणामस्वरूप वे एक महान लोकसंग्रही बन सके। सरसंघचालक बनने के तुरन्त बाद उन्होंने यह अनुभव किया कि दक्षिण महाराष्ट्र के कुछ स्थानों पर हिन्दू समाज के कतिपय प्रमुख व्यक्ति, जो उनसे पूर्व परिचित नहीं थे, वे उनके प्रति अनादर व्यक्त करने वाली आलोचना किया करते हैं। इस आलोचना के कारण उन स्थानों के स्वयंसेवक स्वाभाविक ही कुछ मात्रा में उत्तेजित भी हो उठते थे।

इस परिस्थिति की जानकारी मिलने पर श्री गुरुजी ने अपने पूना-निवास के समय दक्षिण महाराष्ट्र के उन स्थानों के प्रमुख स्वयंसेवकों को बुला लिया और उनसे श्री गुरुजी ने स्पष्ट शब्दों में कहा—मेरी जो व्यक्तिगत आलोचना की जा रही है, उसमें मैं अवगत हूं। किन्तु इस आलोचना की प्रतिक्रियास्वरूप आप में से किसी को भी ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिये, जो अपने कार्य के लिये अशोभनीय हो।

युवा-स्वयंसेवकों को श्री गुरुजी की यह सलाह उतनी पसन्द नहीं आयी। यह देखकर श्री गुरुजी ने आगे कहा—इस सम्बन्ध में आप लोग निश्चिन्त रहें। मैं स्वयं उचित ढंग से उचित समय पर इस आलोचना को निरस्त कर दूंगा। आप में से किसी ने भी मेरा पक्ष लेकर कुछ भी अन्यथा किया तो मुझे पसन्द नहीं आयेगा।

सदियों से विघटित हिन्दू समाज के मध्य लोकसंग्रही व्रत को निभाने के लिये जो कड़ुवा जहर भी गले के नीचे उतारना पड़ता है, उसका यह ज्वलन्त उदाहरण है। श्री गुरुजी ने अपना मन ऐसा बना लिया था कि अनेकों स्थानों पर समय-समय पर होने वाली भिन्न-भिन्न अभद्र एवं असत्य आलोचनाओं को सहन कर लेना, अपितु उनको सहज पचा जाना, उनके लिये आसान बात थी। अपने मन की ऐसी अवस्था बना लेने के लिये श्री गुरुजी को कितनी तपश्चर्या करनी पड़ी होगी, इसका अनुमान लगाना कठिन है।

(तेरह)

विफलता-विषमता के मध्य जाग्रत विवेक

श्री टी० आर० वेंकटराम शास्त्री जी के मध्यस्थ बनने के बाद भी सरकार की उपेक्षापूर्ण नीति में परिवर्तन नहीं आया और संघ पर से प्रतिबन्ध हट जाने के कोई लक्षण दृष्टिगत नहीं हुए। श्री शास्त्री जी के समान ही अन्य कतिपय गण्यमान्य व्यक्तियों ने भी प्रयास किया, पर सभी विफल सिद्ध हुए। श्री गुरुजी का शरीर बेतूल की कष्टपूर्ण परिस्थितियों में कृश होता चला जा रहा था। संघ से सहानुभूति रखने वाले व्यक्ति तो पहले से ही ऐसा कहते थे कि संघ को राजनीति के क्षेत्र में प्रवेश करना चाहिये, पर सरकार के दुराग्रह को देखकर धीरे-धीरे संघ के कई कार्यकर्ता और स्वयंसेवकगण भी इसी ढंग के विचार व्यक्त करने लग गये कि लगता है कि राजनीति से अलग रहने से काम नहीं चलेगा। नेहरू-सरकार की हठधर्मिता को देखते हुए लोगों के द्वारा ऐसा सोचा और बोला जाना स्वाभाविक था।

जब बाहर इस प्रकार के विचार व्यक्त किये जा रहे थे, तब कारागृह के भीतर श्री गुरुजी के मन की भूमिका पूर्ववत् ज्यों-की-त्यों बनी रही। श्री गुरुजी का विवेक सदा सजग रहता था और कैसी भी विषम परिस्थिति क्यों न हो, इसी जाग्रत विवेक के कारण पूर्ण परिस्थिति का सही आकलन करना और लक्ष्यसिद्धि के लिये सही निर्णय लेना उनके लिये सहज था। श्री गुरुजी को स्पष्ट कल्पना थी कि नेहरू-सरकार के लिये यह सम्भव ही नहीं है कि राजसत्ता के सहारे संघ को और अधिक दबाये रख सके। और इससे भी अधिक स्पष्ट मान्यता थी कि राजनीति से दूर रहते हुए तथा संघ की कार्य-पद्धति से कार्य करते हुए ही राष्ट्रहित किया जा सकता है। राष्ट्रोत्थान के लिये यही एकमेव मार्ग है।

(चौदह)

अदम्य आत्म-विश्वास अद्भुत कार्य-तत्परता

सन् १९४० में श्री डाक्टर जी के देहावसान से संघ-जीवन में एक बहुत बड़ी रिक्तता का निर्माण हुआ। श्री गुरुजी एवं अन्यान्य कार्यकर्ताओं के

शोकाकुल मन में डाक्टर जी की छत्र-छाया के उठ जाने की मर्मान्तक पीड़ा कसक रही थी। इसी विपन्न घड़ी में श्री गुरुजी ने कहा—एक हाथ से आँसू पोंछकर दूसरे हाथ से कार्य करना होगा।

बस, शोक-जनित पीड़ा की उस ऊर्जा को कार्य की तत्परता में बदल देने की प्रक्रिया श्री गुरुजी ने अविलम्ब आरम्भ कर दी। पर अभी विपत्ति के बादल मँडरा रहे थे। डाक्टर जी के निधन के आघात से अभी सँभल भी नहीं पाये थे कि अँग्रेजी सरकार ने अवसर का लाभ उठाकर एक और गहरा प्रहार किया, जिससे संघ स्वयं सूखकर समाप्त हो जाये। निधन के दो मास बाद ही अगस्त १९४० में अँग्रेजी सरकार ने संघ-गणवेश पर (जो पहले खाकी सैनिक वेष था) और अनुशासनपूर्ण संचलन पर प्रतिबन्ध लगा दिया। प्राय: सभी लोगों ने समझ लिया कि अब संघ में क्या रहेगा, किन्तु श्री गुरुजी का आत्म-विश्वास अदम्य था। उन्होंने कहा—हम पर जितने आघात होंगे, उतनी ही अधिक शक्ति से हम ऊपर उठेंगे। हमारी शक्ति अबाधित रूप से बढ़ती ही जायेगी और एक दिन वह राष्ट्र में छा जायेगी।

आत्म-विश्वास भरे इन शब्दों ने संघ के स्वयंसेवकों में पद-प्रति-पद-पल-प्रति-पल तीव्र गति से आगे बढ़ने का उत्साह भर दिया। श्री गुरुजी ने सम्पूर्ण देश का विस्तृत प्रवास किया। एकत्रित कार्यक्रम, कार्यकर्ताओं की बैठक, प्रबुद्ध नागरिकों से अनौपचारिक मिलन, जिम्मेदार अधिकारियों से व्यक्तिश: बातचीत...इन सब का ताँता देश के एक कोने से दूसरे कोने तक बँध गया। सारे भारत में अपूर्व उत्साह छा गया। एक नयी मस्ती, 'एकोऽहं बहुस्याम' जसी दुर्निवार अभिलाषा समाज के प्राणों में लहराने लगी।

दिसम्बर की कड़कड़ाती सर्दी में कार्यकर्ताओं के शिविर प्रान्तश: लगा करते थे। प्राय: तीनों दिन श्री गुरुजी के स्फूर्तिदायक बौद्धिक-वर्गों का आयोजन रहता था। हिन्दुत्व की तरुणाई को मानो श्री गुरुजी ने झकझोर कर रख दिया। संघ-कार्य को देश के प्रत्येक क्षेत्र में फैलाने के लिये घरबार का मोह, व्यक्तिगत वैभव के सुनहले स्वप्न, ऐन्द्रिय सुखों के सतरंगी आशायें, इन सबको छोड़कर कंटक-पथ को अपनाने के लिये उन बौद्धिकों में आह्वान था। ध्येयवादी जीवन की पुकार पर यौवन-सुलभ मस्ती में उस महान् स्वप्न को साकार करने के लिये सकड़ों तरुणों की टोलियाँ नागपुर तथा अन्य शाखाओं से निकल पड़ीं। देखते-ही-देखते एक विशाल प्रचारक-व्यवस्था खड़ी हो गयी। उस कल्पनातीत उत्सर्ग का परिणाम था देश के कोने-कोने

में संघ-कार्य का विस्तार। उस अद्‌भुत कार्य-तत्परता का एक मात्र लक्ष्य था राष्ट्र को वैभवशाली बनाना।

(पन्द्रह)

वे जादूभरी बैठकें

श्री गुरुजी की बैठक की तुलना श्री गुरुजी की बैठक से ही की जा सकती है। उस कार्यक्रम की प्रक्रिया, उसके वातावरण और उसके प्रत्यक्ष एवं परोक्ष परिणाम का उपमान मिल सकना असम्भव है।

दिल्ली के अनेक कार्यकर्ताओं ने, केवल ये ही लोग क्यों, अन्य बहुत-से लोगों ने प्रार्थना-सभा में महात्मा गाँधी के सीधे-सीधे शब्दों में मार्मिक उपदेश सुने हैं, महान् दार्शनिक राष्ट्रपति राधाकृष्णन् के सार-गर्भित गीता-प्रवचन सुने हैं, जवाहरलालजी की स्वाधीन-गर्वोक्तियाँ सुनी हैं, सावरकरजी का कवित्व-मय उद्‌बोधन सुना है, पट्टाभि सीतारमैया की धाराप्रवाह वक्तृता सुनी है, सुभाषचन्द्र बोस का जन-मन गुंजा देने वाला गर्जन सुना है, सरदार पटेल की घरण-आघात जैसी घोषणाएँ सुनी हैं, अटलबिहारी बाजपेयी के प्रभाव-पूर्ण भाषण सुने हैं, परन्तु श्री गुरुजी के नैसर्गिक भागीरथी-प्रवाह जैसे बौद्धिकों की तुलना उनके ही बौद्धिकों से ही हो सकती है—जैसे हंस की उड़ान की उपमा हंस की उड़ान ही हो सकती है, जैसे नन्दिनी के दूध का स्वाद नन्दिनी के दूध में ही आ सकता है।

बैठक तो फिर बैठक ही होती थी, यह कार्यक्रम भी कैसा अपूर्व आनन्द-वर्धक और कितना अधिक प्रेरणादायक एवं कैसा अद्‌भुत संस्कार-सक्षम होता था, यह अनुपम अनुभव श्री गुरुजी की उन बैठकों में अनेक लोगों को हुआ है। बड़े-बड़े दिग्गज बुद्धिवादी लोगों को घनचक्कर बनते देखा है, अनेक कर्मठ कार्यकार्ताओं के कतृत्व-गर्व को चूर-चूर होते देखा है, आत्मविश्वास-पूर्वक योजनाओं का संचालन करने वालों को गड़बड़ाते-हड़बड़ाते देखा है, आंकड़े रट-रटकर लानेवालों को बहकते देखा है, शारीरिक-शिक्षा-विशेषज्ञों को प्राथमिक प्रश्नों में लड़खड़ाते देखा है, नित्यप्रति प्रार्थना बुलवाने वालों

को पंक्तियाँ-की-पंक्तियाँ गटकते देखा है। दूसरी ओर सरलचित्त स्वल्पभाषी आदि प्रौढ़ सज्जनों को और नये-नये संकोचशील कार्यकर्ताओं की भावनाओं को वाणी का वरदान मिलते भी देखा है, मानो शंकराचार्य की उपस्थिति में सारी दुनिया में गूँगा समझा जाने वाला 'हस्तामलक' सहसा सूत्ररूप में सहज ज्ञान का उद्घाटन करने लगा हो।

अनेक क्षेत्रों को स्पर्श करते हुए श्री गुरुजी द्वारा पूछे गये छोटे-छोटे प्रश्न, उन प्रश्नों में से क्रमशः प्रकट होते हुए सरल तथा गूढ़ अर्थ, उन अर्थों में से छिप-छिपकर उमड़ता हुआ एक विनोद, उस विनोद-विनोद में से उद्भासित होते हुए सही और समयोचित सुझाव, उन सुझावों से अज्ञातरूप में निर्मित होती हुई भावना, उस भावना के उद्रेक के कारण उठता हुआ उत्साह, उस उत्साह में से जमकर जड़ पकड़ता हुआ दृढ़ निश्चय, उस निश्चय के फलस्वरूप नस-नस में घर करती हुई आत्म-बलिदानी सन्नद्धता, उस सन्नद्धता से उद्भूत अंग-अंग में लहराने वाली उत्सर्ग-उर्मियाँ, तन-मन को कार्य में प्रवृत्त कर देने वाला उन्माद, रोम-रोम से झरने वाला अनोखा उल्लास और सम्पूर्ण व्यक्तित्व पर आच्छादित हो जाने वाला एक अनिर्वचनीय आनन्द—यह सारी सूक्ष्म मानसिक प्रक्रिया पढ़ लेने के बाद भी, सुन लेने के बाद भी समझी नहीं जा सकती। जिसने इसमें अवगाहन किया है, वही उस स्मृति को पुनः सजग कर सकता है। उन बैठकों में जो उपस्थित रहा, वह सौभाग्यशाली है। तरुण-कार्यकर्ता के रूप में श्री गुरुजी की सन्तुष्ट स्नेहदृष्टि जिसे मिली, वही कृत-कृत्य हो गया। बैठकें होती रहेंगी, नये कार्यकर्ता आते रहेंगे, नये-नये स्थान संघमय बनते रहेंगे, पर सच्चाई और ईमानदारी तथा समझदारी की परीक्षा करने वाले वे बौद्धिक फन्दे, वह सूक्ष्म अन्तर्भेदिनी दृष्टि, निराशा-कालुष्य को धोकर वर्तमान क्षण की मस्ती से हृदय को भर देने वाला वह मुक्त हास्य, सब कुछ समझकर सब कुछ समझा देने वाला वह 'बसा-बसा' का इंगित—यह सब नयन-मन-स्मृति में तो घूमेगा, पर अब कभी प्रत्यक्ष नहीं होगा।

: २७ :

उद्बोधन एवं प्रोत्साहन

(एक)

सम्बल दिया समर्थन किया

मार्च-अप्रैल १९७० में असम विश्व-हिन्दू-परिषद के सम्मेलन में श्री गुरुजी के साथ तीन दिन रहने का अवसर मिला था। श्री गुरुजी के प्रयत्नों से नागालैण्ड की रानी श्री गुइडलो भी एक बैठक में पधारी थीं। उनके साथ बहुत-से लोग आये थे। बैठक के अन्त में उन्होंने कहा था— इस समारोह के कारण हमें बड़ा सम्बल मिला है। हम यह अनुभव करते हैं कि हम अकेले नहीं हैं। हमारे साथ विशाल हिन्दू समाज है।

श्री गुरुजी का यही आग्रह रहा करता था कि किसी को भी यह भ्रम नहीं होने पाये कि मैं हिन्दू समाज से अलग-थलग अथवा उपेक्षित हूं। उसी वर्ष जनवरी में बैंगलूर की हरिजन बस्ती में जब हम गये और मन्दिर में आरती के उपरान्त हजारों हरिजनों को प्रसाद दिया तथा धर्माचरण की बहुत-सी बातें उन लोगों को बतायीं तो अनेक विद्वान पण्डित रुष्ट हो गये।

उक्त सम्मेलन पर मेरा समर्थन करते हुए श्री गुरुजी ने कहा था— आप समस्त हिन्दू-समाज के जगद्गुरु हैं। आपने हरिजन बस्ती में पूजा और प्रवचन करके बहुत ही उचित कार्य

किया है। जो उचित है, उसे योग्य आचरण द्वारा समाज को समझाना ही पड़ेगा।

(दो)

प्रगति क्या है ?

मुझे याद है, श्री गुरुजी इलाहाबाद विश्वविद्यालय में बुलाये गये थे। हमारे कुछ विघ्नसन्तोषी मित्रों का, जिनका नाम लेने की आवश्यकता नहीं है, उनका इरादा था कि श्री गुरुजी का भाषण नहीं होने देंगे। मगर हजारों विद्यार्थी तय करके आये थे कि श्री गुरुजी का भाषण सुनकर जायेंगे। विरोध करने वाले दस-बीस थे, उन्हें ससम्मान अर्ध-चन्द्र देकर हॉल के बाहर कर दिया गया।

उस समय श्री गुरुजी ने कहा था कि प्रगति क्या है ? हर एक गति प्रगति नहीं है। कोई पहाड़ की चोटी से गिरे और कहे— देखो, मैं कैसी प्रगति कर रहा हूं ! प्रगति तो वह कर रहा है, मगर गड्ढे में जा रहा है। अगर कोई नेता देश को गड्ढे में ले जाता हो, तो वह नेता नहीं है। शिखर पर जाने के लिये शार्ट-कट नहीं हुआ करता। एक-एक कदम मजबूती से रखना पड़ता है। परिश्रम करना पड़ता है, साधना करनी पड़ती है, तब शिखर पर पहुंचा जाता है। हाँ, शिखर से नीचे आने के लिये शार्ट-कट हो सकता है, ऊपर जाकर नीचे गिरना सरल है।

उनके जीवन से प्रेरणा लेकर लाखों लोग घरबार छोड़कर निकले। कभी-कभी उनमें से कोई निराश होकर आता था और शंका करता था कि अगर हमारे जीवन में कार्य पूरा नहीं हुआ तो ? श्री गुरुजी कहते थे— तो फिर पुनर्जन्म लेकर इस धरती पर आयेंगे और जो कार्य अधूरा रह गया है, उसको पूरा करेंगे। यही है भारत को परम वैभव पर पहुंचाने के लक्ष्य का अर्थ, प्रगति की दिशा।

(तीन)

'दीनदयाल' ही बोलेगा

श्री दीनदयालजी के प्रति श्री गुरुजी के मन में बड़ा स्थान था, अत्य-

धिक स्नेह था और अटूट विश्वास था। बात उस समय की है जब कालीकट के अधिवेशन के पूर्व श्री दीनदयालजी जनसंघ के अध्यक्ष निर्वाचित हुये थे। कालीकट के अधिवेशन के बाद हम लोग कार से बंगलौर होते हुए डोडबल्ला-पुर पहुंचे। वहाँ संघ-कार्यकर्ताओं का एक शिविर लगा हुआ था। श्री गुरुजी संघ-कार्यकर्ताओं को मार्गदर्शन दे रहे थे। कार में दीनदयालजी, सुन्दर सिंह जी भण्डारी, जगन्नाथराव जोशी भी थे। हम लोगों को देखते ही श्री गुरुजी बोले– तुम सब नेता लोग यहाँ कहाँ आ गये ?

भोजन, विश्राम के बाद श्री गुरुजी के साथ चाय पीने के लिए बैठे। श्री गुरुजी का बौद्धिक होने वाला था। चाय के समय श्री गुरुजी ने कहा— अब दीनदयाल बोलेगा।

हम सब आश्चर्यचकित रह गये। किसी ने कहा भी साहस करके— शिविर में सभी लोग आपसे मार्गदर्शन पाने के लिये एकत्रित हुए हैं। सभी कार्यक्रम आप ही को लेने हैं।

श्री गुरुजी बोले— नहीं भाई, दीनदयाल ही बोलेगा।

फिर किसी ने कहा— वे तो जनसंघ के अध्यक्ष हैं।

श्री गुरुजी ने तत्काल उत्तर दिया— नहीं, दीनदयाल संघ-स्वयंसेवक है। वह स्वयंसेवक के नाते बोलेगा, जनसंघ के अध्यक्ष के रूप में नहीं।

और वस्तुतः दीनदयालजी का जब बौद्धिक हुआ तो उसे श्री गुरुजी ने बहुत सराहा।

●

(चार)

नींव के पत्थर

कैंसर के आपरेशन के पश्चात् जुलाई १९७० में श्री गुरुजी नागपुर में हमारे घर ठहरे थे। दोपहर तक वे खाली रहते। तभी हम लोग उनके पास जाकर बैठते थे। हमारा श्री गुरुजी से घरेलू सम्बन्ध रहा है। उनसे बात-चीत करने में अथवा कुछ पूछने में कभी किसी प्रकार का संकोच नहीं होता था। वे हमारी जिज्ञासाओं को तुरन्त सुन्दर समाधान से शमित कर दिया करते थे। एक बार मैंने उनसे पूछा— गुरुजी ! सन् १९२५ में संघ की

स्थापना हुई थी। आज ४५ साल बीत गये, लेकिन तब (१९२५) की तुलना में व्यावहारिक-नैतिक-आध्यात्मिक सभी दृष्टि से समाज का अधःपतन आज और अधिक हो चुका है। ऐसी स्थिति में क्या संघकार्य को ईश्वरीय कार्य कहना उचित होगा ?

श्री गुरुजी बोले— सन् १९२५ की अपेक्षा आज नैतिक दृष्टि से अधःपतन अधिक है। उसे संघ रोक नहीं पाया, यह भी ठीक है, परन्तु दूसरी ओर एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बात यह भी है कि अधोगति की यह स्थिति जब समाज में विप्लव का रूप ले लेगी, तब संघ की वास्तविक उपयोगिता ज्ञात होगी। आज की परिस्थिति में नैतिक-धार्मिक-आध्यात्मिक मूल्य भले क्रमशः लुप्त होते चले जायें, तो भी सुप्त अंगार प्रज्ज्वलित रखने का कार्य तो संघ को ही करना है। फॉनिक्स पक्षी बार-बार राख से ही उत्पन्न होता है। उसी प्रकार समाज की अधोगति में से अन्त में अपने हिन्दू समाज का पुनर्जन्म निश्चित ही होगा। अपने ग्रन्थों में ऐसे अनेक उदाहरण हैं। प्राचीन काल में हिरण्यकशिपु, भस्मासुर, त्रिपुरासुर, रावण, कंस, जरासंध आदि कई एक राक्षसी प्रवृत्तियों ने आतंक मचा रखा था। परन्तु सद्प्रवृत्ति कहीं-न-कहीं बची रही थी। इस कारण अपने समाज का बार-बार उत्थान हुआ। आज की स्थिति देखकर भय का कोई कारण नहीं। हमें अपना कर्तव्य आत्मविश्वास से एवं सातत्य से करते रहना चाहिये। समाज के पुनरुत्थान के लिये सद्प्रवृत्तियों के बीज सुरक्षित करना ही संघ का कार्य है। ये बीज बचे रहे तो अपने हिन्दू समाज पर कितने ही भीषण आघात क्यों न हों, अपना भविष्य उज्ज्वल रहेगा। पौराणिक काल में धर्म-ग्लानि के अनेक प्रसंगों पर यह सद्प्रवृति कहीं-न-कहीं बची थी। उसका संरक्षण ऋषि-मुनियों ने किया। जैसा ही वह ईश्वरीय कार्य था, वैसे ही संघकार्य भी ईश्वरीय कार्य है।

और भी एक बात है कि यदि हम अधिक परिश्रम एवं धैर्य से अपना काम बढ़ा सकें तो अधःपतन की अवस्था देखने का मौका ही नहीं आयेगा। तात्कालिक सफलता प्राप्त करना संघ का लक्ष्य नहीं है। समाज की अन्त-र्बाह्य शुद्धि करने की यह अति कठिन तपस्या है। अपू आम्ही पत्थर पाया-तील। (बनें हम पत्थर नींव के)। मन्दिर का कलश देखने का भाग्य प्राप्त हो तो ठीक ही है, परन्तु मन्दिर की नींव का पत्थर बनने में हमारा अहो-भाग्य ही होगा।

(पाँच)

पत्रिका के लिये सन्देश

सन् १६४० के अगस्त मास में श्री गुरुजी का सरसंघचालक के नाते प्रथम बार प्रवास प्रारम्भ हुआ। नागपुर से प्रस्थान करने के बाद सम्भवतः वर्धा स्टेशन पर कुछ कार्यकर्ता उनसे मिलने पहुंचे। वे लोग पूजनीय श्री डाक्टर हेडगेवार जी के सम्बन्ध में एक हस्तलिखित पुस्तिका को प्रकाशित करने का विचार कर रहे थे। इस पुस्तिका के लिये उन लोगों को श्री गुरुजी से एक सन्देश चाहिये था।

श्री गुरुजी ने सन्देश दिया–'क्रिया सिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे।' इस चिरन्तन तत्त्व को पुनरपि प्रस्थापित करने वाले भारत के एकमेवाद्वितीय परम पूज्य डाक्टर श्री हेडगेवार जी के हम, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के स्वयंसेवक ऐकान्तिक निष्ठावान अनुयायी हैं। हम किसी भी बाह्य साधन पर निर्भर नहीं हैं। केवल अविचल श्रद्धा, ध्येय पर स्थिर दृष्टि और हमारे महनीय नेता की चिरस्मृति से अखण्ड प्रज्वलित राष्ट्रप्रेम की अमर ज्योति के द्वारा ही हम अपना कार्य पूर्ण करेंगे और उद्देश्य प्राप्त कर हिन्दू राष्ट्र विश्वबन्द्य बनायेंगे।

(छः)

संगठन के लिये संगठन

सन् १६३५ की घटना है। अपने प्रवास के निमित्त परम पूजनीय डाक्टर श्री हेडगेवार जी वाराणसी गये थे। काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय के कुछ छात्रों को श्री हेडगेवार जी के आने की जानकारी हो गयी। उन छात्रों ने श्री हेडगेवार जी के और संघ के विरोध में एक पत्रक छपवाया था। उस पत्रक का शीर्षक मुझे स्मरण नहीं, परन्तु वह पत्रक अँग्रेजी में था। उस पत्रक में संघ पर कई आरोप छपे थे, जैसे संघ एक फासिस्ट संगठन है, श्री डाक्टर हेडगेवार उसके पैगम्बर हैं, इनका नारा है कि संगठन ही हमारा आदि है, और अन्त है (Organisation is our beginning and

organisation is our end)। उस पत्रक में और भी आरोप थे, पर अब उनकी स्मृति मुझे नहीं है।

संगठन-कार्य-कुशल श्री डाक्टर साहब ने 'सर्वेषाम् अविरोधेन संघकार्यं समारभे' को अपना कार्य-साधक मन्त्र बना रखा था, अत: उस पत्रक का न कोई उत्तर देते हुए और न कहीं उसकी चर्चा करते हुए वाराणसी का प्रवास-कार्यक्रम पूरा करके नागपुर लौट आये। अवश्य ही, लौटते समय उस पत्रक की कुछ प्रतियाँ वे अपने साथ नागपुर लेते आये थे। यहाँ नागपुर में उस पत्रक की कुछ प्रतियाँ उन्होंने हम महाविद्यालयी छात्र-स्वयंसेवकों के बीच वितरित की। संघ की विचारधारा के प्रति स्वयंसेवकों की निष्ठा को तौलने का यह एक उत्तम माध्यम सिद्ध हुआ।

कुछ दिन बाद श्री गुरुजी का बौद्धिक हुआ। उस बौद्धिक में श्री गुरुजी ने उस पत्रक का उत्तर स्वयंसेवकों की विवेकशीलता को उद्बुद्ध करने तथा संघ-निष्ठा को परिपुष्ट करने के लिये दिया। पत्रक की अँग्रेजी की पंक्ति की आवृत्ति करते हुए श्री गुरुजी ने प्रतिपादित किया कि वस्तुत: हमारे कार्य का आरम्भ और अन्त, प्रेरणा और परिणाम संगठन ही है। मुझे ठीक-ठीक स्मरण है कि उन्होंने ईसवी सन् की पहली अथवा दूसरी शताब्दी का एक उदाहरण दिया था। उस समय रोमन राज्य सारे योरप पर इंगलैंड पर भी छाया हुआ था। अपना घर विशृंखलित होगा, यह देखकर बाद में रोमन लोगों को इंगलैंड से हटना पड़ा। तब अँग्रेजों को ऐसा लगा कि अपना क्या होगा? शासक के बिना हमारा संरक्षण कौन करेगा? संगठन के अभाव के कारण ही इंगलैण्ड की यह मन:स्थिति बनी। अत: निर्मल चरित्र, धीर-वृत्ति, कार्याकार्य-विवेक, देश-भक्ति, प्रसिद्धि-पराङमुखता, सहज समर्पण, अद्वितीय कर्त्तव्य, श्रेष्ठ नेतृत्व, लोक-संग्रह-भाव, अनुशासन-प्रियता आदि जो अनेक असाधारण गुण हैं, उन गुणों से युक्त लोगों का निर्माण करके उन्हें एक सूत्र में नित्य संगठित रखना, यही समाज की सजीवता का लक्षण है और यह कार्य सदैव ही चलते रहना चाहिये। संगठित रहना सजीव समाज का आवश्यक अंग है और इसलिये संगठन के लिये संगठन अत्यावश्यक है।

उस पत्रक से यदि किसी का मन किंचित डगमगाया हुआ होगा तो श्री गुरुजी के उस भाषण से सबके समस्त सन्देह समाप्त हो गये तथा सभी के मन में अडिग निष्ठा बद्धमूल हो गयी।

(सात)

क्रांतिकारी विचारधारा

आर्थिक क्षेत्र में भी श्री गुरुजी के विचार क्रांतिकारी थे। वे कहते थे कि आवश्यकता से अधिक सम्पत्ति रखना ठीक नहीं है। श्री गुरुजी रात्रि में भोजन नहीं करते थे। क्यों नहीं करते थे ? श्री गुरुजी ने एक वाक्य में कहा –मैं ऐसे देश में जन्मा हूं, जिसमें करोड़ों लोग एक वक्त का भोजन नहीं पाते। मैं दो बार भोजन नहीं करता,

समाजवाद की घोषणा नहीं, गरीबी हटाने का नारा नहीं, चुनाव में आकर्षक आश्वासन नहीं, एक वक्त का भोजन छोड़ दिया। मैं उनके जाने के बाद चर्चा कर रहा हूं। उनके जीवित रहते हम चर्चा करने का साहस भी नहीं कर सकते थे, क्योंकि उन्होंने समाज को परमात्मा माना था। दरिद्र की नारायण के रूप में आराधना की थी।

श्री गुरुजी कहते थे—भाई ! विदेशी विचारधारा से बचो। राज्यवाद को मत बढ़ने दो। राज्य के खम्भे पर समाज का भवन खड़ा मत करो। कभी राज्य बदल गया, कभी दिल्ली की सत्ता परिवर्तित हो गयी तो एक खम्भा टूटने के बाद भी और खम्भे जीवित रहने चाहिये। समाज अमर रहना चाहिये। प्राचीन काल में भी राज्य बदले। दिल्ली के सिंहासन पर अनेक लोग बैठे। लेकिन हमारे तपोवन चलते रहे, हमारी पंचायतें चलती रहीं। समाज का संगठन चलता रहा और इसलिये हम जीवित रहे। यूनान मिट गया, रोम इतिहास के पृष्ठों में सो गया, बेबीलोन कहाँ है? मगर भारत, वेदकाल से लेकर आजतक जीवित है। यह जीवन ही शक्ति का हथियार है। यह शक्ति राज्य ने नहीं दी, राज्य तो हमने बनाये हैं। राज्य एक आवश्यक संस्था है। राज्य का संचालन करने वाले चरित्रवान हों, देशभक्त हों, यह भी आवश्यक है, मगर समाज-जीवन के सारे सूत्र राज्य के रथ से मत जोड़ो। अगर वह रथ टूट गया तो क्या होगा ?

(आठ)

तटस्थ कौन रह सकता है ?

सन् १९६२ में चीन ने भारत पर आक्रमण किया तो उसी दौरान एक दिन मुझे श्री गुरुजी से भेंट करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। श्री गुरुजी देश के पहले नेता थे, जिन्होंने आक्रमण के पूर्व ही चीन के आक्रमण की चेतावनी देश को दे दी थी तथा भारत को सैनिक दृष्टि से तेजी से तैयारी करने का आह्वान किया था।

भेंट के दौरान जब मैंने उनकी दूरदर्शिता के विषय में कुछ विचार व्यक्त किये तो उन्होंने गम्भीर होकर कहा—अपने देश के शासक आज भी 'तटस्थता' के राग को अलापने में ही लगे हुए हैं। गंगा के तट पर पड़ा हुआ तिनका यदि अपने को तटस्थ कहे तो यह उसका व्यर्थ का ही अहंकार है। जल के एक झोंके से उस तिनके का यह सारा अहंकार एक क्षण में छूमन्तर हो जायेगा। हाँ, यदि कोई पहाड़ कहे कि मैं तटस्थ हूं तो वह अवश्य बड़ी-बड़ी लहरों और आँधियों के वेग को सहन करने की क्षमता रखता है। अतः उस पहाड़ के कथन में कुछ सार है।

श्री गुरुजी तटस्थता की नीति को समर्थ और शक्तिशाली होने के बाद ही सार्थक मानते थे।

(नौ)

उनके साथ चालीसगाँव तक

श्री गुरुजी का महाराष्ट्र में प्रवास था। साल था १९६४। औरंगाबाद में सात जिलों का कार्यक्रम आयोजित था। कई विरोधी लोगों ने अप-प्रचार के द्वारा वातावरण कलुषित करने का प्रयास किया था तो भी सभी कार्यक्रम भव्यरूप से सम्पन्न हुए तथा श्री गुरुजी का भाषण बहुत ही प्रभावशाली हुआ।

दूसरे दिन सुबह चालीसगाँव जाना था। कार्यक्रम के बाद हम सब श्री गुरुजी के निवास-स्थान पर गये। चालीसगाँव के माननीय संघचालक डा०

श्री पूर्णपात्रे गाड़ी लेकर आये थे। वे श्री गुरुजी से मिलने के लिये आये। सर्वप्रथम श्री गुरुजी ने पूछा—क्यों, डाक्टर ! सैयद कहाँ है?

सैयद बाहर खड़ा था। उन्होंने आकर श्री गुरुजी को नमस्कार किया। श्री गुरुजी ने उससे पूछा—क्यों सैयद ! कैसा क्या है? तबियत अच्छी है न!

सैयद बोला—अल्लाह की कृपा से सब ठीक है।

श्री गुरुजी ने उत्तर दिया—देखो सैयद ! जो सच्चा है, उसका अल्लाह अच्छा ही करता है।

सैयद प्रसन्नता से हंस पड़ा। आगे निकलने का समय हो गया था। श्री गुरुजी ने अन्दर जाकर मूर्ति को प्रणाम किया और वे कमण्डलु लेकर बाहर निकले। गाड़ी में ड्राइवर के साथ श्री गुरुजी बैठे और पीछे डाक्टर पूर्णपात्रे, मा० अप्पासाहब चितलेजी के साथ मैं भी बैठा था।

उस दिन महाशिवरात्रि का पर्व था। औरंगाबाद से चालीसगाँव मार्ग पर ही श्री घृष्णेश्वर का ज्योतिर्लिंग स्थान है। हम सब वहाँ ठहरे। दर्शनार्थियों की बहुत ही भीड़ थी। उसी भीड़ से ही धीरे-धीरे मार्ग निकालकर श्री गुरुजी श्री घृष्णेश्वर ज्योतिर्लिंग के पास पहुंचे। सामने बैठकर मस्तक जमीन पर रखते हुए श्री गुरुजी ने नमस्कार किया और थोड़े समय तक मौन बैठने के बाद वे शान्त चित्त से बाहर आये।

गाड़ी चालीसगाँव की ओर चल पड़ी। गाड़ी के साथ-साथ बातें भी चलती रही। उस समय श्री लालबहादुर शास्त्रीजी प्रधानमन्त्री थे। श्री छागला, श्री जगन्नाथराव भोसले केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल में थे। श्री जगन्नाथराव आजाद-हिन्द-सेना के सेनापति थे, इस कारण मन्त्रिमण्डल में उन पर महाविद्यालयी विद्यार्थियों में अनुशासन निर्माण करने का दायित्व भी था। इस निमित्त उन्होंने एन. एफ. सी. नामक एक प्रशिक्षण की व्यवस्था महाविद्यालयी विद्यार्थियों के लिये की। उन्होंने बताया था कि केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल के मन्त्रियों के साथ श्री गुरुजी की भेंट भी हुई थी। वृत्तपत्र में वैसा समाचार छपा था। बातचीत में मा० अप्पाजी चितले ने श्री गुरुजी से उस बातचीत के बारे में पूछा।

श्री गुरुजी ने श्री जगन्नाथराव भोसले के साथ जो भेंट हुई थी उसका वृतान्त बताया—श्री भोसले ने जो योजना बनायी थी, वह बहुत ही अच्छी थी। उस योजना में छात्रों के जीवन में शिक्षा और अनुशासन निर्माण करने के प्रयास पर बल दिया गया था। इसके लिए शिक्षकों को प्रशिक्षित करना और हर एक विद्यालय के विद्यार्थियों को उन प्रशिक्षित शिक्षकों के द्वारा

शिक्षा प्रदान करायी जाये, ऐसी कल्पना थी। 'राष्ट्रीय शिक्षा योजना' के नाम से यह काम चलता था। योजना अच्छी थी। इसके पीछे का हेतु भी उदात्त था। भारत सरकार का सहयोग था। साधन सामग्री भरपूर थी। श्री जगन्नाथराव भोसले जैसा श्रेष्ठ और अनुभवी मार्गदर्शक था। इसके बाद भी जो यश अपेक्षित था, वह नहीं मिलता था।

श्री जगन्नाथराव ने श्री गुरुजी को यह सब बताया और पूछा—गुरुजी ! इतना पैसा, अनेक प्रकार की सुविधाएं और प्रलोभन होते हुए भी हमारी योजना सफल क्यों नहीं होती ? कोई दिल से लगन से काम ही नहीं करता। कई अच्छे विद्यार्थी मिलते हैं, पर वैसे परिणाम सामने नहीं आये, जो चाहिये था। कारण कुछ समझ में नहीं आता, इसलिए आपसे एक प्रश्न पूछना चाहता हूं।

श्री जगन्नाथराव थोड़ी देर ठहरे और फिर उन्होंने पूछा— आपके पास अधिकार नहीं। साधन और पैसा भी कम है तो भी इतने तरुण स्थान-स्थान पर संघ में कैसे आते हैं ? इतना अच्छा अनुशासन और समर्पण इन सबमें कैसे निर्मित हो जाता है ?

श्री गुरुजी ने उत्तर दिया— आपका प्रश्न बहुत ही अच्छा है। संघ के कार्य में जो थोड़ा यश मिलता है, उसका कारण मैं बतलाता हूं। उसमें कोई Trade Secret (रहस्य) नहीं। संघ के यश का कारण आप समझ लें। इस प्रकार से प्रयत्न करके आपको भी यश मिले तो हमें आनन्द ही होगा। हम ज्यादा तो कुछ करते नहीं। हम सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक तरुण स्वयंसेवक के अन्तःकरण में मातृभूमि की भक्ति का भाव जगाते हैं, अपने राष्ट्रजीवन की सत्य और यथार्थ भूमिका उसको बताते हैं। अपनी मातृभूमि की भक्ति का वह पावन स्पर्श उसके जीवन को बदलता है। अपने राष्ट्र का चिरन्तन सत्य स्वरूप और अपने सम्पूर्ण समाज के बारे में आत्मीयता का भाव उसको प्रेरणा देता रहता है। आप भी प्रयत्न कर सकते हैं। अपने सत्यस्वरूप और मातृभूमि की शुद्ध भक्ति-भावना हर एक युवक के मन में निर्माण करने का प्रयत्न आप भी करें। आपको निश्चित यश मिलेगा और आपके यश से हमें भी आनन्द होगा।

श्री गुरुजी की बात पूरी हो गयी। क्षणभर वे स्तब्ध बैठे रहे, फिर बोले— श्री जगन्नाथराव भोसले ऐसा प्रयोग न कर सके।

यह बोलते समय उनका अन्तःकरण व्यथित था। मातृभूमि के बारे में उत्कट भक्ति और समाज के बारे में आत्मीयता का भाव निर्मित करने का

प्रयास हम सब लोगों को परस्पर सहकार्य से करना चाहिए, ऐसा उनके सरल हृदय को लगता था।

(दस)

जीवनोत्सर्ग के लिये उद्बोधन

जून मास में डाक्टर श्री हेडगेवारजी का निधन हो चुका था। इसके छः मास बाद दिसम्बर में नागपुर में तरुणों का शीत शिविर लगा हुआ था। इस शिविर में श्री गुरुजी के तीन बौद्धिक हुए। अपने तीसरे बौद्धिक में श्री डाक्टर साहब के जीवन की प्रेरणादायिनी झलक प्रस्तुत करते हुए श्री गुरुजी ने कहा— मैं अब स्पष्ट रूप से कहता हूं कि हम लोग डाक्टर साहब को समझ ही नहीं सके और उनकी इच्छा के अनुसार हम द्रुत गति से कार्य में जुट ही नहीं पाये। उनकी इच्छा थी कि हम अपनी व्यक्तिगत उन्नति की ओर और अपने वैयक्तिक सुख-स्वप्नों की ओर न बढ़ें, अपितु इस सबसे ऊपर उठकर हम सब जुट जायें अपने संघकार्य को देशव्यापी बनाने के लिए। वस्तुतः श्री डाक्टर जी का जीवन जो बात बतलाता है, उसे हम लोग समझ ही नहीं सके। आपको शब्द चाहिये थे। ये शब्द हैं— 'अपने इस राष्ट्र को संगठित और वैभवशाली बनाने के लिये हम अपने आपको संघकार्य पर न्योछावर कर दें।'

इस प्रकार के सतत उद्बोधनों का ही परिणाम था कि देखते-ही-देखते कार्यकर्ताओं की टोलियाँ-की-टोलियाँ निकल पड़ीं और सारे भारत में कार्य का विस्तार बढ़ने लगा।

(ग्यारह)

प्रभावशाली जीवन सूत्र

श्री गुरुजी के हृदय में सभी के लिये अपार स्नेह था। एक समय किसी किशोर बालक ने श्री गुरुजी से उनके हस्ताक्षर (आटोग्राफ) तथा सन्देश के लिये

विनती की। श्री गुरुजी ने स्वाभाविक विनम्रता से कहा कि मैं तो कोई सन्देश देने वाला महापुरुष हूं नहीं। किन्तु जब उस किशोर बालक ने पुनः आग्रहपूर्वक अनुरोध किया तो श्री गुरुजी ने अपनी सहज मुस्कान के साथ केवल एक वाक्य लिख कर हस्ताक्षर कर दिया। वह वाक्य था— 'मनुष्य मात्र की सेवा, यही भगवान् की सेवा है।' To Serve Man is to Serve God.

आज जब इस सन्देश का स्मरण करते हैं तब ऐसा अनुभव होता है कि उन्होंने अपने स्वयं के सफल जीवन का महान तथा प्रभावशाली सूत्र ही उक्त वाक्य में पिरो दिया है।

(बारह)

हमारा संविधान कैसा हो ?

सन् १९४६ में अन्तरिम शासन आने के पश्चात् संविधान-सभा की बैठकें होने लगीं। यह विचार चल रहा था कि इंगलैंड अथवा अमेरिका, किसको अपने संविधान के लिये आधार रूप में स्वीकार किया जाना चाहिये। पूज्य श्री गुरुजी ने अपने मौलिक विचार प्रकट करते हुए कहा— अपने लिये दूसरों का कोट पहनने का विचार और फिर उसकी लम्बाई-चौड़ाई का हिसाब करके तदनुरूप अपने शरीर को बड़ा अथवा छोटा बनाना मूर्खता होगी। अपने शरीर के नाप के अनुरूप कोट बनाना बुद्धिमानी होगी, अर्थात् अपने आदर्शों के आधार पर अपनी एकात्मता का अनुभव कर संविधान बनाना चाहिये। दूसरों के आदर्शों का अन्धानुकरण स्वाभिमान की न्यूनता का या शून्यता का परिचायक होगा।

श्री गुरुजी के विचारों की उपेक्षा-अवगणना करके जो संविधान बनाया गया, उसके दुष्परिणाम आज हम देख रहे हैं और भोग रहे हैं।

: १८ :

परीक्षा की कठिन घड़ियाँ

(एक)

कठिन क्षणों में भी शान्त

श्री गाँधी जी की हत्या का समाचार मिलते ही श्री गुरुजी अपने दौरे के सारे कार्यक्रमों को स्थगित करके नागपुर आ गये थे। वे यहाँ के शोक-कार्यक्रम में सम्मिलित हुए। दूसरे दिन १ फरवरी की बात है। श्री गुरुजी कार्यालय से अपने घर स्नान करने के लिये जा रहे थे, तब मैं उनके साथ ही था। रास्ते में जगह-जगह भीड़ इकट्‌ठी हो रही थी। सारा वातावरण तनावपूर्ण था।

घर पर आने के बाद श्री गुरुजी ने स्नान किया तथा सन्ध्या-वन्दन करने के लिये बैठे। सन्ध्या-वन्दन के समाप्त होने-होने तक गड़बड़ी शुरू हो गयी थी। उकसायी गयी भीड़ ने पथराव आरम्भ किया। इधर पथराव हो रहा था और उधर श्री गुरुजी बड़े सचिन्त थे। वे सचिन्त थे पथराव के कारण नहीं अथवा पथराव से उत्पन्न संकट के कारण नहीं, अपितु भारत में उकसाये जानेवाले वैमनस्य के कारण और उस वैमनस्य से उत्पन्न होने वाली अराजकता के कारण। आपसी कलह के कारण समाज तो पहले से ही विच्छिन्न है, इस विच्छिन्न समाज में आत्मीयता जगाने का जो प्रयास संघ के द्वारा हो रहा है, क्या

ये प्रयास अब बन्द हो जायेंगे—यही सोच-सोचकर श्री गुरुजी चिन्तित हो रहे थे। सौ-सवा सौ स्वयंसेवक घर के निचले हिस्से में आकर बैठ गये थे। श्री गुरुजी के रुख के अनुसार किसी भी स्वयंसेवक ने पथराव का प्रतिकार नहीं किया। पथराव के कारण पत्थर पड़ोसियों के घर पर भी जा रहे थे। इससे श्री गुरुजी का मन व्यथित हो रहा था। श्री गुरुजी ने कहा—चलो, मेरे घर का पता तो लोगों को बराबर लग गया, परन्तु पास वाले घर को नाहक कष्ट हो रहा है।

पुलिस ने आकर देखा कि घर के आँगन में एक जगह पत्थरों का ढेर लगा हुआ है। पुलिस अधिकारी के मन में सन्देह उत्पन्न हुआ कि पत्थर का जबाब पत्थर से देने के लिये ही ये पत्थर इकट्ठे किये गये हैं। पत्थरों के ढेर का कारण पूछने पर श्री गुरुजी ने कहा—'बाहर से फेंके गये पत्थरों को एक जगह इकट्ठा कर दिया गया है, जिससे कि ये पैरों में न लगें'। इससे पुलिस-अधिकारी के संदेह का निराकरण हो गया।

घर में उपस्थित सभी स्वयंसेवकों के भोजन की व्यवस्था हो गयी है, ऐसा हो जाने के बाद ही श्री गुरुजी ने भोजन किया और फिर ऊपर वाले कमरे में विश्राम करने के लिये चले गये। अपराह्न काल में चार बजे घर के बाहर भीड़ इकट्ठी होने लग गयी। कब क्या हो जायेगा, कुछ भी कह पाना कठिन था। श्री गुरुजी के कमरे में झाँक कर देखा गया, वे कुछ पढ़ रहे थे। झाँकने वाले को श्री गुरुजी ने देख लिया तथा मुखाकृति से उन्होंने यह भी अनुमान लगा लिया कि ये लोग बहुत अधिक चिन्ता-ग्रस्त हैं। आश्वस्त करने के लिये और उनको धैर्य बँधाने के लिये श्री गुरुजी कहने लगे—चिन्ता की बात नहीं। अपना ही समाज है। जो करना चाहे करे ; पर हमारी ओर से कुछ नहीं किया जाये।

इस निर्देश से मार्गदर्शन स्पष्ट था, पर इससे हम लोगों की चिन्ता और जिम्मेदारी और अधिक बढ़ गयी। इसी समय श्री दत्तोपन्त देशपाण्डे श्री गुरुजी के पास गये और कहने लगे—इस विषम और विकट परिस्थिति में देश भर के स्वयंसेवकों के लिये कुछ मार्गदर्शन चाहिये।

श्री गुरुजी ने फुलस्केप साइज का कागज उठाया और लिखने के बाद हस्ताक्षर करके श्री देशपाण्डे जी को कागज दे दिया।

श्री गुरुजी ने यही मार्गदर्शन दिया था—'सभी परिस्थितियों में शान्त रहो। अपना ही समाज है।'

: १९ :

संघर्ष एवं कारावास

(एक)

गांधी हत्या के अभियुक्त

पहली फरवरी की रात को बारह बजे तक श्री गुरुजी अपने कमरे में बैठे हुए स्थान-स्थान पर स्वयंसेवकों पर होने वाले अत्याचारों के मर्मस्पर्शी वृत्त सुनते रहे। सत्तारूढ़ दल को गाँधीजी की हत्या के रूप में संघ की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई शक्ति को कुचल देने के लिये एक सुन्दर निमित्त हाथ लग गया। गाँधीजी की हत्या में संघ का हाथ है, गाँधीजी की हत्या हो जाने पर संघ के स्वयंसेवकों ने मिठाइयाँ खायीं और बाँटीं, गाँधीजी की हत्या से संघ वालों को प्रसन्नता हुई, इस प्रकार की मिथ्या बातों का प्रचार करके विरोधियों ने जनता को संघ के विरूद्ध उभारने और भड़काने में जमीन आसमान एक कर दिया। इस भ्रमपूर्ण प्रचार से जो जन-क्षोभ उत्पन्न हुआ, उस भीषण जन-क्षोभ ने संत्रस्त किया निरपराध-निर्दोष स्वयंसेवकों को। स्वयंसेवकों पर हमले किये गये, अगणित लोगों को मारा गया, हजारों स्वयंसेवकों के घर-दूकान, खेत-खलिहान जला दिये गये और न जाने कितने परिवार बेघर-द्वार कर दिये गये। स्वयंसेवकों को सताने में कोई कसर बाकी नहीं रहने दी गयी। रेडियो तथा समाचारपत्रों ने अग्निकाण्ड की खबरें देकर क्षोभाग्नि में घी का काम किया। सारे भारत में अराजकता का वातावरण व्याप्त था।

निस्स्वार्थ देशभक्तों की दारुण दुर्दशा को सुन-सुनकर श्री गुरुजी को असीम वेदना हो रही थी। तभी एक मोटर आयी। मोटर पुलिस-अधिकारी की थी। पुलिस-अधिकारी ने गिरफ्तारी का आदेश दिखलाया। वारण्ट देखकर पहले तो श्री गुरुजी हँसे, फिर पुलिस की मोटर में बैठने के पूर्व वहाँ उपस्थित कार्यकर्ताओं और स्वयंसेवकों से कहा—'सन्देह का यह पटल गल जायेगा तथा हम लोग निष्कलंक बाहर आ जायेंगे। तब तक अनेक प्रकार के अत्याचार होंगे। परन्तु हमें संयम के साथ उन सबको सह लेना चाहिये। मुझे विश्वास है कि संघ के स्वयंसेवक इस कसौटी पर खरे उतरेंगे।'

जिनकी उत्कट देशभक्ति और अहर्निश देशसेवा लोगों के लिये प्रेरणा की वस्तु थी और जिन्होंने देश को परम-वैभव-सम्पन्न बनाने के उद्देश्य से राष्ट्रव्यापी संगठन खड़ा किया, उन्ही श्री गुरुजी को गाँधी–हत्या के एक अभियुक्त के रूप में जेल के भीतर आज डाल दिया गया।

(दो)

संघ-विसर्जन की घोषणा

नेहरू सरकार ने ४ फरवरी १९४८ को राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को अवैध घोषित कर दिया और संघ के कार्यों पर प्रतिबन्ध लगा दिया। कारण यह बतलाया गया कि अनेक व्यक्ति संघ द्वारा समर्थित हिंसा-वृत्ति के शिकार हुए हैं और गाँधीजी उसकी नवीनतम बलि हैं।

राजनैतिक स्वार्थ ने सत्तारूढ़ दल के सत्य और संयम को समाप्त कर दिया था। अब संघ पर झूठे मनगढ़न्त अनर्गल आरोप लगाये जाने लगे कि संघ साम्प्रदायिक, हिंसक, आतंकवादी, प्रतिक्रियावादी, अधिनायकवादी, गुप्त सैनिक संगठन और सरकार के विरुद्ध विद्रोही है। इतना ही नहीं, गाँधीजी की हत्या से सम्बन्ध बताकर हजारों स्थानों के अगणित स्वयंसेवकों को सरकार ने गिरफ्तार कर लिया। धाराएँ ३०२ और १२० के अनुसार श्री गुरुजी तो हत्या-अभियुक्त के रूप में गिरफ्तार किये ही जा चुके थे। इन स्वयंसेवक कार्यकर्ताओं को गाँधीजी की हत्या से सम्बद्ध बताने का उद्देश्य यह था कि जनता संघ से घृणा करे। उन दिनों अखबार भी संघ के प्रति विष-वमन करते और विद्वेष फैलाने वाली खबरों से भरे रहते।

कारागृह में ही श्री गुरुजी को संघ पर सरकार द्वारा लगाये गये प्रतिबन्ध की जानकारी मिली। श्री गुरुजी यह भली भाँति जान रहे थे कि यह सरासर अन्याय है, सत्य का गला घोंटा जा रहा है और जानबूझकर अपने राजनैतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिये संघ को गाँधी-हत्या जैसे कलुषित काण्ड में घसीटा जा रहा है, ऐसी परिस्थिति में भी श्री गुरुजी ने अपना साहस और सन्तुलन आत्यन्तिक रूप से बनाये रखा। उन्होंने संघ को तत्काल विसर्जित करने का निर्णय लिया, जो उनकी अप्रतिम सहिष्णुता और अमित दूरदर्शिता का अतुल उदाहरण है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ही तो सम्पूर्ण समष्टि नहीं, वह तो समष्टि रूपी सिन्धु का एक बिन्दु मात्र है, अतः सम्पूर्ण समाज और हिन्दूराष्ट्र के हित की दृष्टि से श्री गुरुजी ने संघ-कार्य को कुछ समय के लिये विसर्जित कर देने का निश्चय किया। उन्होंने ५ फरवरी को एक वक्तव्य लिखकर जेल के बाहर भिजवाया, जिसमें संघकार्य के विसर्जन की घोषणा थी। इस वक्तव्य में श्री गुरुजीने लिखा था—'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की आरम्भ से यह नीति रही है कि सरकारी प्रतिबन्धों का पालन करते हुए ही अपने कार्यक्रम किये जायें। इस समय सरकार ने उसे अवैध घोषित कर दिया है। अतः मैं यही उचित समझता हूं कि प्रतिबन्ध हटाये जाने तक संघ को विसर्जित कर दूं, तथापि सरकार ने संघ पर जो आरोप लगाये हैं, उन्हें मैं पूर्णतया अस्वीकार करता हूं।

जो मित्र यह वक्तव्य लेकर आया, उसने दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, पूना आदि स्थानों को तार भिजवाये। सरकार ने यह सोचा कि यदि यह तार सर्वत्र पहुंच जाते हैं तो विभिन्न प्रान्तों के संघ के कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार करना कठिन हो जायेगा, अतः नागपुर में ही सब तार रोक लिये गये। उस मित्र को इस बात की आशंका थी ही। इसलिये उसने तारघर में तार देने के साथ-साथ खास आदमी भेजकर यह सूचना सब जगह पहुंचा दी। यह अवश्य है कि स्थान-स्थान पर सूचना के पहुंचने में देर जरूर हो गयी। इस सिलसिले में ठीक ही कहा गया है कि यदि एक विरोधी ने गाँधीजी की हत्या कर दी तो गाँधीजी के अनुयायियों ने गाँधीवाद की ही हत्या कर दी।

श्री गुरुजी की यह इच्छा थी कि यह वक्तव्य समाचारपत्रों में प्रकाशित हो जाये, पर सरकारी अड़ंगेबाजी के कारण यह वक्तव्य विलम्ब से समाचारपत्रों में वह भी किसी-किसी समाचारपत्र में प्रकाशित हुआ। एक विचित्र उल्लेखनीय बात यह है कि श्री गुरुजी का यह वक्तव्य सबसे पहले ६ फर-

वरी को पाकिस्तानी समाचारपत्र 'Dawn' डान ने छापा, इसके बाद दूसरों ने।

इस वक्तव्य के प्रकाशित होते ही कई लोगों ने सोचा कि संघ अब समाप्त हो गया। संघ-विरोधियों ने संघ-विसर्जन का समाचार पढ़कर चैन की साँस ली कि अब संघ का शव श्मशान-भूमि पर पहुंचा दिया गया। परन्तु वे लोग यह कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि श्री गुरुजी के अन्तःकरण में हिन्दूराष्ट्र तथा मातृभूमि की अर्चना हेतु ऐसी अखण्ड यज्ञाग्नि प्रज्ज्वलित है, जिसकी अमन्द लपटें शीघ्र ही समस्त आरोपों तथा अफवाहों को भस्मीभूत कर देंगी।

(तीन)

जेल का जीवन

सरकार स्वयं जानती थी कि संघ के ऊपर लगाये गये आरोपों को न्यायालय में सिद्ध कर सकना उसके लिये सम्भव नहीं है अतः गिरफ्तारी के पाँच या छः दिन बाद ही गाँधी-हत्या सम्बन्धी अभियोग श्री गुरुजी पर से वापस ले लिया गया और उन्हें एक साधारण कैदी के रूप में ७ फरवरी १९४८ से नागपुर जेल में ही नजरबन्द कर दिया गया। पहले उन्हें एकदम अकेला रखा गया। जब वे अकेले थे, उस समय भी समय बिताने की समस्या उनके सामने नहीं थी। ध्यान-धारणा के लिये यह मानो उत्तम अवसर मिल गया था। ईश्वर-चिन्तन के लिये इतना अच्छा सुयोग उन्हें सारगाछी के बाद ही मिला था। तब वे ईश्वर-चिन्तन से बचे हुए समय में विभिन्न-संघ-शाखाओं तथा स्वयंसेवकों का चिन्तन करते। बाद में एक बार उन्होंने कहा था——मुझे चहारदीवारी में जाकर बैठना पड़ा। मेरे सामने प्रतिदिन २४ घण्टे होते थे। कई घण्टे में एक-एक स्थान को याद करके वहाँ के स्वयंसेवकों के चेहरों को अपने मन की आँखों के सम्मुख लाता और उनसे परिचय करता। इस प्रकार अव्यक्त का चिन्तन क्लेशकर होता है। मेरे अन्तःकरण को भी क्लेश हुआ, परन्तु भावनाओं के इस संघर्ष की उपेक्षा कर मैं इष्ट कर्तव्य को करता ही रहा।

१५ फरवरी से उनके साथ सर-कार्यवाह श्री अप्पाजी जोशी, नागपुर संघचालक श्री घटाटेजी, श्री बच्छराजजी व्यास आदि को रख दिया गया। जेल में श्री गुरुजी का दैनिक जीवन एक जैसा ही रहता। वे पाँच बजे सोकर उठते। प्रातर्विधि के पश्चात् चाय पीते। तब कमरे में टहलते हुए सम्पूर्ण श्रीमद्भगवद् गीता का पाठ करते। श्रीमद्भगवद् गीता उन्हें कण्ठस्थ थी। इसके बाद कुछ घण्टे सन्ध्या-वन्दन-ध्यान में चले जाते। स्नान के पूर्व स्वयं योग-आसन करते और साथियों को सिखलाते। स्नान बासी पानी से करना पड़ता। बारह बजे तक ज्ञानेश्वरी, बाल्मिकि रामायण, तुलसी रामायण, तुकारामगाथा, दास-बोध, महाभारत आदि पढ़ते। अन्तिम दो मास में उन्हें समाचार-पत्र भी मिलने लग गये थे, किन्तु प्रायः वे उन्हें पढ़ते नहीं थे। वे लेटकर बोलकर या टहलकर कभी नहीं पढ़ते। सदा बैठकर दत्तचित्ततापूर्वक पढ़ते। बाहर की तरह जेल के अन्दर भी भोजन दिन में एक ही बार करते।

सेवा के लिये दिये गये कैदी को गन्दा देखकर वे उसे नहलाते। पहरेदारों आदि के साथ भी उनका व्यवहार आत्मीयतापूर्ण होता। वे उनसे घरेलू बातें पूछते और उन्हें सलाह देते। जेल के अधिकारियों से श्री गुरुजी प्रश्न करते कि जेल में अपराधी बनकर आया हुआ व्यक्ति जेल से बाहर निकलने पर कैसा हो जाता है ? जेल-अधिकारियों से जो विवरण सुनने को मिलता, उसके आधार पर श्री गुरुजी यही कहा करते थे—जेल की जिन वर्तमान प्रणालियों से कैदियों में जो सुधार नहीं किया जा सकता, वह संस्कार के प्रभाव से किया जा सकता है।

वे अपने चारों ओर अत्यन्त स्वच्छता रखते थे तथा कागज के टुकड़ों को भी इधर-उधर नहीं गिरने देते थे।

अपना स्थान वे स्वयं साफ करते। रात को चाय पीकर कुछ देर तक टहलते, फिर ध्यान में बैठ जाते। रात को ग्यारह बजे सो जाते।

(चार)

शासन के समक्ष निर्भीकता

देश के प्रधान मन्त्री थे पंडित नेहरू और गृह मन्त्री थे सरदार पटेल। ११ अगस्त को श्री गुरुजी ने नागपुर से पं० नेहरू और सरदार पटेल को पत्र

लिखा । पत्र का आशय यह था—मेरी समझ में नहीं आता कि मुझे तथा मेरे साथियों को बन्दी क्यों बनाया गया था । मान लें कि परिस्थिति कुछ विचित्र थी, परन्तु मुझे यह सम्भव प्रतीत नहीं होता था कि आप जैसा व्यक्ति सन्तुलन खो देगा । मैं इस बात पर विश्वास करना नहीं चाहता कि अत्युच्च पद पर आसीन व्यक्ति भी उतावली कर सकते हैं, मन का सन्तुलन खो सकते हैं, या मनमानी कर सकते हैं । किन्तु अब इसी निष्कर्ष पर पहुंचने के लिये मैं विवश हो रहा हूं । अभी भी मैं आपकी ओर मित्रतापूर्वक ही देख रहा हूं । मित्रता के इस सन्देश को मुझे सर्वत्र पहुंचाने दें और चूंकि सारे आरोप झूठे सिद्ध हुए हैं, अतः उन्हें वापस ले लिया जाये ।

उत्तर न मिलने पर श्री गुरुजी ने २४ सितम्बर को पुनः पं० नेहरू और सरदार पटेल को पत्र लिखे । अब सरदार पटेल ने ११ अगस्त वाले पत्र का उत्तर दिया । इस पत्र में सरदार पटेल ने संघ द्वारा की गयी समाज सेवा की सराहना की और उन्होंने कांग्रेस में मिल जाने का सुझाव दिया था । २४ सितम्बर वाले पत्र का उत्तर पं० नेहरू ने दिया कि संघ साम्प्रदायिक है और संघ-नेता जो कुछ बोलते हैं, वह कृति में दिखलायी नहीं देता । सरदार पटेल ने भी २४ सितम्बर वाले पत्र के उत्तर में लिखा कि प्रान्तीय सरकारें संघ पर से प्रतिबन्ध हटाने के पक्ष में नहीं हैं ।

१७ अक्टूबर को श्री गुरुजी दिल्ली पहुंचे । श्री गुरुजी सरदार पटेल से दो बार मिले । सरदार पटेल ने कहा कि संघ कांग्रेस में विलीन हो जाये । इस पर श्री गुरुजी ने कहा कि संघ पर लगाये गये आरोप झूठे सिद्ध हुए हैं इसलिये या तो उन्हें वापस लेकर प्रतिबन्ध हटाया जाये या उन आरोपों को न्यायालय में सिद्ध किया जाये । ३० अक्टूबर को सरदार पटेल ने मौखिक सन्देश भेजा कि इससे आगे विचार-विनिमय सम्भव नहीं है, अतः आप नागपुर वापस चले जायें ।

श्री गुरुजी फिर भी दिल्ली में ही रहे । इस पर ४ नवम्बर को दिल्ली के जिलाधीश ने उनकी गतिविधियों पर प्रतिबन्ध लगाने का आदेश जारी किया और उसे श्री गुरुजी के पास भेजा । श्री गुरुजी ने उस आदेश की पीठ पर ही यह लिख दिया—इस आदेश को मैं पूर्णतः अनावश्यक समझता हूं । यह राज्य के न्यायप्रिय नागरिकों की स्वतंत्रता का अपहरण करता है । इस आदेश को मानना सरकार के अन्यायपूर्ण तथा अनावश्यक कार्य में सहभागी बनना है । यही नहीं, इसको मानकर मैं स्वतंत्र देश के न्यायप्रिय नागरिक के कर्तव्य की भी अवहेलना करूँगा ।

नवम्बर के आरम्भ में पं० नेहरू यूरोप की यात्रा से वापस लौटे। सरदार पटेल भी ५ नवम्बर को दिल्ली आ गये। दोनों को पत्र लिखकर श्री गुरुजी ने समय माँगा। पं० नेहरू ने १० नवम्बर को लिखा कि संघ की गतिविधियाँ राष्ट्रघातक तथा अनेक अवसरों पर उत्पातपूर्ण तथा हिंसक होती हैं और यह मामला गृह विभाग के अधीन है, अतः आप उन्हीं के साथ वार्ता करें।

श्री गुरुजी ने १२ नवम्बर को पं० नेहरू को लिखा—संघ की गतिविधियों को आपने राष्ट्रघातक कहा है। यह अति गम्भीर आरोप है। इसके पीछे ठोस प्रमाणों का बल आवश्यक है। निर्विवाद प्रमाणों के आधार पर आरोपों को सिद्ध करने का दायित्व पूर्ण किये बिना जब तक सरकार यह आरोप लगाती जायेगी, तब तक हम भी यही कहने को विवश होंगे कि ये आरोप झूठे हैं तथा हम पर अन्याय किया जा रहा है। कहीं हम लोग उस जंगली युग में तो वापस नहीं पहुंच गये, जब किसी व्यक्ति या समूह की भावनाओं को न्यायपूर्ण न समझते हुए या मजाक के तौर पर ही किसी व्यक्ति या गुट को प्राणदण्ड दे दिया जाता था? और एक बात। आपने लिखा है कि हमारे घोषित उद्देश्य और कार्य से हमारा सही उद्देश्य और कार्य भिन्न हैं। किन्तु इस विषय में हम सभी लोग बिल्कुल अज्ञ हैं। हम लोग अपने प्रकट उद्देश्यों को ही सच्चा मानते हैं तथा सदा अपने सच्चे उद्देश्यों को ही प्रकट किया करते हैं। वेश बदलकर वास्तविकता को छिपाना, मन में न हो वह बोलना, या कभी न बोली गयी बात को मन में रखे रहना, वाणी तथा व्यवहार में मेल न रखने का प्रयास करते रहना आदि छल-कपट के विविध पहलू तो चालबाजों तथा रंग बदलने के फन में उस्ताद राजनीतिज्ञों के ही गुण हैं—शायद हो सकता है कि वे गुण उन लोगों के लिये आवश्यक भी हों। परमात्मा की कृपा से हम लोग अपने समाज की सांस्कृतिक क्षेत्र में सेवा करने वाले विनम्र सेवक हैं तथा राजनीति से दूर रहकर देश में एकता निर्माण कर रहे हैं। घोषित और सही उद्देश्यों में असंगति बनाये रखने की कला के लिये हमारे कार्य में कोई स्थान नहीं। स्पष्ट लिखने के लिये क्षमा करें। इस पत्र पर विचार करके यदि उत्तर भेजेंगे तो महत्कृपा होगी।

रात को एक बजे सरकारी विज्ञप्ति प्रकाशित हुई कि संघ के नेता का निवेदन स्वयंसेवकों की वृत्ति के साथ असंगत होने के कारण प्रतिबन्ध उठा लेने का आदेश देना सरकार के लिये असम्भव हो गया है। रात को श्री गुरुजी से पूछा गया कि क्या आप इस विज्ञप्ति का उत्तर देना चाहेंगे। तब

श्री गुरुजी ने कहा कि इसकी सभी बातों का उत्तर मैंने पहले ही दे दिया है और यह कहकर वे सोने के लिये चले गये। सरदार पटेल ने पहले ही नागपुर वापस चले जाने का सुझाव दिया था। दो घण्टे भी नहीं बीते थे कि केन्द्रीय गृह-सचिव की आज्ञा के अनुसार उन्हें बंगाल स्टेट-प्रिज्नर्स-ऐक्ट के अन्तर्गत हिरासत में ले लिया गया और वायुयान द्वारा नागपुर लाकर पुनः कारागृह भेज दिया गया।

काँग्रेस सरकार चाहती थी कि श्री गुरुजी अपने संगठन के सहित किसी भाँति काँग्रेस में सम्मिलित हो जायें। वन के मृगेन्द्र व्याघ्र को सरकार ने सरकस का शेर बनाने के लिये प्रयास कम नहीं किया पर स्वयमेव मृगेन्द्रता का आदर्श मानने वाले निर्भीक गुरुजी को सरकार न डिगा सकी और न डरा सकी।

(पाँच)

वे दिन वे यादें

जिस सरकार ने मुस्लिम लीग के प्रति तुष्टीकरण की नीति अपनायी और जमीयत पर कृपावन्त रह कर, उसको उत्साहित करती रही थी, उसी सरकार ने निर्दोष राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रति असहिष्णु होकर उस पर प्रतिबन्ध लगा दिया। उसके बाद सत्याग्रह अनिवार्य हो गया। हजारों स्वयंसेवक गिरफ्तार हुए और उन्होंने अपने त्याग पर जनता की तालियों की अपेक्षा भी नहीं की। जेलों के बाहर और भीतर उन्होंने लाठीचार्ज सहे। उनके त्याग ने जनता को अपनी ओर आकर्षित किया और अन्ततः शासकों में से कुछ ने इस बात का अनुभव किया कि जनता संघ के साथ है और समझ रही है कि सरकार शत्रुओं को पाल रही है और शुभचिन्तकों को कुचलने की गलती कर रही है।

सन् १९४९ की वर्षा ऋतु में इसी परिस्थिति ने मुझे संघ पर लगे प्रतिबन्ध के प्रश्न को किसी प्रकार सुलझाने हेतु प्रयत्न करने पर विवश कर दिया। मुझसे पहिले बड़े-बड़े लोग इस विषय में निराश हो चुके थे। मुझे सर-संघचालक श्री माधवराव सदाशिव गोलवलकर से बेतूल जेल में भेंट करने की अनुमति मिली।

एक मेहरबान पुलिस अफसर के साथ मैं बेतूल जेल पहुंचा तो अपने कार्य की गुरुता के कारण में कुछ सशंकित-सा था, फिर भी मैं अन्दर से आश्वस्त था कि सफलता मुझे मिलेगी। जेल का आँगन पार करने में बीते हुए मिनट मुझे युगों जैसे लम्बे लगे थे और तब वही लम्बी दाढ़ी और वही कृश किन्तु सुदृढ़ देहयष्टि हलके तेज कदमों से चलती हुई मेरे सम्मुख आ गयी और शीघ्र ही मेरा हाथ उनके स्नेहार्द्र हाथ में बन्द हो गया।

ऊपर से नीचे तक एक बार उन्हें देखने के बाद जब मैंने इधर-उधर देखा तो यह देखकर मुझे बड़ी निराशा हुई कि हमारी सरकार की जेलों का स्तर, राजबन्दियों के लिये अत्याचारी ब्रिटिश शासकों की जेलों से भी गया-गुजरा है। इस मामूली बैरक में मूँज की एक चारपायी थी। राजबन्दी गद्दे के स्थान पर एक दोहरा कम्बल बिछाये था, जो इतना छोटा था कि चारपायी का पायताना वाला भाग खाली था। न दरी थी, न गद्दा, न चादर। फर्श ठण्डा और सीलन भरा था। लकड़ी की सीट वाली दो टूटी कुर्सियाँ, बाबा आदम के जमाने की एक छोटी-सी मेज, एक स्टूल, एक तारों की टोकरी, मिट्टी के तेल का स्टोव, हरीकेन लैम्प, खूँटी पर टँगी हुई लाल टावेल और हाथ से धुली हुई एक कमीज, कृष्ण-मन्दिर के चित्र का यही विवरण था। यह सब बहुत उदास लगता, यदि श्री गोलवलकर अपनी संक्रामक हँसी और स्वाभाविक प्रफुल्लता से मेरा स्वागत न करते। अभिवादन के पश्चात् जब मैंने उनके स्वास्थ्य के विषय में प्रश्न किया तब श्री गुरुजी ने लापरवाही से उत्तर दिया—मेरा शरीर तो परमात्मा की सेवा के लिये अर्पित हो चुका है, इसे स्वस्थ या रोगी रखना उसका काम है।

पुलिस के अधिकारी ने एक कुर्सी सामने कर दी किन्तु श्री गुरुजी ने अपना अलवान जमीन पर बिछा दिया और हम लोग उनके साथ नीचे बैठ गये। जिस कोने में वह टोकरी और स्टोव रखा था, उसके निकट ही बैठने का स्थान श्री गुरुजी ने क्यों चुना, यह मैं सोच ही रहा था कि उनकी आँखों ने चाय बनाकर पीने का आमन्त्रण दिया। मैं मुग्ध हो गया। श्री गुरुजी ने स्टोव जलाया और हम लोगों ने चाय पी।

० ० ० ० ०

थोड़े ही दिन बाद संघ पर से प्रतिबन्ध उठ गया और श्री गुरुजी के जेल से छूटने पर उनका स्वागत करने हेतु मुझे दिल्ली से विमान द्वारा नागपुर जाना पड़ा। यह दूसरा चिरस्मरणीय दिवस था। नागपुर के सहस्रों नागरिक अपने नेता का स्वागत करने निकल पड़े थे—स्त्रियाँ आरती और

कुमकुम लिये थीं, पुरुष फूल-मालाएँ लिये और जोर-जोर से जयकारे लगाते हुए। नियन्त्रित न की जा सकने वाली उस भीड़ में कुचलने से बचना एक बड़ी समस्या थी। मुझे स्वतन्त्रता के लिये की जाने वाली उस सामूहिक लड़ाई की याद आ गयी। मैंने देखा कि वह संघर्ष आज भी चल रहा है--विदेशी ब्रिटिशों से मुक्त होने के लिये नहीं, उन विचारधाराओं के पाश से मुक्त होने के लिये, जो ब्रिटेन-अमेरिका-रूस से भारत में लायी गयी हैं, उस भारत का निर्माण करने के लिये, जो अभी तक 'इंडिया' ही बना है।

: ३० :

व्यथित अन्तर

(एक)

मैंने रोते देखा है

भारत विभाजन के दौरान श्री गुरुजी अमृतसर में थे। संघ के स्वयंसेवक पाकिस्तान बने क्षेत्रों से मार-पिट-कर व लुटकर आने वाले हिन्दू बन्धुओं की हर प्रकार की सेवा में तत्पर थे। श्री गुरुजी जब लाहौर मुलतान करांची आदि अनेक स्थानों पर अपने हिन्दूजनों की रक्षा के लिये बड़े-से-बड़ा बलिदान देने की व अत्याचार सहन करने की घटनाएँ सुनते तो उनका हृदय द्रवित हो उठता। कई बार तो मैंने स्वयं उन्हें बच्चों की तरह फूट-फूटकर रोते देखा है।

एक दिन प्रख्यात नेता श्री मेहरचन्द महाजन तथा जस्टिस श्री रामलाल श्री गुरुजी से भेंट करने आये। श्री महाजनजी ने कहा— गुरुजी, हम तो रिफ्यूजी हैं।

श्री गुरुजी ने यह वाक्य सुनते ही कहा—नहीं, नहीं, आप रिफ्यूजी नहीं हैं, अपितु यह समस्त राष्ट्र प्रत्येक व्यक्ति का है। आप सब उसके समान अधिकारी हैं। कोई अपने ही देश में 'शरणार्थी' कैसे हो सकता है? आसेतु हिमाचल सारा राष्ट्र एक है।

श्री गुरुजी कुछ क्षण रुके तथा बोले— जो हिन्दू बन्धु अपने

पावन धर्म की रक्षा के लिये दर-दर की ठोकरें खाकर भी इधर आ रहे हैं, उनके बलिदानों को कभी भुलाया नहीं जा सकता है। वे इस भीषण परीक्षा में सफल हुए हैं।

सायंकाल अमृतसर की एक विराट सभा का आयोजन था। कुछ ही देर पूर्व हिन्दू बन्धुओं के बलिदानों की एवं उन पर हुए अत्याचारों की घटनाएँ सुनकर विदीर्ण हुये हृदय ने सभा में पूर्ण धैर्य का परिचय दिया। उनकी वाणी में न उत्तेजना थी और न आवेश। शान्तभाव से उपस्थित लाखों विस्थापितों को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा–

हमारा पहला कर्तव्य है स्वतन्त्र हुए अपने राष्ट्र की रक्षा एवं संवर्धन के कार्य में जी-जान से जुट जाना। अपना बचा हुआ भू-भाग किस प्रकार सुरक्षित रहकर समृद्धि प्राप्त करे, इसका सबको मिलकर चिन्तन करना होगा। दूसरा लक्ष्य है, 'जो नहीं है, उसकी प्राप्ति' अर्थात् जो हमसे छीन लिया गया है, उसे प्राप्त करके पुनः अखण्ड भारत की स्थापना का प्रयास।

श्री गुरुजी इसी स्वप्न को हृदय में सँजोये अपने जीवन के अन्तिम क्षणों तक प्रयत्न करते रहे।

: ३१ :

राष्ट्रीय दृष्टिकोण एवं एकात्मता

(एक)

राष्ट्रीय एकात्मता का परिपोषण

श्री गुरुजी का अथक और असीम परिश्रम राष्ट्रीय एकात्मता और अखण्डता के प्रति समर्पित था। राजनैतिक स्वार्थ की आँधी में बड़े-बड़े लोगों के पैर उखड़ते देखे गये हैं। ऐसे व्यामोह और स्वार्थ की आँधी के बीच भी श्री गुरुजी को हमने राष्ट्रहित में अडिग पाया है। पंजाब की ही बात है। पंजाबी भाषा और हिन्दी भाषा का भाषाई आन्दोलन चल रहा था। हिन्दुओं में आपसी तनाव था। केशधारी और गैर केशधारी बन्धुओं के बीच विवाद उठ खड़ा हुआ था। जब श्री गुरुजी पंजाब के दौरे पर आये तो इस विवाद के सम्बन्ध में उनके विचार सुनने के लिये अमृतसर जालन्धर लुधियाना आदि सभी स्थानों के सार्वजनिक कार्यक्रमों में जनता बड़ी संख्या में उपस्थित हुई। श्री गुरुजी ने विवाद में उलझे हुए दोनों पक्षों को इस कटुता के लिये जिम्मेदार ठहराया। उन्होंने कहा–'सत्य स्वीकार न करने के कारण ही यह झगड़ा खड़ा हुआ। पंजाब में पंजाबी मातृ भाषा है, इसे सभी को स्वीकार करना चाहिये। साथ ही सिक्ख बन्धुओं को अपने को हिन्दू कहलाने से कदापि इंकार नहीं करना चाहिये।'

श्री गुरुजी के इस स्पष्ट कथन से हिन्दी-भाषा-आन्दोलन के नेताओं को बुरा लगा। वे श्री गुरुजी के पास आये। श्री गुरुजी ने उनसे कहा कि आप मेरी बात पर शान्तिपूर्वक और राष्ट्रीय एकात्मता की दृष्टि से विचार करेंगे तो आपको मेरे कथन की सच्चाई सहज ही समझ में आ जायेगी। उसी प्रकार चण्डीगढ़ में पंजाबी-भाषा-आन्दोलन के सिक्ख नेता उनसे मिलने आये। उन्होंने बधाई दी तो श्री गुरुजी ने उनसे कहा कि आपने मेरी एक बात ही शायद सुनी समझी है, पर मेरी दूसरी बात भी आपको भली-भाँति सुननी समझनी चाहिये। पंजाबी जिस प्रकार पंजाब के सभी लोगों की मातृ-भाषा है, उसी प्रकार गुरु श्री नानक देव से लेकर गुरु श्री गोविन्द सिंह जी का अनुयायी सिक्ख समाज हिन्दू ही है। यह सत्य आप लोगों को निस्संकोच मानना चाहिये। ऐसा न करने के फलस्वरूप यह मनोमालिन्य अकारण ही उत्पन्न हुआ है।

हिन्दू समाज के भिन्न-भिन्न मतों में भी जैनमत एक प्रभावशाली मत है। जैन मत के अनेक श्रेष्ठ आचार्यों एवं मुनियों से श्री गुरुजी का घनिष्ट स्नेह-सम्बन्ध था। जब कभी जैनमत और अन्य मतावलम्बियों के बीच वाद-विवाद उत्पन्न हुआ वे तुरन्त इस प्रकार के आपसी मतभेदों को दूर करने के लिये और समाज की एकात्मता को अखण्ड बनाये रखने के लिये पूरी शक्ति के साथ प्रयत्न करते थे। श्री गुरुजी के शब्दों का सभी लोग सम्मान भी करते थे।

यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि अपने देश में बड़े-बड़े लोग हिन्दू धर्म और बौद्ध धर्म, इस प्रकार की शब्दावली को उपयोग में लाते हैं, मानो ये दोनों अलग-अलग स्वतन्त्र धर्म हों। श्री गुरुजी बौद्धमत को भारत के व्यापक सनातन धर्म का ही एक अंग मानते थे। स्वर्गीय श्री बाबा साहब अम्बेडकर जब हरिजनों के उद्धार के लिये धर्म परिवर्तन की बात पर विचार कर रहे थे तो ब्रह्म देश के प्रधान मंत्री ने उन्हें रंगून में आमन्त्रित किया था। तब वहाँ के प्रमुख नेता श्री ऊँ चा ठुन, जो वहाँ के उच्च न्यायालय के न्यायाधीश थे, भारत पधारे थे। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्य की किञ्चित् जानकारी उन्हें पहले से थी। अतः श्री गुरुजी से भेंट करके उन्होंने संघ के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त की और नव-बौद्धों तथा शेष हिन्दू समाज के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि बौद्ध धर्म भारत के बाहर भारत के सनातन धर्म का ही रूप है।

बम्बई में संघ के एक विराट कार्यक्रम में श्री गुरुजी के साथ वे उपस्थित

रहे। उनके स्वागत में देश के बड़े-बड़े नगरों में नव-बौद्धों द्वारा जो कार्यक्रम हुए, उनमें संघ के स्वयंसेवकों ने पूर्ण सहयोग दिया। मद्रास का अन्तिम कार्यक्रम सम्पन्न करके जब श्री ऊँ चा ठुन अपने देश को लौट रहे थे, तब नव बौद्धों के नेताओं से उन्होंने आग्रहपूर्वक कहा—आपका बौद्ध-मतावलम्बी बनना यदि किसी राजनैतिक उद्देश्य आदि से प्रेरित नहीं है, तब तो आपकी उन्नति होगी और इस कार्य में आपके सबसे निकट सहयोगी केवल राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के लोग हो सकते हैं। उनसे आपको अपने सम्बन्ध बढ़ाने चाहिये।

इस प्रकार श्री गुरुजी का राष्ट्रीय एकात्मता का दृष्टिकोण अति व्यापक था और उस एकात्मता की भावना को परिपुष्ट करने के लिये, अपितु अधिकाधिक सबल और सुदृढ़ बनाने के लिये वे भिन्न-भिन्न प्रकार से विविध प्रयत्न निरन्तर करते रहे।

(दो)

देश-हित के साथ कोई शर्त नहीं

एक बार भारतीय मजदूर संघ के हम सब कार्यकर्ता उनसे मिलने गये। वे हम लोगों को देखते ही Communist party of R. S. S. के कार्यकर्ता सम्बोधित कर बड़ी देर तक हँसते-हँसाते रहे। तत्पश्चात् कई प्रश्नों के माध्यम से हम लोगों को उन्होंने दिशा निर्देश किया। उन्होंने पूछा —क्यों जी ! तुम लोगों की जो साझे की सौदेबाजी (Collective bargaining) है उसमें और 'डाकेजनी' में कितना अन्तर है ?

अपने तरीके से हम लोगों ने उत्तर दिया। फिर प्रश्न करके उन्होंने पूछा —'चाहे जो मजबूरी हो, हमारी माँगे पूरी हों' तथा 'आधा काम व पूरा दाम' के बारे में तुम लोगों का क्या मत है ?

हम लोगों ने 'देश के हित में करेंगे काम, और काम के लेंगे पूरे दाम' का अपना घोष-वाक्य बताया। इस पर उन्होंने जो प्रति-प्रश्न किया, हम लोगों के मार्ग दर्शन के लिये पर्याप्त था। उन्होंने पूछा—क्या काम के पूरे दाम नहीं मिलेंगे तो देश के हित में काम नहीं करोगे ?

उन्होंने आगे बताया—देश के हित के साथ कोई शर्त नहीं रखनी चाहिये।

आखिर के दो प्रश्नों में से एक में उन्होंने सफाई-कर्मचारियों, रिक्शा चालकों, बुनकरों आदि असंगठित क्षेत्र के मजदूरों में काम की स्थिति के बारे में पूछा। फिर इस असंगठित क्षेत्र में काम बढ़ाने का निर्देश दिया।

दूसरे प्रश्न में उन्होंने कहा—देखो ! तुम लोग उपेक्षित तथा सताये हुए लोगों के बीच काम करते हो, उनका जीवन किस प्रकार मंगलमय हो सकेगा, इस पर विचार करो। इसके लिये जो भी उचित मार्ग हो, अपनाओ। लड़ने-भिड़ने की आवश्यकता हो, उसे भी करो। यह सब करते समय बहुत से प्रलोभन आवेंगे, दबाव आवेगा, किन्तु तुम लोगों से आशा यही है, किंचित भी किसी प्रकार झुकोगे नहीं।

(तीन)

कबड्डी का खेल

सन् १९४७ ई० में लाहौर में हिन्दुओं का भीषण संहार हो रहा था। सेना से भी सशस्त्र मुस्लिम गुंडे लड़ते थे। एक स्थान पर मुस्लिम गुंडों ने एक मकान की छत पर अपना मोर्चा बनाकर नीचे रास्ते पर चलने वाले हिन्दुओं को मारना आरम्भ कर दिया। भारतीय सेना की एक टुकड़ी को उन पर काबू पाने के लिये भेजा गया। गुंडे छत पर थे और सैनिक नीचे। गुंडे तो सेना पर भी दनादन गोलियाँ चलाने लगे। सेना के लिये गुण्डों पर गोली चलाना असम्भव था, क्योंकि छत पर दीवाल के पीछे छिपकर गोली चला रहे थे। उन पर काबू पाने के लिये ऊपर चढ़कर उनकी बन्दूक छीनना आवश्यक था। सेना का कोई भी सैनिक प्राणों का खतरा मोल लेने को तैयार नहीं था। सेनाधिकारी बहुत चिंता में पड़ गया।

इसी समय एक नवयुवक भीड़ से निकल कर आया और मकान की एक लौहनलिका को पकड़कर ऊपर चढ़ने लगा। जब गुण्डों ने उसे देखा तो वे उस पर गोलियाँ चलाने लगे। किसी तरह वह नवयुवक ऊपर चढ़ गया। गोलियाँ भी उसके लगी थीं, किन्तु उसने उनकी परवाह न करके गुंडों से बन्दूक छीन

ली। गुंडे भाग गये। तब कहीं सेना ने उस मोर्चे को अपने कब्जे में कर पाया। 'गढ़ आया, परन्तु सिंह चला गया।'

थोड़े ही समय पश्चात् वह नवयुवक अपना जीवन-कार्य समाप्त कर गया। फिर पता लगा कि वह नवयुवक राष्ट्रीय-स्वयंसेवक-संघ का स्वयंसेवक था। सेनाधिकारी पर इस घटना का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा।

१५ अगस्त ४७ को भारत का दुःखद विभाजन हुआ। भारतीय (हिन्दू) सेना भारत में बुला ली गयी। दो ही मास पश्चात् श्री गुरुजी का पंजाब में दौरा हुआ। वे अमृतसर भी गये। उस अवसर पर संघ के कार्यक्रम के समय उक्त सेनाधिकारी अपने प्लैटून (Platoon) के साथ सैनिक गणवेश में संघ-स्थान पर उपस्थित थे। जैसे ही श्री गुरुजी ने ध्वजोत्तोलन किया कि सेना ने बन्दूकों के फायर से ध्वज की सैनिक वन्दना की। लोग हैरान थे कि यह सब कैसे हुआ ?

संघ का उत्सव समाप्त होने पर उक्त सेनाधिकारी ने आकर श्री गुरुजी को नत-मस्तक होकर प्रणाम किया। परिचय के पश्चात उन्होंने उपर्युक्त सब घटना सुनायी और कहा—संघ के उस स्वयंसेवक की वीरता को देखकर मैं बड़ा ही चकित हूं। मरने-मारने के लिये सदैव प्रस्तुत रहने वाले वेतन-भोगी सैनिक जहाँ आगे बढ़ने का साहस नहीं कर पाये, वहाँ उस स्वयंसेवक ने स्वयं-प्रेरणा से आगे बढ़कर लोगों के प्राण बचाये हैं। यही तत्परता मुझे अन्य स्वयंसेवकों में भी देखने को मिली। भारतीय सेना के शूर सैनिक भी जो धैर्य, जो शौर्य, जो पराक्रम दिखला नहीं सके, ऐसे साहस का आप अपने स्वयं-सेवकों में किस प्रकार निर्माण करते हैं ?

श्री गुरुजी ने हँसकर उत्तर दिया—शाखा में प्रतिदिन कबड्डी खिलाकर।

श्री गुरुजी का यह छोटा-सा उत्तर उन सेनाधिकारी को जँचा नहीं। उसने श्री गुरुजी से कहा—यह भला कैसे सम्भव है कि कबड्डी के माध्यम से आप इतना पराक्रम अपने स्वयंसेवकों में भर देते हैं ?

अपनी बात को अधिक स्पष्ट करते हुए श्री गुरुजी ने कहा— संघ की शाखाओं में जो स्वयंसेवक प्रतिदिन एकत्रित होकर एक साथ खेलते हैं तथा अन्य शारीरिक एवं बौद्धिक कार्यक्रमों में भाग लेते हैं, वह स्वयंसेवक फिर चाहे किसी जाति का हो या किसी पंथ का हो, चाहे अमीर हो या गरीब, शिक्षित हो या अशिक्षित, किसी भाषा का बोलने वाला हो, सब प्रकार के भेद-भावों को भूलकर 'हम सब भारत माता की सन्तान हैं, इस भावना से उन एकत्रित होने वाले सभी स्वयंसेवकों में परस्पर बन्धुत्व की, अपनत्व की भावना को

विकसित किया जाता है। विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से प्रखर देशभक्ति और मातृभूमि की सेवा में सर्वस्व अर्पण करने का भाव जगाया जाता है। शाखाओं में नित्य इसी प्रकार के संस्कार दिये जाते हैं। जो लोग संघ की दैनन्दिन शाखा पर नहीं आते, उन्हें वस्तुत: समझा सकना बड़ा कठिन है कि किस प्रकार कबड्डी जैसे खेलों के माध्यम से देश-प्रेम, धर्म-प्रेम की शिक्षा दे दी जाती है। स्वयंसेवकों के समूह-के-समूह ने स्वयं को देश-धर्म पर सोत्साह न्यौछावर कर दिया, यह आत्मोत्सर्ग ही मेरी बात को प्रमाणित कर रहा है।

: ३१ :

स्वयंसेवक का सुसंस्करण

(एक)

कार्यकर्ता गढ़ने का तरीका

सन् १९६४ के मार्च मास में मैं प्रतिनिधि सभा के लिये नागपुर गया था। तब मैं महाकौशल प्रान्त में विन्ध्य विभाग का प्रचारक था। एक दिन दोपहर की चाय के समय श्री गुरुजी ने मुझसे कहा—अरे भाई ! तुम्हारा विभाग पहले एक प्रान्त ही था। उसमें आजू-बाजू के कुछ जिले मिलाकर हम भी एक प्रान्त बना दें और तुमको उसका प्रान्त-प्रचारक बना दें तो तुम्हारा दिमाग कितना चढ़ जायेगा ?

इस प्रश्न का क्या उत्तर दूं, सहसा समझ में नहीं आया। थोड़ी देर बाद मैं बोला—दिमाग चढ़ने की तो बात नहीं है, किन्तु मुझे ऐसा लगता है कि प्रान्त-प्रचारक बनने की क्षमता मुझमें नहीं है।

श्री गुरुजी ने कहा—कार्यकर्ता के लिये ऐसा सोचना भी ठीक नहीं है। यह हीनभावना भी कार्यकर्ता के मन में नहीं आनी चाहिए।

मैंने विनम्र शब्दों में कहा—एक बोध-कथा में मैंने ऐसा पढ़ा था कि अपने को क्या काम करना है, इसका विचार तो संगठन ही करेगा। हमारा काम तो दिये हुए उत्तरदायित्व को पूरी निष्ठा के साथ सम्पन्न करना है। यदि सफलता मिली तो

उसका श्रेय संगठन को है कि उसकी योजना ठीक थी। पर यदि असफलता मिली तो उसका दोष भी संगठन पर ही है क्योंकि उसका चयन ठीक नहीं था।

श्री गुरुजी ने कहा—बोध-कथा पढ़ लेने से क्या होता है? कार्यकर्ता को सोचना यही चाहिये कि जो भी कार्य मिलेगा, उसे मैं अपनी क्षमता के अनुसार पूरी लगन के साथ करूंगा।

दो मास बाद मध्य-भारत के प्रान्त-प्रचारक के रूप में मुझे दिये गये कार्य-भार की घोषणा की गयी, तब मुझे उपर्युक्त बात का संदर्भ समझ में आया। यह भी ध्यान में आया कि बड़ा दायित्व आने पर यदि मन में अहंकार और अपने बड़प्पन का भाव उभरता है, तो वह कार्य के लिये हानिकारक सिद्ध होगा ही। जब कभी ऐसा भाव मेरे मन में स्फुरित होता कि 'मैं प्रान्त-प्रचारक हूं,' तभी मुझे श्री गुरुजी का वह वाक्य याद आ जाता कि तुम्हारा दिमाग कितना चढ़ जायेगा। इस वाक्य के याद आते ही मैं अपने को एक सामान्य कार्यकर्ता मानकर चढ़ते हुए दिमाग को ठिकाने पर लाने में सफल हो जाता। कार्यकर्ताओं को गढ़ने का श्री गुरुजी का तरीका ऐसा ही अनूठा था।

(दो)

भाई भी नाराज क्यों रहें ?

हम कई लोगों ने संघ-कार्य के प्रचारार्थ निकलने का निश्चय कर रखा था। यह बात सन् १९४२ की है। प्रचार-कार्यार्थ निकलने वाले हम लोगों की एक बैठक नागपुर-प्रान्त-संघचालक माननीय श्री बाबासाहब जी घटाटे के निवास स्थान पर हुई—बैठक में भाग लेने के लिये मैं वहाँ पहुंचा। श्री गुरुजी नीचे के कमरे में बैठे हुए थे। मैं ऊपर जा ही रहा था कि श्री गुरुजी ने मुझको बुलाया। नमस्कार करने के बाद उन्होंने मुझसे पूछा—तुम्हारे घर में जो श्री घनश्यामजी हैं, वे कौन हैं और क्या वे तुमसे कुछ अप्रसन्न हैं?

मैंने कहा—वे मेरे बड़े भाई हैं। नाराजगी का कोई कारण तो होना नहीं चाहिये। आप उन्हें कैसे जानते हैं?

श्री गुरुजी बोले—संघ-कार्यार्थ तुम्हारे द्वारा नौकरी छोड़ा जाना उन्हें पसन्द नहीं है।

मैंने कहा—मैंने उनसे तो पूछा नहीं है। हाँ, माताजी से अनुमति प्राप्त कर ली है।

किंचित् सन्तुष्ट स्वर में श्री गुरुजी ने कहा—अच्छा, अब तो ठीक हो गया। परन्तु तुम्हें भाई की भी नाराजगी दूर करनी होगी। भाई साहब भी नाराज क्यों रहें?

इतना कहकर श्री गुरुजी ने भाई साहब का पत्र मुझे दे दिया। जब मैंने सारा पत्र पढ़ लिया तो श्री गुरुजी मुझसे फिर बोले—फिर मैं उनको क्या लिखूं?

मैंने कहा—आपको लिखने की आवश्यकता नहीं है, मैं ही लिख दूंगा।

श्री गुरुजी बोले—अवश्य लिख देना। मगर नहीं। पत्र का उत्तर मुझे भी देना चाहिये। श्री डाक्टरजी प्रत्येक पत्र का उत्तर देते ही थे। पत्र का उत्तर मुझे ही देना होगा। पत्र मेरे नाम आया है।

इतने में चाय आ गयी। उन्होंने आग्रहपूर्वक चाय पिलायी। आगत लोगों की चाय की व्यवस्था का उन्हें बहुत ध्यान रहता था। वे स्वयं सभी पत्रों का उत्तर खुद देते थे। उनके इस स्वभाव को लोग उनकी हॉबी बताया करते थे।

(तीन)

परिचय : एक सरस कार्यक्रम

प्राय: सभी कार्यकर्ता-बैठकों के आरम्भ में परिचय का कार्यक्रम रहता ही है। सन् १९४४-४५ में उत्तर प्रदेश के बरेली शहर के एक कार्यक्रम में श्री गुरुजी को मैंने सबसे पहले और बहुत पास से देखा था। बैठक थी बरेली जिले के पीताम्बरपुर स्थान की। मैं था शाखा का एक बाल-स्वयंसेवक, साथ ही सह-शिक्षक और मैं कक्षा ९ का विद्यार्थी था। मुझसे भी उनका वही प्रश्न था—क्या नाम है?

मैंने उत्तर दिया—श्याम बहादुर वर्मा।

श्री गुरुजी ने पुनः प्रश्न किया—'बहादुर' नाम क्यों रखा है ?

मैंने उत्तर दिया–हमारे घर में सभी 'बहादुर' हैं।

यह ठीक बात सहज ढंग से कही गयी थी। श्री गुरुजी ने विनोदपूर्वक कहा–घर पर तो सभी बहादुर होते हैं। प्रश्न तो बाहर का है।

सब हंस पड़े। मैं जैसे-तैसे अपना परिचय पूरा करके अपने स्थान पर बैठ गया।

अगले वर्ष कार्यकर्ता-बैठक में श्री गुरुजी ने फिर वही प्रश्न किया–नाम में 'बहादुर' क्यों रखा ?

इस बार मैं सावधान था। मैंने बदलकर उत्तर दिया—बड़े होने पर बहादुरी के काम करने हैं, इसलिये।

श्री गुरुजी ने फिर विनोद-भरे स्वर में पूछा—अच्छा, बड़े होने पर ! और अभी ? फिर उनके उन्मुक्त हास्य से वातावरण गूंज उठा। अपने कार्यकर्ता को उत्तर देने में कुशल होना चाहिये, उनकी यही दृष्टि सदा रहा करती थी।

एक बार लखनऊ के एक कार्यकर्ता ने अपना नाम बताया—माताबदल।

श्री गुरुजी ने प्रश्न किया—माताबदल का क्या अर्थ है ?

अपना बचाव करने के लिये उस स्वयंसेवक-कार्यकर्ता ने कहा–मेरे माता-पिता अशिक्षित हैं, अतः यह दकियानूसी नाम रख दिया है। यह नाम अर्थहीन और हास्यास्पद है।

यह सुनते ही श्री गुरुजी ने कुछ कड़ेपन के साथ ऐसा-कुछ कहा था—वे माता-पिता अशिक्षित भले ही हों, पर उन्होंने तो नाम ठीक ही रखा था। हाँ, तुम अवश्य शिक्षित होकर भी नासमझ हो, जो ऐसा बोलते हो। अपने अज्ञान को ढकने के लिये अपने बड़ों में-अपने पूर्वजों में दोष-देखना, दोष-थोपना कहाँ तक उचित है ? अरे भाई ! माताबदल का अर्थ है श्रीकृष्ण। माताबदल अर्थात् श्रीकृष्ण की माता दो बार बदली गयीं थीं। पहले देवकी से यशोदा और फिर यशोदा से देवकी।

सम्पूर्ण वातावरण इस व्याख्या पर मुग्ध नहीं, विमुग्ध था। बात-ही-बात में कितनी बड़ी बात हो गयी ! एक छोटी-सी बात के सहारे से उन्होंने कितनी महान् शिक्षा दे दी कि अपने पूर्वजों पर और अपनी पुरातन बातों पर टिप्पणी मत करो, उसकी गहराई में उतरने की कोशिश करो।

: ३३ :

वात्सल्य-सिन्धु

(एक)

पंखे की हवा

बात सन् १९५४ ई० की है। बरेली में संघ-शिक्षा-शिविर लगा हुआ था। मई-जून की भीषण गर्मी और लू के थपेड़ों से जीव-मात्र परेशान रहते हैं। स्थानीय मनोहर इण्टर कालेज के हॉल में बौद्धिक कार्यक्रम होते थे। मैं भी द्वितीय वर्ष का शिक्षण ले रहा था। हम लोगों के रहने की व्यवस्था गुलाबराय एवं कुँवर दयाशंकर इण्टर कालेज में थी।

श्री गुरुजी का आगमन हुआ। जिस दिन उनका प्रथम बौद्धिक था, उस दिन बेहद गर्मी थी। स्थानीय प्रचारक श्री राजेन्द्रजी शर्मा ने हॉल के मंच के बीचो-बीच बिजली का पंखा लगवा दिया था, जिससे श्री गुरुजी को बौद्धिक के समय गर्मी न लगे। हॉल में और कहीं भी पंखे की व्यवस्था नहीं थी।

श्री गुरुजी जब हॉल में पहुंचे तो नीरवता एकदम से व्याप्त हो गयी। आते ही उनकी पहली दृष्टि मंच पर लगे हुए पंखे पर गयी और फिर दूसरी दृष्टि हॉल की उस टीन पर गयी, जिसकी तपन से हॉल में बैठे हुए संघ-स्वयंसेवक पसीने में सरा-बोर हो रहे थे। उन्होंने देखा कि हॉल में कोई पंखा नहीं है।

इस पर उन्होंने सब स्वयंसेवकों की परेशानी को भाँप लिया। मेरी दृष्टि ने उनकी इस बात को तुरन्त ताड़ लिया। थोड़ी ही देर में परिणाम भी सामने आ गया। श्री गुरुजी मंच पर ऐसी जगह पर बैठे, जहाँ पर पंखे की हवा बिल्कुल नहीं आती हो। जब वे बौद्धिक देने के लिये खड़े हुए, तब भी ऐसे स्थान पर खड़े हुए, जहाँ हवा लेश-मात्र भी न पहुंचती हो।

दूसरे दिन जब वे बौद्धिक के लिये जाने वाले थे तो श्री राजेन्द्रजी शर्मा ने पंखा का रुख उसी तरफ करवा दिया था, जिस ओर पहले दिन खड़े होकर श्री गुरुजी ने बौद्धिक दिया था। समय पर श्री गुरुजी पहुंचे और इस बार पंखे के विपरीत रुख पर खड़े हो गये। जब श्री राजेन्द्रजी शर्मा पंखे का रुख बदलने चले तो श्री गुरुजी ने ऐसा करने को तुरन्त मना कर दिया। पंखा चलता रहा एक तरफ, बौद्धिक होता रहा दूसरी तरफ। पंखे की हवा उनके काम नहीं आ सकी।

दूसरे दिन उत्तर प्रदेश के प्रान्त प्रचारक श्री रज्जू भइया के संकेत पर हाल में नये पंखे लगवा दिये गये और मंच के पंखे का रुख सीधा करवा दिया गया। श्री गुरुजी सदा की भाँति समय पर आये। उनका बौद्धिक पंखे के नीचे खड़े होकर हुआ। जब स्वयंसेवकों को हवा मिली, तभी उन्होंने भी उसका उपयोग किया।

●

(दो)

उन्हीं की कृपा से स्वस्थ

कर्नाटक के बेलगाव में संघ का शिक्षा वर्ग था, उसमें एक हजार शिक्षार्थी थे, मैं भी था। वहाँ मैसूर राज्य के स्वयंसेवकों की एक बैठक में गुरुजी ने कहा– सभी की इच्छा है और सभी कहते हैं कि काम बढ़ाओ, लेकिन अपने घर की चहारदीवारी छोड़कर कोई बाहर जाना नहीं चाहता।

फिर उन्होंने पूछा– कोई समझा क्या ?

सभी के साथ मैंने भी हाथ ऊपर उठाया। वे बोले– बताओ, क्या समझे ?

मैंने जो समझा उसे गुरुजी को कन्नड़ में बता दिया। मुझे यहाँ गुरुजी

के प्रथम बार ही दर्शन हुए थे, किन्तु उनके उक्त वाक्य का मेरे छात्र-जीवन पर यह प्रभाव पड़ा कि उसके एक वर्ष बाद मैं संघ का प्रचारक बनकर निकल गया। वह सन् १९४८ था। कई जिलों में कार्य करते रहने के बाद सन् १९५१ में मुझे कुछ चर्म रोग का कष्ट हो गया। पाँच साल बाद सन् १९५७ में जब मैं गुलबर्गा में जिला प्रचारक था, उस समय इस रोग ने भयंकर रूप धारण कर लिया, जो सन् ५८ तक रहा। सभी उपचार विफल रहे। फिर मैंने सोचा कि यह शरीर संघ-कार्य के योग्य नहीं रहा तो इसको रखने से प्रयोजन क्या? क्यों न घर वापस जाकर इस देह को समाप्त कर दूं? जब यह विचार प्रबल हो उठा, तब मैं गुरुजी से यह बात कहने पूना स्टेशन गया। वे बम्बई से मद्रास के प्रवास पर जा रहे थे और उस समय एक वर्ष से इलाज के लिये मैं पूना में ही था।

स्टेशन पर स्वयंसेवकों की भीड़ थी, मैं भी एक किनारे खड़ा सोच रहा था कि इतने लोगों के बीच में कैसे बात कर सकूंगा। इसलिए जो कहना है, वह लिखकर जेब में भी रख लिया था कि यदि बात करना सम्भव न हो सका तो वहीं उन्हें दे दूंगा। ट्रेन आयी। गुरुजी डिब्बे के द्वार पर ही खड़े थे। डिब्बा सामने रुकते ही गुरुजी ने उस भीड़ में भी मुझे आवाज दी—रंगनाथराव! नागपुर आ जाना।

तत्काल उन्होंने तिथि, ट्रेन आदि भी बता दी और कहा– मैं उस दिन वहाँ रहूंगा। औषधि की व्यवस्था वहाँ हो जायेगी।

मैं कुछ बोल न सका। बाद में श्री यादवराव जोशी से कहा– क्या करूँगा नागपुर जाकर? अब मैं ठीक नहीं होऊँगा। घर चला जाता हूं।

जीवन से मैं सर्वथा निराश ही हो चला था। जब श्री यादवराव जोशी ने श्री गुरुजी से मेरी बात कही तो वे बोले– नहीं, नहीं। उसकी बात पर ध्यान मत दो। उसका क्या है, वह तो शायद प्राणत्याग भी कर देगा। तुम उसे नागपुर जरूर भेजो।

विवश-सा मैं नागपुर गया और अब तो उस बात को २२ बरसातें गुजर चुकी हैं। आज गुरुजी भी नहीं हैं, परन्तु मैं जो यहाँ लगभग स्वस्थ दशा में सब प्रकार की सेवा निभा लेता हूं, वह गुरुजी की ही कृपा का फल है, अन्यथा पता नहीं, मैं कब का संसार छोड़ चुका होता। ऐसी थी उनकी करुणा और अपने सामान्य कार्यकर्ता के प्रति वत्सलता।

: ३४ :

विशद ज्ञान, सूक्ष्म दृष्टि प्रखर स्मृति

(एक)

भाखड़ा बाँध पर

भाखड़ा बाँध लगभग पूर्ण होने को आ रहा था। दो-तीन बार जब जब श्री गुरुजी होशियारपुर जिले के प्रवास पर गये, तब-तब चर्चा चली कि भाखड़ा बाँध देखने चलें। हर बार यही उत्तर मिला कि वहाँ अपने संघ की शाखा हो तो चलो अन्यथा क्या जाना। फिर वहाँ संघ-शाखा प्रारम्भ की गयी और जिले का सम्मेलन भी वहाँ रखा गया। तभी श्री गुरुजी वहाँ गये।

कार्यक्रम से पूर्व पंजाब सरकार का जन-सम्पर्क-अधिकारी उन्हें विशेष रूप से बाँध दिखाने ले गया। नीचे बिजली घर के पास पहुंचे तो बाँध के द्वार पर से नीचे पड़ते हुए पानी की फुहारें उड़ रही थीं। बड़ा ही मनमोहक दृश्य था। श्री गुरुजी कुछ देर तक वहाँ ठहरे, फिर कहने लगे—ऐसा मन करता है कि यहीं बैठकर देवार्चन किया जाये। कितना स्वर्गिक आनन्द है यहाँ ?

बाद में विजिटर बुक में श्री गुरुजी ने इस आशय का अभिमत लिखा कि यह बाँध इस बात का जीता-जागता प्रमाण है कि मनुष्य में यदि मानवता की पूजा का भाव हो तो विज्ञान का उपयोग करके वह कैसे-कैसे कल्याणकारी कार्य कर सकता है।

उसी समय सामने खड़े हुए एक इंजीनियर महोदय से श्री गुरुजी ने पूछा —बाँध ७०० फुट ऊँचा बनाया है। गोविन्द सागर पूरा भर जाने से सारे पंजाब की धरती के सब-स्वाएल-वाटर का लेवेल ऊँचा उठेगा। उस समय सारा पंजाब पानी पर तैरेगा। तब क्या करोगे, इसका विचार किया है क्या ?

वे इंजीनियर महोदय कुछ भी बोल नहीं पाये, किन्तु उस पारदर्शी योगी की बात सच निकली। आज पंजाब के सामने यह समस्या खड़ी है।

(दो)

समूची पुस्तक एक बार में

महात्मा गाँधी मार्ग, आगरा, पर स्थित मा० श्री हरमोहन लाल की कोठी पर श्री गुरुजी आज पधारे हुए थे। इनके दर्शन-लाभ की लालसा होना स्वाभाविक है। एक शुभ प्रसंग भी आ उपस्थित हो गया। शिशु मन्दिरों के आचार्यों की वार्षिक पत्रिका 'आलोक' की प्रथम प्रति उसी दिन छपकर आयी थी सोचा कि क्यों न आज उसी को भेंट कर दूं। मुद्रित प्रति लेकर पहुंच गया अपराह्न में। डरते-डरते श्री आबाजी से आने का प्रयोजन बतला दिया। इनकी मुस्कराहट ने आशा बँधा दी। कुछ ही क्षणों में द्वार खुला एवं पूज्य गुरुजी की मुक्त हँसी से कमरा गूंज उठा। मैंने पत्रिका भेंट की। आबाजी ने प्रोत्साहन दिया। उन्होंने पत्रिका पलटी तथा तेजी से उलट कर रख दी। पीठ थपथपाकर श्री गुरुजी बोले—लेखों का चयन उत्तम है, छपाई अच्छी है परन्तु प्रूफ ध्यान से पढ़ा करो। पत्रिका में मुद्रण की १२० भूलें हैं।

अन्तिम वाक्य सुनकर मैं सन्न रह गया पल भर भी तो नहीं लगा था, फिर इतना सूक्ष्म अध्ययन कैसे ? कुछ समझ न सका। हक्का-बक्का सा खड़ा रह गया। बात आयी गयी हो गयी। बाद में पत्रिका भली प्रकार से देखी, तो लगभग इतनी ही भूलें मिलीं। वर्ष भर बाद वे पुनः आगरा आये। जिज्ञासा शान्त करने हेतु मैं पुनः जा पहुंचा उनके श्री चरणों में। यही

मेरा प्रश्न था श्री गुरुजी से—इतनी जल्दी आपने इतना सारा कैसे पढ़ लिया ?

मुक्त अट्टहास पुनः गूंज उठा। श्री गुरुजी ने समझाना आरम्भ किया–सरल-सी बात है। बालक प्रारम्भ में अक्षर पढ़ता है, फिर शब्द पढ़ता है। धीरे-धीरे एकाग्रता शक्ति बढ़ती जाती है। बड़ी कक्षा में पहुंचते-पहुंचते वह एक वाक्य एक साथ पढ़ने लगता है। अभ्यास बढ़ाने पर एक समूचा पृष्ठ, समूचा लेख व समूची पुस्तक एक साथ नहीं पढ़ी जा सकती है क्या ?

सरल शब्दों में शिक्षा शास्त्र का मर्म वे बोल गये। मैं हतप्रभ -सा खड़ा सोच रहा था, जो पुस्तकों में न पा सका, वह आज बिन मांगे मिल गया था महान् विभूति के एक क्षण के सान्निध्य में।

●

(तीन)

अचूक दृष्टि अचूक स्मृति

सन् १९५० की दीपावली अंक लेकर मैं हेडगेवार भवन पहुंचा। मुख्य पृष्ठ पर भारत माता का चित्र था। चित्रकार ने पैर की अँगुलियाँ बनाने में एक भूल की थी। श्री गुरुजी ने अंक देखते ही उस भूल की ओर मेरा ध्यान आकृष्ट किया। फिर चित्रकला के विषय में अनेक बातें विस्तार से बतायीं। एक बार कच-देवयानी की कथा में भूल से कच के स्थान पर 'घटोत्कच शब्द छप गया। अंक देखते और पन्ने पलटते ही बोल उठे—कहो, यह क्या ......घटोत्कच ?

ऐसी थी उनकी अचूक दृष्टि।

कभी-कभी सहज वार्ता में उनकी अगाध ज्ञान साधना की झलक मिलती थी। चरक एवं सुश्रुत की आयुर्वेदीय उक्तियों से लेकर अल्पतम चर्चित देवल स्मृति और शेक्सपियर, डिकन्स एवं टॉलस्टाय के अल्पज्ञात पात्रों के वाक्यों एवं कथनों को जब वे सहज दोहरा देते तो श्रोता चकित हो जाते। पर कहते सदैव यही—आप लोग विद्वान हैं, मैं तो कुछ पढ़ता-वढ़ता नहीं हूं।

उनका तप: पूत, ज्ञान पूत राष्ट्रसमर्पित जीवन हमें और आने वाली पीढ़ियों को सदैव प्रेरणा देता रहेगा। उनका एक-एक शब्द एवं वाक्य सुविचारित एवं सार्थक होता था।

(चार)

स्मृति का चमत्कार

दिनांक २८ एवं २९ नवम्बर १९७० को दावणगिरि में प्रान्तीय बैठक चल रही थी। मैं भी उसी बैठक में उपस्थित था श्री गुरुजी ने मुझसे पूछा—क्या तुमने मेटिरिया मेडिका पढ़ी है ?

मैंने कहा—हाँ।

इस पर श्री गुरुजी उस पुस्तक के प्रथम पृष्ठ पर लिखी जानकारी सुनाने लगे। उन्होने जो कुछ कहा, हूबहू वैसा का-वैसा ही उस प्रथम पृष्ठ पर लिखा था। श्री गुरुजी ने इसी बीच मुझसे एक और प्रश्न किया—क्रेनियल नाड़ियाँ कितनी होती हैं ? क्या तुम बता सकते हो ?

मैं स्मरण करके एक-एक नाड़ियों के नाम गिनाने लगा। कुल ग्यारह नाम बताकर बारहवीं का नाम स्मरण करने लगा। इसी बीच श्री गुरुजी ने मुझे बारहवीं नाड़ी का नाम स्मरण दिला दिया।

: ३५ :

विश्व हिन्दू परिषद्

(एक)

विदेशों में हिन्दू-संस्कारों की व्यवस्था

२४ नवम्बर सन् १९६३ को श्री गुरुजी का कार्यक्रम बेलगाँव में था। वहाँ उनसे मिलने के लिए त्रिनिदाद के एक संसदसदस्य श्री शम्भुनाथ कपिलदेव आये थे। त्रिनिदाद के हिन्दुओं में हिन्दू-संस्कार देने की वहाँ कोई व्यवस्था नहीं है। नामकरण, विवाह आदि सभी संस्कार ईसाइयों की पद्धति से गिरिजाघरों में ही हुआ करते हैं। इस प्रथा के स्थान पर वहाँ के हिन्दुओं के संस्कार और शिक्षा आदि हिन्दू-पद्धति से हो और एतदर्थ योग्य पण्डित-पुरोहित भारत से त्रिनिदाद जायें, इस प्रकार के विचारों से प्रेरित होकर ही श्री कपिलदेव जी भारत आये थे। भारत में उन्होंने इस विषय में भारतीय शासन के सम्बन्धित अधिकारियों से बातचीत की तो उन्हें उत्तर मिला—यह कैसे सम्भव हो सकता है? भारत सरकार की नीति तो सेक्यूलर है।

श्री कपिलदेवजी निराश हो गये। दिल्ली में किसी महानुभाव ने उन्हें सलाह दी कि श्री गुरुजी से मिलने पर उनका काम बन जायेगा। श्री कपिलदेव जी ने पूछा—ये गुरुजी कौन हैं?

सुझाव देने वाले ने बताया—श्री गुरुजी हिन्दुओं के लिये कार्य करने वाले संगठन 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' के प्रधान हैं।

आपका काम यदि होना होगा तो उन्हीं के द्वारा बनेगा। वे ही आपका यह काम कर पायेंगे।

श्री कपिलदेवजी श्री गुरुजी से मिलने के लिये निकल पड़े। पहले नागपुर, फिर वहाँ से बम्बई और बम्बई से बेलगाँव पहुंचे। श्री गुरुजी से श्री कपिलदेवजी की भेंट हुई। वे जो छोटा-सा काम लेकर आये थे, वह तो पूरा ही हो गया, इतना ही नहीं तो दुनिया भर में बसे हुए हिन्दुओं को प्रेरणा देने, मार्गदर्शन करने, सहायता देने के लिये हिन्दुओं की विश्वव्यापी संस्था स्थापित करने का निर्णय भी इसी वार्तालाप की उपलब्धि है।

श्री गुरुजी का आकर्षक व्यक्तित्व, सीधा सरल व्यवहार, प्रत्येक समस्या के बारे में सुलझे विचार, समस्याओं को हल करने की उनकी तर्क-सम्मत पद्धति, आगन्तुक व्यक्ति की सामान्य आवश्यकताओं की ओर भी आत्मीयतापूर्वक ध्यान देने का उनका स्वभाव आदि-आदि बातों से श्री कपिलदेवजी अत्यधिक प्रभावित हुए। एक और बात से भी वे बहुत ही अधिक प्रसन्न थे। वे आये थे एक छोटी-सी अपेक्षा लेकर, परन्तु यहाँ तो उनका आगमन एक महान् संस्था के जन्म का उपादान बन गया।। श्री गुरुजी के प्रति उनका आदरभाव बढ़ता ही चला गया।

सायंकाल श्री गुरुजी का सार्वजनिक कार्यक्रम था। श्री कपिलदेवजी इस कार्यक्रम के लिये संघ-स्थान पर पहुंचे। वहाँ व्यासपीठ के आस-पास की व्यवस्था देखकर श्री गुरुजी की सुरक्षा के विषय में उनका मन आशंकित हो उठा। व्यासपीठ के निकट ही एक कार्यकर्ता से उन्होंने पूछा—श्री गुरुजी की सुरक्षा के लिये समुचित व्यवस्था की गई है न ?

व्यासपीठ के आस-पास खड़े दण्डधारी स्वयंसेवकों की ओर इशारा करते हुए कार्यकर्ता ने कहा—हाँ, अच्छी व्यवस्था है।

इस उत्तर से श्री कपिलदेवजी का समाधान नहीं हुआ। बेचैनीपूर्वक उन्होंने पुनः पूछा—तुम्हारे ये दण्ड बन्दूकों की गोलियाँ रोक सकेंगे क्या ? कल ही जो दुर्घटना हुई है, वह क्या तुम्हें पता नहीं है ?

दो दिनों पूर्व ही अमेरिका के लोकप्रिय राष्ट्रपति श्री कैनेडी की जो हत्या की गयी थी, उसकी ओर श्री कपिलदेवजी संकेत कर रहे थे। कार्यकर्ता उनके सवाल का क्या जवाब देता ? श्री कपिलदेवजी के मन में बेचैनी बनी हुई थी। वे प्रत्येक कार्यकर्ता के सामने यह प्रश्न उठा रहे थे और श्री गुरुजी की सुरक्षा के बारे में वे चिन्तित स्वर में कह रहे थे—इस महान विभूति की सुरक्षा की चिन्ता उनके अनुयायी के रूप में क्या आप सबको

नहीं करनी चाहिये ? आधुनिक जगत में बढ़ती हुई दुष्ट प्रवृत्तियों और अत्याधुनिक साधनों की सहायता से होने वाली पाशवी घटनाओं के प्रति क्या हमें जागरूक नहीं रहना चाहिये ?

कार्यक्रम समाप्त होने के बाद श्री कपिलदेवजी पुनः श्री गुरुजी से मिलने के लिये उनके निवास-स्थान पर पहुंचे। वे जिस काम को लेकर आये थे, वह तो पहले ही लगभग पूरा हो चुका था। इस दूसरी भेंट का कोई विशेष प्रयोजन नहीं था, किन्तु संघ-स्थान पर जिस प्रश्न ने उन्हें बेचैन कर दिया था, उसी प्रश्न को श्री गुरुजी के सामने भी वे रखना चाहते थे। बात शुरू होते ही उन्होंने श्री गुरुजी से पूछा—आपने अपनी सुरक्षा की क्या व्यवस्था की है ? दुनिया में हत्यारों की संख्या लगातार बढ़ रही है। मुझे ऐसा उचित ही प्रतीत होता है कि इन सबसे आपके बचाव की भी कुछ-न-कुछ व्यवस्था रहे।

सदा की तरह ही मुक्त-हास्य बिखेरते हुए श्री गुरुजी ने कहा– मैं कोई बहुत बड़ा आदमी नहीं हूं।

उनकी एक ही मुक्त-हास्य-लहरी ने बैठक का सारा वातावरण पूर्णतः उन्मुक्त कर दिया, परन्तु श्री कपिलदेवजी ने कहा–प्रश्न यह नहीं है कि आप अपनी दृष्टि में छोटे हैं या बड़े। हत्यारों की दृष्टि में आपका महान होना पर्याप्त है। आप संघ के नेता हैं, हिन्दुओं के अग्रणी हैं, इसलिये यह स्वभाविक ही है कि कुछ लोग आपके विरोधी हों।

श्री गुरुजी ने कहा—परन्तु इस जगत में सब कुछ भगवान की इच्छा के अनुसार ही होता है। उसकी इच्छा न हो तो कोई किसी को मार नहीं सकता। इसके विपरीत, यदि भगवान को ऐसा लगता है कि बस, पर्याप्त हो गया इसका जीवन, तो फिर ऐसे व्यक्ति को कोई बचा नहीं सकता...

बीच में ही श्री कपिलदेवजी बोले–कल ही कैनेडी......

श्री गुरुजी ने भी उसी साँस में उत्तर दिया–मुझे भी तो वही कहना है। कैनेडी की सुरक्षा-व्यवस्था क्या कम थी ? आगे-पीछे जबरदस्त सुरक्षा-दस्ते थे, पास में पत्नी थी और गवर्नर्स (Governers) थे। गोली-निरोधक (Bullet-Proof) कार में वे प्रवास कर रहे थे। इतना सब कुछ होते हुए भी उन्हें कोई बचा नहीं सका। इसका अर्थ यही कि श्री कैनेडी का जीवन-कार्य पूर्ण हो चुका था। ईश्वर को ऐसा प्रतीत हुआ कि अब और अधिक समय तक भूतल पर रहना श्री कैनेडी के लिये ही हितकारक नहीं है। इसीलिये उनका जीवन समाप्त हो गया।

श्री कपिलदेवजी ने पुनः प्रश्न उपस्थित किया—परन्तु श्री गुरुजी ! यह कैसे माना जाये कि श्री कैनेडी की हत्या से कैनेडी का ही लाभ हुआ ? क्या यह विरोधाभास नहीं है ?

श्री गुरुजी ने समझाने का प्रयास किया—ऐसी बात नहीं है। कैनेडी के जीवन की ओर देखें। उन पर ईश्वर का बहुत अधिक प्रेम था। ईश्वर ने उन पर दो कार्य सौंपे थे। एक तो संसार में शक्ति-संतुलन बनाये रखने के लिये अर्थात् रूस की आक्रामक प्रवृत्ति को नियन्त्रित करने के लिये और दूसरा अमेरिका के श्वेत-अश्वेत में समरसता और सामंजस्य निर्माण करने के लिये। कैनेडी का यही जीवन-कार्य था। क्यूबा के मामले में धैर्य के साथ उन्होंने रूस का सामर्थ्य समाप्त कर दिया। अमेरिका के श्वेत-अश्वेतों में समरसता लाने के लिये उन्होंने दृढ़ता के साथ कार्य किया। यही उनके जीवन-कार्य की अत्युत्तम सिद्धि थी। इसके बाद वे अधिक दिनों तक जीवित रहते तो अमेरिका में राजनैतिक संघर्ष होता और उसमें सम्भवतः कैनेडी की बदनामी भी होती। भगवान की यह इच्छा नहीं थी कि संसार में एक उत्तम राष्ट्रपति के रूप में कीर्ति-प्राप्त कैनेडी की बदनामी हो। इसीलिये उन्हें हुतात्मा की मृत्यु देकर भगवान ने ही उनकी कीर्ति की रक्षा की। अगले दो-तीन अमेरिकी राष्ट्रपति के कारण अमेरिका की बहुत बदनामी होने की सम्भावना है। दुनिया में अमेरिका का प्रभाव भी कम होने वाला है।

श्री कपिलदेवजी शान्त चित्त से सब सुन रहे थे। श्री गुरुजी के अकाट्य तर्कों ने उनके मन को जीत लिया था, किन्तु फिर भी बुद्धि भरोसा नहीं कर पा रही थी। तर्क-सम्मत बातचीत से अलग एक और भी अधिक प्रबल बात यह थी कि श्री गुरुजी के प्रभावशाली व्यक्तित्व ने उनके हृदय में काफी विश्वास जगा दिया था। इस तरह के विश्वास-अविश्वास का अन्तर्द्वन्द्व मन में लिये हुए श्री कपिलदेवजी बैठक से बाहर आये। बाहर आकर उन्होंने कहा—आश्चर्य है। इस तरह का अद्वितीय प्रतिपादन मैंने इसके पूर्व कभी नहीं सुना था।

दूसरे दिन श्री कपिलदेवजी बेलगांव से रवाना होने वाले थे। प्रस्थान के पूर्व एक बार फिर वे श्री गुरुजी से मिलने के लिये आये। उन्होंने श्री गुरुजी को साष्टांग प्रणिपात किया। उनका हृदय भर आया था। आँखें छलकना चाह रही थीं। हाथ में श्री गुरुजी के दो चित्र थे। भावना भरे शब्दों में उन्होंने श्री गुरुजी से कहा—मैं त्रिनिदाद लौटने के बाद वहाँ के लोगों को बताऊँगा कि अपने देश भारत में मैं आपसे मिला था। इस पर

जब वे पूछेंगे कि आप कैसे हैं तो उन्हें मैं आपके ये दो चित्र दिखाऊँगा। इन पर कृपा करके आप अपने हस्ताक्षर कर दीजिये।

श्री गुरुजी ने कोई आपत्ति नहीं की। एक चित्र पर उन्होंने देवनागरी लिपि में अपने हस्ताक्षर कर दिये। इस पर श्री कपिलदेवजी ने कहा— हमारे यहाँ किसी को हिन्दी नहीं आती। कृपया हस्ताक्षर अंग्रेजी में भी कर दें।

श्री गुरुजी ने दूसरे चित्र पर अंग्रेजी में भी हस्ताक्षर कर दिये। पुनः एक बार श्री गुरुजी को भावपूर्ण अन्तःकरण से प्रणाम करके श्री कपिल देवजी ने विदाई ली।

(दो)

इसमें दोष किसका ?

असम में विश्व-हिन्दू-परिषद का अधिवेशन था। अंग्रेजों की कुटिल मति, कुटिल नीति और कुटिल प्रयास के फलस्वरूप हिन्दू समाज में अनेक भेद निर्मित हो गये और वह परस्पर विरोधी जातियों के रूप में विभाजित हो गया। इस कुटिलता के कारण हिन्दू समाज एक होकर भी अनेक इकाइयों के रूप में टूट गया और ऐसा टूट गया कि पूर्व-एकता की बात एक प्रकार से सर्वथा विस्मृत हो गयी। इस कुटिल मनोवृत्ति से परिचालित अंग्रेजों ने 'अनार्य आदिवासी' जैसा विभाग बनाया, किराये के अनेक विद्वानों से झूठा इतिहास लिखवाया, 'आदिवासी आर्य नहीं हैं', इस प्रकार के झूठे तथ्य का प्रचार करवाया, हिन्दू-हिन्दू में फूट डलवाया और ऐसी फूट डलवा दी कि हिन्दू ही हिन्दू को हिन्दू कहने में हिचकने लगा। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के स्वयंसेवक केवल 'वनवासी अथवा गिरिजन' ये ही शब्द प्रयुक्त करते हैं और 'ये बन्धु हिन्दू ही हैं' इस दृढ़ श्रद्धा को लेकर उनके बीच कार्य करते हैं। सैकड़ों वर्षों से उनके साथ टूटे हुए सम्बन्ध को पुनः प्रस्थापित करने का सफल प्रयास संघ ने किया है। इनके हृदय में अपने हिदुत्व की भावना जागरूक रहे, एतदर्थ यह सोचा गया कि इन वनवासी बन्दुओं को ॐ के चिह्न

दिये जायें और चिह्न प्रदान करने का कार्य पूज्यपाद श्री शंकराचार्य जी द्वारा एक अधिवेशन में सम्पन्न हो ।

इस अधिवेशन के लिये नागालैंड से नागा और मेघालय से खासी जयन्तिया जाति के लोग तथा अन्य वनवासी जन भारी संख्या में आये थे। इस अवसर पर श्री शंकराचार्यजी महाराज भी उपस्थित थे। नागालैण्ड के कुछ वनवासी गोमांस खाते हैं और हिन्दू तो गाय को माता तुल्य मानते हैं जिसके अंग-अंग में अनेक देवताओं का वास है। फिर इन गोमांस-भक्षी वनवासियों को हिन्दू कैसे कहा जाये ? इसी बात को लेकर पूज्यपाद श्री शंकराचार्य जी महाराज अन्यथा प्रकार से सोचने लगे। भारत की एकात्मता को नष्ट करने वाले और बलात् धर्मप्रचार करने में विश्वास रखने वाले ईसाइयों के लिये यह जो बात अत्यन्त अनुकूल थी, उसी बात पर अपने श्री शंकराचार्यजी महाराज कुछ विचलित हो गये कि इन वनवासियों को हिन्दू कहा जाय अथवा नहीं ।

परिस्थिति की इस विषमता को श्री गुरुजी ने सँभाला । रामयण-महाभारतकालीन स्थिति और उस पहाड़ी क्षेत्र का इतिहास बतलाते हुए श्री गुरुजी ने कहा—ये नागा अपने हिन्दू बान्धव ही हैं, जो सैकड़ों-सैकड़ों वर्षों से अपने से दूर पड़ गये हैं। न उन्हें कोई धार्मिक शिक्षण दिया गया और न जीने का समुचित साधन उनके पास रहा। परिस्थितियों के कारण उनसे हम और वे हमसे दूर होते चले गये। इसके फलस्वरूप उनके प्रति हमारे व्यवहार में परिवर्तन आया। इसमें उनका क्या दोष ? अज्ञानवश उन्होंने गोमांस खाया, इसमें दोष किसका ? प्रायश्चित उन्हें नहीं, हमें हीकरना चाहिये ।

श्री गुरुजी ने जो दृष्टि प्रदान की, उससे लोगों के चिन्तन-मनन का ढंग ही बदल गया और एक नया विचार, एक नया उत्साह मिला, हिन्दू समाज की विभाजित और बिखरी इकाइयों को पुनः परस्पर में आबद्ध करने के लिये। श्री गुरुजी की उपस्थिति ने अधिवेशन के बिगड़ते हुए वातावरण को सँभाल लिया। यदि श्री गुरुजी उपस्थित न होते तो अधिवेशन की सफलता संदिग्ध ही थी।

: ३६ :

मानवता की मूर्ति

(एक)

दीन-दुखियों की चिन्ता

श्री गुरुजी कभी रिक्शे पर नहीं बैठते थे इसीलिये कि उसे आदमी खींचता है। सड़क के चढ़ाव पर रिक्शा चलाने वाला जब उतरकर खींच रहा हो, फिर भी लोग रिक्शे पर पूर्ववत बैठे हुए हों, ऐसे दृश्यों पर श्री गुरुजी का मन क्षुब्ध हो जाया करता था।

भिखमंगों के प्रति भी उनके मन में अपार सहानुभूति थी। इसके लिये वे समाज के बन्धुओं को ही दोषी मानते थे। एक बार एक रेल स्थान पर एक छोटा बालक भीख मांगने के लिये आया। उस समय किसी ने उसको घुड़क दिया। श्री गुरुजी बोले–भाई! उसे कुछ देना नहीं तो न दें, किन्तु उसको अपमानित करने का आपको क्या अधिकार है? वह भीख न मांगे, इसके लिए हम क्या करते हैं, जरा इसका विचार तो करो।

यह सर्वविदित है कि गुरुजी बहुत कम भोजन करते थे। दूध-फल नहीं लेते थे। बहुत आग्रह करने पर वे कहते थे–भाई! कितने बच्चे ऐसे हैं, जिनको आवश्यकता भर दूध नहीं मिलता? ऐसे अनेक बन्धु हैं, जिन्हें फल क्या, दो बार भोजन भी नहीं मिलता। और मैं दूध और फल का प्रयोग करूँ? कार्य करने के लिये शरीर चले, इतना भर भोजन करता हूं।

अपने यहाँ काम करने वाले नौकरों को, मोटर चलाने वाले को आदि-आदि लोगों को चाय-पानी पिलाया या नहीं और जलपान-भोजन की व्यवस्था हुई या नहीं, इन छोटी-छोटी बातों की ओर उनका विशेष ध्यान रहा करता था।

(दो)

समाज के साथ समरसता

अपने समाज के बन्धुओं के सुख-दुःखों के साथ अधिकाधिक समरसता हो जाने से श्री गुरुजी के जीवन की गरिमा दिन-प्रति-दिन बढ़ती चली गयी और उसी के बल पर वे संघ-कार्य को आगे-से-आगे ले जा सके। सुख-दुख के साथ समरस होने का एक प्रसंग इस संदर्भ में स्मृति-पटल पर उभर रहा है।

अपने बम्बई-प्रवास में श्री गुरुजी एक स्थान पर ठहरे हुए थे। एक बार वे मध्याह्न के समय दादर से गिरगाँव की ओर जा रहे थे। इस रास्ते पर कई कपड़ा-मिलें हैं। श्री गुरुजी की कार जब इस क्षेत्र से गुजर रही थी, तब कपड़ा-मिलों के दरवाजे से मजदूर बाहर निकलकर अपने-अपने घरों की ओर भागते हुए चले जा रहे थे। कार में पास बैठे हुए एक सज्जन ने पूछा—ये लोग इस तरह भागते हुए क्यों जा रहे हैं?

तब श्री गुरुजी ने बताया—इन बेचारों को केवल एक घण्टे की छुट्टी मिलती है। इसी एक घण्टे के भीतर घर जाकर भोजन करके पुनः वापस लौटना पड़ता है, इसीलिये ये भागते हुए घर जा रहे हैं। यह सब कितना अमानवीय है?

इतना कहते-कहते श्री गुरुजी की आँखें सजल हो उठीं। आँखों से छलके हुए आँसुओं को उन्होंने अपने कन्धे पर पड़े हुए तौलिये से तुरन्त समेट लिया। पास बैठे हुए व्यक्ति ने अनुभव किया कि अपने बन्धुओं के जीवन के सुख-दुःख से यह समरसता ही उनकी महानता की एक सीढ़ी थी।

: ३७ :

व्यक्तित्व की गरिमा

(एक)

साष्टाँग प्रणाम

गोरक्षा आन्दोलन के दिन थे। पू० श्री ब्रह्मचारीजी एवं पुरी के स्वामी श्री शंकराचार्य जी महाराज आमरण अनशन कर रहे थे। अकस्मात श्री ब्रह्मचारी की 'दशा गम्भीर' के समाचार ने सनसनी पैदा कर दी। श्री गुरुजी उनसे अनशन तोड़ने का अनुरोध करने के लिये वृन्दावन जा पहुंचे। गोरक्षा-अभियान-समिति की कार्य-समिति की आपद्‌कालीन बैठक संकीर्तन भवन, वृन्दावन में आहूत की गई। हजारों भक्त उनके दर्शन करने वहाँ पहुंचे। मैं भी उन भाग्यशाली लोगों में एक था।

धार्मिक जगत के अनेक दिग्गज वहाँ उपस्थित थे। गुरुजी ब्रह्मचारीजी से वार्ता कर रहे थे। दूसरी ओर कमरे में गोरक्षा समिति की बैठक चल रही थी। एक श्री शंकराचार्य जी, अनेक धर्माचार्य एवं नेता उसमें उपस्थित थे। मैं अपना लोभ संवरण न कर सका तथा रिपोर्टिंग लिखने हेतु चुपचाप इसमें जा बैठा। आलोचना-प्रत्यालोचना का क्रम जारी था।

एक आर्यसमाजी बोल उठे-हजारों आर्यसमाजियों ने सत्याग्रह किया, परन्तु संघ के स्वयंसेवक आगे न आये।

हिन्दू-महासभा के नेता बोल उठे-२५००० की आशा थी, परन्तु कोई आगे न आया।

पंजाब के एक धर्माचार्य चुप न रह सके। वे बोल उठे—आर्यसमाज-भवन से जो जेल गये, वे आर्यसमाजी एवं हिन्दू महासभा-भवन से जो जेल गये, वे महासभाई। परन्तु जेलों में हजारों लोगों की शाखा कैसे लगती है ?

नोक झोंक जारी थी। वातावरण गर्म था। अकस्मात द्वार खुला। श्री गुरुजी ने प्रवेश किया। श्री ब्रह्मचारीजी से वार्ता पूरी करके उन्हें कार्य-समिति की बैठक में भाग लेना था। इनका कमरे में घुसना था कि सारा दृश्य बदल गया। बटन दबाते ही जैसे बल्ब जल उठता है, उसी भाँति सभी एक दम खड़े हो गये, परन्तु !

पूज्य श्री गुरुजी आगे बढ़े.. ...पलक मारते ही दृश्य बदल गया। मैं दंग रह गया। जिसकी जीवन में कभी कल्पना तक नहीं की थी, वह दृश्य सामने था। पूज्य श्री गुरुजी धर्माचार्यों के समक्ष भूमि पर लेट कर साष्टांग प्रणाम कर रहे थे। धर्माचार्य बोल उठे—गुरुजी ! यह कैसा गजब कर दिया। हम पर पाप पड़ेगा......

वाक्य को कहते-कहते उन्होंने श्री गुरुजी को ऊपर उठा लिया।

उनका सरल उत्तर था—यह तो मेरा धर्म है, सामान्य कर्त्तव्य है····

वातावरण गम्भीर हो गया। पावित्र्य व्याप्त हो गया। मैं बैठा सोच रहा था-प्राचीन ऋषियों की विनयशीलता आज साकार रूप धारण करके अवतरित हो गई है। कैसे भाग्यशाली हैं हम, जिन्होंने ऐसी दिव्य विभूति का नेतृत्व प्राप्त किया है ?

: ३८ :

जीवन की सन्ध्या

(एक)

मेरे एक उल्लेखनीय रोगी

सन् १९७० की एक वर्षा-आँधी वाली रात को मेरे एक सहयोगी ने मुझे फोन किया और पूछा--क्या गुरुजी श्री गोलवलकरजी की डाक्टरी परीक्षा के लिये मैं समय दे सकता हूं ?

मैंने स्वीकृति प्रदान कर दी थी। अगले प्रातः मैं उन्हें देखने चल दिया। कार की गति के साथ ही अनेक विचार भी मेरे मस्तिष्क में दौड़ रहे थे। मैंने श्री गोलवलकरजी के बारे में बहुत पढ़ा और सुना था। मुझे मालूम था कि उन्हें अपनी मान्यताओं के प्रति अटूट आस्था है। हिन्दूराष्ट्र एवं हिन्दुत्व पर उनकी मान्यताएँ दृढ़ और अचल हैं और वे इस सम्बन्ध में बहुत ही कट्टरपन्थी एवं संकुचित हैं। मैं इस अन्तिम विषय में कितना गलत था, यह बाद में पता चला। यही कारण था कि मैं दर्शन करने को उत्सुक था और मैं सोच रहा था कि चिकित्सा के विषय में आश्वस्त करने के लिये आज एक विकट व्यक्ति का सामना करना पड़ेगा।

उनका निर्बल और कृश शरीर, उनके विषय में मेरी पूर्व-जानकारी, पूर्व-कल्पना तथा धारणा के बिलकुल विपरीत था।

पहली ही भेंट में मुझे पता चल गया कि मैं एक गम्भीर दृष्टि वाले ज्ञानेच्छुक व्यक्ति के सामने हूं, वह व्यक्ति तर्कशील है, विनम्र है, प्रबुद्ध है, दूसरे पक्ष के दृष्टिकोण को सुन सकता है और उन्हें समझ सकता है। प्रारम्भिक बातचीत से ही मैंने उनके व्यक्तित्व के विषय में बहुत-कुछ जान लिया।

श्री गुरुजी ने शुद्ध हिन्दी में बोलकर प्रश्न किया—तो डाक्टर! मेरे रोग के विषय में आपका क्या विचार है?

उनकी तरह शुद्ध हिन्दी में बोलने का अभ्यास नहीं होने के कारण मैंने सीधी-सादी भाषा में कहा—आपकी दशा से कैंसर की सम्भावना का सन्देह हो रहा है। इसका ठीक पता लगाने और चिकित्सा हेतु शल्य-क्रिया आवश्यक होगी।

मेरे इस निदान से वे जरा भी नहीं घबराये, जैसा कि आमतौर पर साधारण आदमियों के साथ होता है। कुछ पल सोचकर श्री गुरुजी ने कहा--यदि कैंसर ही है तो मेरी राय में उसे यों ही रहने दें। अच्छा डाक्टर! क्या आपको आशा है कि आप उसे ठीक कर लेंगे?

उन्हें इस रोग और मानव शरीर पर उसके कुप्रभावों का पूरा ज्ञान था। श्री गुरुजी का अगला प्रश्न था—क्या यह अन्यत्र भी पहुंच गया है?

उनके जैसे प्रबुद्ध व्यक्ति को आश्वस्त करने के लिये मुझे तत्काल उत्तर देना था। मैंने कहा—जहाँ तक इस रोग को यों ही रहने देने का प्रश्न है, यह तो अपनी-अपनी राय की बात है, लेकिन इसे यों ही छोड़ दिया जाये, इससे मैं सहमत नही हूं। कैंसर से निरोग होना इस पर निर्भर करता है कि रोग कितना व्यापक हो गया है। इसका पता आपरेशन से ही चल सकता है और उसके बाद ही चिकित्सा का प्रकार निश्चित किया जायेगा। इसको यों ही छोड़ देना, किसी जलपोत को हिमखण्डों की तरफ बढ़ते हुए छोड़ देने के समान होगा। आपकी चिकित्सा करने का अर्थ है स्थिति को सँभालना, अर्थात प्रत्यक्ष संकट से आपको दूर ले जाना। अभी यह अन्यत्र नहीं फैला है, किन्तु कितना है, इसका पता आपरेशन से ही चलेगा।

श्री गुरुजी ने स्थिति समझ ली और वे चुप हो गये। शायद विचारमग्न या आत्म-दर्शन करने लगे थे। लम्बी चुप्पी के बाद वे बोले—अब तो मुझे आपरेशन कराना ही होगा।

यह उन्होंने बड़ी धीरता से ही कहा था। उसके बाद वे जैसे अपने विचारों को स्वर देने लगे। अनेक लोगों से मिलना, कार्यक्रमों का उत्तरदायित्व, प्रवास आदि, जिनकी योजना वे बना चुके थे, इन सबके बारे में

तुरन्त निर्णय ले लिया गया। उनके साथियों को तथा सचिव को आवश्यक आदेश भेज दिये गये। श्री गुरुजी ३० जून, १६७० को अस्पताल में भर्ती हो गये और १ जुलाई, १६७० को कैंसर का आपरेशन कर दिया गया।

इस पहली भेंट में ही उनके गरिमामय व्यक्तित्व की अनेक विशेषताएँ उजागर हो गयी थीं। ज्ञान और विज्ञान को स्वीकार करने की उनकी इच्छा का पता चल गया था। अपनी शारीरिक दशा के विषय में जानकारी प्राप्त करने हेतु उन्होंने कुछ प्रश्न किये। उनकी यह आतुरता उनके मस्तिष्क की अन्तर्भेदिनी दृष्टि की द्योतक थी, किसी भी विषम स्थिति का सामना करने के लिये प्रस्तुत उनके साहस का परिचायक थी और उनके असीम धैर्य उनकी परम दूरदर्शिता एवं उनकी अगाध कार्य-निष्ठा का प्रमाण थी। मैंने उनसे कहा—आप इससे मुक्त हो लें, फिर भविष्य में आपके कार्य में बाधा नहीं पड़ेगी।

इसके उपरान्त उन्होंने तर्क नहीं किया। ६५ वर्ष की आयु होने पर भी उन्होंने शल्य-क्रिया के बाद सन्तोषजनक अनुकूल लक्षण प्रस्तुत किये। आपरेशन के अगले दिन वे उठ बैठे थे। वे चलने-फिरने भी लगे थे। अस्पताल में उनके तीन सप्ताह के निवास ने उनके मन और व्यक्तित्व का अध्ययन करने के लिये काफी लम्बा अवसर प्रदान किया था। उनसे हुई अनेक भेंट और वार्ता मेरे जैसे आदमी के लिये ज्ञान-वर्धन का माध्यम सिद्ध हुई थी। उनके अन्तःचरित्र को स्पष्ट करने वाली कुछ घटनाएं यहाँ मैं लिख रहा हूं।

अपने रोग की गम्भीरता एवं व्यापकता के विषय में पूर्ण जानकारी और जीवन की सम्भावना के बारे में सम्यक् जानकारी वे चाहते थे। मैंने सत्य को उनसे छिपाया नहीं था। सभी बातें साफ-साफ बता दी थीं। मेरी बात सुनकर उन्होंने कहा था—ओह! तब तो ठीक है। इतने दिन बहुत हैं और मेरे पास इतने दिनों के लिये काफी काम है।

आपरेशन के सात दिन बाद श्री गुरुजी बम्बई शहर के उपनगर की एक सभा में गये थे। उन्होंने वहाँ जाने की आज्ञा डाक्टरों से ले ली थी। मैंने उनसे कहा था—मैं आपको चला जाने दूंगा, बशर्ते आप भाग न जायें।

इस पर उन्होंने अपनी विनोदप्रियता का परिचय देते हुए यह कहा—क्या मैं आपको चोर उच्चका लगता हूं ?

जितने दिन वे अस्पताल में रहे, वहाँ विनोद और खुशी का वातावरण छाया रहा। उनके व्यक्तित्व की पूर्ण मीमांसा करने के लिये कोई भी विशेषण

उचित और उपयुक्त नहीं लगता। वे एक राजनीतिक दार्शनिक गहन-अध्ययनकर्ता थे। मानव, पदार्थ घटनाक्रम का अपरिसीम ज्ञान उन्हें था। उनकी विचारधारा में विज्ञान, धर्म और संस्कृति का समान समावेश था। एक दिन उन्होंने कहा था—'मानव के प्रत्येक विकास के लिये विज्ञान परमावश्यक है'—और यह सुनकर मुझे सचमुच आश्चर्य हुआ था। आश्चर्य इसलिये कि यह वाक्य एक अगाध धार्मिक आस्था वाले व्यक्ति ने कहा था। वे उन लोगों में से नहीं थे, जो अपना दर्शन और अपनी आस्था दूसरों पर थोपते हैं, किन्तु वे अपनी मान्यताओं और कथनी के प्रति पूर्ण निष्ठावान थे। एक बार उन्होंने यह भी कहा था–'जो मेरी दृष्टि में सत्य और न्यायपूर्ण है मैं उसके लिये हमेशा प्रयत्नशील रहा हूं और रहूंगा।' यही एक वाक्य उनकी आन्तरिक भावना और अप्रतिहत साहस का संक्षिप्त परिचय देता है और यही वाक्य इस प्रश्न का भी उत्तर था कि उनके बहुत अधिक अनुयायी क्यों हैं।

श्री गुरुजी अस्पताल के अल्पकालीन निवास में भी अपना सारा कार्य कर रहे थे। आपरेशन के बाद की गयी चिकित्सा भी उनके अनुकूल रही थी। अस्पताल से जाने के पूर्व उन्होंने कहा था—मनुष्य को मृत्यु की चिन्ता नहीं करनी चाहिये। सभी को एक-न-एक दिन मरना ही होगा। जीवन की अवधि की नहीं, उसकी उपयोगिता का महत्व होता है। मेरे सामने लक्ष्य है और मैं चाहता हूं कि अन्तिम श्वास तक मैं उसके लिये प्रयत्नशील रह सकूँ।

मुझे तब ऐसा लगा कि वे एक ऐसे पुरुष हैं, जो अपना काम पूरा कर लेने के लिये बहुत ही आतुर हैं। आपरेशन के बाद दो वर्ष वे बहुत ही स्वस्थ और कर्मण्य रहे। मेरी आशा के विपरीत उनका जीवन बहुत आगे तक चलता रहा। वे एक उल्लेखनीय और बहुत ही सहज रोगी थे। जब भी वे बम्बई आते तो अपने परीक्षण के लिये अस्पताल आया करते थे। एक बार मैंने उनसे पूछा–युवा पुरुष के क्या हाल हैं?

उन्होंने उत्तर दिया था दिन-पर-दिन युवा होता जा रहा है।

काल किसी को भी नहीं छोड़ता और उसने श्री गुरुजी को भी नहीं छोड़ा। इस वर्ष (१९७३) फरवरी या मार्च से उन्हें फिर कष्ट होने लग गया था। यद्यपि वे कार्यशील थे, परन्तु मृत्यु की छाया उनके निकट आती जा रही थी। अप्रैल, में लिये गये एक्स-रे से पता चला कि रोग अत्यन्त गम्भीर हो गया। उसके बाद के घटनाक्रम को और लिखने के लिये अब शेष क्या बचा है? इस आलेख का यह उद्देश्य नहीं है कि श्री गुरुजी को

मृत्यूपरान्त उस रूप में दर्शाया जाये, जो वे जीवन में नहीं थे। वह व्यक्ति जिसने एक भयंकर रोग के शारीरिक और मानसिक आघात का धीरज और साहस के साथ सामना किया; वह व्यक्ति जिसकी अपने देश-सम्बन्धी मान्यताएँ और आस्थाएँ निष्ठापूर्ण थीं, वह व्यक्ति जो अपनी आस्थाओं से कभी डिगा नहीं, वह व्यक्ति जो शरीर से दुर्बल और कृश होकर भी अखण्ड-अथाह-क्रियाशीलता-अनुशासनप्रियता से समन्वित था, वह व्यक्ति जिसमें आगे बढ़ने के लिये आतुरता थी और वह व्यक्ति जिसने गलत को सही करने का अथक प्रयास किया, वे थे श्री गुरुजी गोलवलकर।

●

(दो)

शूलों की शय्या पर इच्छा-मरण

५ जून १९७३

सबेरे का समय, चाय-पान का वक्त, पूजनीय श्री गुरुजी के कमरे में (उसे कोठरी कहना ही अधिक उपयुक्त होगा) जब हम लोग प्रविष्ट हुए तब वे कुर्सी पर बैठे हुए थे। चरण स्पर्श के लिये हाथ बढ़ाये। सदैव की भाँति पाँव पीछे खींच लिये। मेरे साथ आये हुए स्वयंसेवकों का परिचय हुआ। उनमें आदिलाबाद के एक डाक्टर थे। श्री गुरुजी विनोदवार्ता सुनाने लगे कि एक मरीज एक डाक्टर के पास गया। डाक्टर ने पूछा—क्या कष्ट है? सारी कहानी सुनाओ।

मरीज बिगड़ गया और बोला—अगर मुझे ही अपना रोग बताना है तो फिर आप निदान क्या करेंगे? बिना बताये जो बीमारी समझे, ऐसा डाक्टर मुझे चाहिये।

डाक्टर एक क्षण चुप रहे। फिर बोले—'ठहरो, तुम्हारे लिये दूसरा डाक्टर बुलाता हूं।' जो डाक्टर आया, वह जानवरों का डाक्टर था। बिना कुछ कहे सब कुछ समझ लेता था।

कथा सुनकर हँसी का फव्वारा फूट पड़ा। रात्रि भर के जागरण की थकान पल भर में दूर हो गयी। श्री गुरुजी स्वयं हँसी में शामिल हो गये। फिर और एक किस्सा सुनाया, हँसते-हँसते पेट में बल पड़ गये।

इतने में चाय आ गयी। चाय सबको मिली या नहीं, इसकी चिन्ता श्री गुरुजी स्वयं कर रहे थे। कौन चाय नहीं पीता, किसको दूध की आवश्यकता है, इसका उन्हें बड़ा ध्यान रहता। सबके बाद स्वयं चाय ली। कप

में नाम मात्र को चाय थी। उन्होंने उसे और कम करवाया। शायद हमारा साथ देने के लिये ही वे चाय-पान कर रहे थे। निगलने में बड़ा कष्ट था। साँस लेने में अत्यधिक पीड़ा थी।

किन्तु चेहरे पर थी वही मुक्त मोहिनी मुस्कान। हृदय-हृदय को हरने वाला हास्य। मुरझाये मन की कली-कली को खिलाने वाली खिलखिलाहट। निराशा, हताशा और दुराशा को दूर भगाने वाला दुर्दम्य आत्मविश्वास।

कमरे के किसी कोने में मौत खड़ी थी। शरीर छूट रहा था। एक-एक कर सभी बन्धन टूट रहे थे। महामुक्ति का मंगल मूहूर्त निकट था। एक क्षण के लिये मुझे लगा, शूलों की शय्या पर भीष्मपितामह मृत्यु की बाट जोह रहे हैं, इच्छा-मरण सुना भर था आज आँखों से देख लिया।

६ जून १९७३

हेडगेवार भवन। एक दिन में कितना अन्तर हो गया! कल सब शान्त था, आज शोक का निस्तब्ध चीत्कार हृदय को चीर रहा था। कल सब अपने काम में लगे थे, आज जैसे सब कुछ खोकर खाली हाथ खड़े थे। आँखों में पानी, हृदयों में हाहाकार, कभी न भरने वाला घाव, कभी न मिटने वाला दर्द।

पूजनीय श्री गुरुजी का पार्थिव शरीर दर्शन के लिये कार्यालय के कमरे में रखा था। आज उन्होंने मुझे चरण स्पर्श करने से नहीं रोका। अपने पाँव पीछे नहीं हटाये। सिर पर प्रेम से हाथ नहीं फेरा। प्यार भरी मुस्कान से नहीं देखा। हाल-चाल नहीं पूछा। वे अनन्त निद्रा में निमग्न थे। हंस उड़ चुका था, काया के पिंजड़े को तोड़कर पूर्ण में विलीन हो चुका था।

गुरुजी नहीं रहे। उनका विराट व्यक्तित्व छोटी-सी काया में कब तक कैद रहता? जीवन भर तिल-तिल जलकर लाखों जीवनों को आलोकित-प्रकाशित करने वाला तेजपुंज मुट्ठी भर हाड़-माँस के शरीर में कब तक सीमित रहता?

लेकिन गुरुजी हमेशा रहेंगे, हमारे जीवन में, हृदयों में, कार्यों में। अग्नि उनके शरीर को निगल सकती है, हृदय-हृदय में उनके द्वारा प्रदीप्त प्रखर राष्ट्रप्रेम तथा निस्स्वार्थ समाजसेवा की चिनगारी को कोई नहीं बुझा सकता।

उनकी पुनीत स्मृति में शतशः प्रणाम।

